## समर्पण:—

हिन्दी साहित्यानुरागी सहृदयवर्य

श्री० देवकुमारसिंहजी

एम. ए. एल-एल. बी.

के

कर-कमलो मे

स-सम्मान

समर्पित।

जानकीप्रसाद पुरोहित

# कुमार

कुमार शब्द कानों मे पडते ही, मुझे याद आ जाती है उस बच्चे की वे बडी-बडी बरौनियो वाली भोली-भोली आँखें। उसके वे घुंघराले-भूरे-भूरे केश और वह पूरे चाँद की तरह प्यारा मुखडा। कैसी मोहक थी उसकी वह मीठी-मीठी मंद मुस्कान और वह तोतली बोली तो और भी गजब ढाती थी। कैसा कोमल था उन नन्ही-नन्ही उंगलियो का स्पर्श जो समय-समय पर मेरी उंगलियों से लिपट जाने पर होता था। वह मेरे साथ होकर मेरी चाल को अपने बराबर धीमी कर लेता था और फिर अपनी मचलती हुई चाल से चलकर मुझे मेरे बचपन की याद दुखा देता था—जब मैं कुमार की अवस्था का था।

दिन दूर चले गए, परन्तु उन दिनों की वह स्मृति मेरे हृदय से जरा भी दूर न गई। कितनी रातो ने आ-आकर मुझे उन स्मृतियो मे झकझोरा है, गिनाई नहीं जा सकती! वैसी कितनी सूरतों ने मुझे उन सूरतों की याद दिलाई है, कैसे बतलाऊँ! उसके बाद भी कितनी ही यात्राएं हुईं, परन्तु मेरे बिखरे हुए दिल को उन सबने कुरेदने के सिवा और कुछ न किया।

कैसे पक्के रंग मे रंगी हुई वे तस्वीरे थी जो देखते-देखते मेरे दिल मे उतर गईं थी, अब वे न तो मिटाए मिटती है, न हटाए हटती है। आज वे सब बाते स्वप्न हो गईं, केवल स्वप्न—मानो वह वर्षाती नदी का एक वेग था जो मेरे जीवन के दोनों छोरों को छूकर उतर

गया। न फिर से वैसा वेग आया न आयगा।

अब तो केवल ये सूने आकाश के चमकीले तारे कह सकते है—'हाँ, हम जानते है।' यह सनन्-सनन् चलती हुई हवा कह सकती है—'मुझे स्मरण है।' और ये चाँदनी रातें भी कह सकती है—'सच है।' उन स्मृतियों के साथ यह आत्म–वेदना से पीडित होकर कभी-कभी एक ठंडी साँस छोड देती है, जो विश्व के भौतिक तापो को जतलाती हुई उस वेवसी की दुनियाँ मे जाकर खत्म हो जाती है, जहाँ इस मनुष्य तनधारी प्राणी का कोई चारा नहीं।

मुझे कालेज छोड देना पडा था। कारण था, ट्यूशनों का न मिलना। उसके बाद मैंने वही किया जो इस अभागे भारत के ग्रेजूएटो को करना पडता है। बढिया कागज पर चमकीली स्याही से सुन्दर अक्षरों मे अर्जियॉ लिखना और नित नए दफ्तर के द्वार खटखटाना। फिर भी मेरे अभाग्य मे कोई कमी न थी। क्या! बीस रुपये माह की नौकरी सारे सरकारी और गैर सरकारी आफिस मिलाकर मुझे न दे सकते थे! पर मेरे लिए तो—उत्तर तक को भी उनका दिवाला निकल चुका था, जब कि बी० ए० मैंने सेकिन्ड डिव्हीजन मे पास किया था।

इसी प्रकार आवारा गर्दिश में कितने ही दिन, सप्ताह और माह निकल गए तब मैंने बढती हुई दरिद्रता का मुंह बद करने के लिए एक नौकरी करली। क्योंकि मेरी चिन्ता की राते अपने साथ इतना समय लेकर आती थीं कि मैं उन्हे बिताकर भी न बिता पाता था—और पिछली रात के पहले मेरी निद्रा का पता इस लोक से उस लोक तक भी न लगता था। वे दिन भी बडे ही अनोखे थे।

उन्ही दिनो मे जी० आई० पी० रेल्वे ने यात्रियों की सुविधा के लिए झोन–टिकिट निकाले थे। आज तो वे टिकिट स्वप्न की कल्पना

मात्र मालूम होते है। जब मेरे जैसे मचले-मिजाज़ व्यक्तियों के लिए, वह सु-अवसर था।

उन दिनों मेरे तीन, चार, मित्र थे, जो सरदार साहब की बैठक में कैरम के साथ कसरत किया करते थे। हारजीत का लेखा जोखा लगाकर शहर के उस किनारे वाले डढियल की होटल में सात रुपये माहवार का सस्ते नाम का भोजन करने चल देते। कभी-कभी सैर-सपाटे करने भी चले जाते और पागलो की तरह कह कहा मार कर हंस भी लेते थे।

हरीश ने कहा—'मैं तो फ़ोन से बम्बई जाऊंगा, शायद वहाँ कोई और अच्छा काम मिल जाय।' 'प्रमोद महाशय' एक पंथ दो काज वाली सूझ को लेकर प्रयाग जाने लगे। माधव बेचारा वनिए का नौकर छुट्टी ही न पा सका। मैंने एक अप्लीकेशन अपने टूटे-फूटे दफ्तर में दी और उत्तर के पहले ही पोस्ट से सब रुपये निकाल लाया। जल्दी-जल्दी में तैयारी की और उत्तर हिंदुस्तान् में घूमने-घामने के इरादे को लेकर सन्ध्या की गाडी से बीसवीं सदी के बुद्ध की तरह राग-विरागों से मुक्ति पाने के लिये महा-प्रस्थान के पथ की ओर अग्रसर हो गया।

अप्रैल की गर्मी ब्रदीवेमुलाहिजा होती है, फिर पथरीले स्थानो में तो उसका स्वरूप अत्यधिक विराट हो जाता है। लू, क्या चलती है, मानो चिनगारियां झडती हों। मेरे पास केवल एक साधन था जिसके बल पर ही मैं लम्बी यात्रा करने का साहस कर सका था। वह थी मेरी 'प्यारी सुराही'। जाने किस छायावादी कवि की भावना लिये 'मंगल-वेला' में मैंने उसे खरीदा था। उसकी महिमा, गरिमा और गुण आज भी मेरी स्मृतियों के बीच बैठकर मेरे शीतल

निःश्वासो से टकराया करते है।

मिट्टी जिसका अस्तित्व विश्व के अणु परमाणुओं मे व्याप्त है, मिट्टी जिसका सौरभ प्रकृति की सुषमा-कला, कल्पना मे निहित है, जिसका पंच-भौतिक रूप लेकर आज का मानव कंचन सी काया लिये फिरता है—उसी गरिमामयी—मृतिका का वह पात्र मेरे हृदय मे इतना अमूल्य बन गया कि स्वर्ण-पात्र भी उसकी समता न पा सके। चांदी और सोने की प्यालियाँ तो क्या पर पन्ने की प्यालियो से भी पिया जा सकता था उसका शीतल नीर। बस वही मेरे भूत, भविष्य और वर्तमान का स्वरूप बनकर मेरे साथ थी। और मुझे जितनी अधिक उसकी चिन्ता रहती थी, उतनी अपने आपकी भी न थी।

दिन के डेढ दो बजे होगे। गाडी ने लेजाकर झांसी के लम्बे से प्लेट-फार्म पर मुझे छोडा। उन खोमचे वालो ने गर्मी से सूखे हुए गलो की दबी हुई कर्कश आवाजों मे अपनी-अपनी चीजों का ढिढोरा पीटना आरम्भ किया। कुली! कुली! कुली! चिल्ला कर मुसाफिर इधर-उधर दौड पडे। थोडी देर मे ही सारा प्लेटफार्म अनेक रूप-रंग धारी मनुष्यों से भर गया।

मैंने एक कुली को बुला कर सामान बतलाया और गाडी से उतर कर नीचे खडा हो गया। उसने पेटी उठाई, हॉल डाल उठाया और मुझ से पूछकर कानपुर जाने वाली गाडी की तरफ बढा। मेरे एक हमसफर मित्र मेरी वही प्रिय वस्तु, जिसे मैं और मेरा कुली दोनो ही भूल आये थे; लेकर पीछे से दौडते हुए आए और बोले बाबूजी! बाबूजी! ये आपकी सुराही! मैंने भूले हुए बच्चे की तरह उसे उनके हाथ से ले ली और उन्हे धन्यवाद दिया। नाराज़ होकर कुली

से कहा—'क्योंजी ! इसे छोड ही आए, अभी पीते क्या ?' वह सकपकाकर रह गया और आग्रहपूर्वक मेरे हाथ से सुराही लेकर चला। मुझे बडा अच्छा लगा वह मुसाफिर, जिसने भूल से बिछुडी हुई मेरी प्यारी सुराही को मुझसे ला मिलाया। ईमानदारी में वह सौटंच सोना सिद्ध हुआ।

गाडी मे भीड न थी। कुली गाडी पर चढ गया और मैं उस तमाशे को देखता रहा, जहा वह आधी अवस्था का वृक्ष अपनी छाया को अपने तले दबाकर खडा था। उसीके नीचे उस सूखे, काले किन्तु तेज मिजाज़ पानी पाडे की प्याऊ थी। जिसे चारो तरफ से पगडी वाले सेठ, साफे वाले ठाकुर और टोपधारी बाबू लोग घेरे खडे थे। वह किसी की न सुनकर अपने ही मन की कर रहा था। वृक्ष को चारो तरफ से फटे पुराने टट्टों ने घेर रखा था। उस परिधि के अन्दर बडे-बडे पेट और काली-काली सूरत वाले मटके रखे थे, जिनके पराक्रम पर पानी पांडे को राजमद का सा अभिमान था और वह सबको एकही लकडी से हकाल रहा था। पर उन सबके लिए तो वह उस समय मानो भगवान धन्वन्तरी ही हो। तब मैंने जाना कि सचमुच मेरी भूली हुई सुराही अनमोल है।

गाडी मे सामान रखकर कुली मेरी प्रतीक्षा मे खडा था। मैंने उसे पैसे दिए और मैं फिर नीची गर्दन करके गाडी के पास से उसी प्याऊ की तरफ चला। रोगी की भाषा मे जिस प्रकार कम्पाउन्डर डाक्टर साहब कहलाते है। जुर्म की भाषा मे सिपाही जमादार साहब कहलाते है, उसी प्रकार उन सब प्यासो की भाषा मे, वह पानी पांडे, महाराज, भाई साहब, जनाब आदि अनेक उपाधियो से पुकारा जा रहा था। वह कोचर शायिनी

अपनी छोटी आँखो को और तेज कर करके उन सबको खडी बुन्देलखंडी भाषा में डांटता जाता था।

मैं थोडी देर यह तमाशा देखकर ट्रेन के पास आकर टहलने लगा। घडी मे देखा तो पूरे पच्चीस मिनिट गाडी छूटने को बाकी थे।

मैंने देखा, एक बच्चा उसी डब्बे से जिसमे कुली ने मेरा सामान रखा है, लोटा लेकर नीचे उतरा और प्याऊ तक जाकर धूप मे थोडी देर खडा रहा। किन्तु उसकी किसी ने न सुनी, खाली लोटा हिलाता हुआ लौट आया। दूसरी बार फिर वही बच्चा उसी तरह जाकर प्याऊ के पास खडा हो गया, फिर भी उसकी धीमी पुकार किसी ने न सुनी—वह फिर लौट आया। मैं सोच रहा था—'कैसे पागल है इसके साथी, आप न जाकर बेचारे बच्चे को भेजते है। इस बच्चे की क्या हस्ती है, जो प्याऊ से पानी लाए। भला कौन सुनता है नगारखाने मे इस तूती की आवाज। जी चाहता था—इसका लोटा भरवा दूं, किन्तु अपमान की शंका से मेरा साहस न हुआ। वही बच्चा फिर तीसरी बार उतरकर गया, किन्तु गार्ड साहब ने इतने मे ही सीटी बजा दी। उसे किसी ने संकेत से बुला लिया और वह दौड़कर गाडी मे चढ़ गया। जब गाडी सीटी देकर चलने लगी तब मैं भी चढ गया।

सारे दिन की तपी हुई गाडी अंगार सी हो रही थी। मेरा हॉल-डाल कुलीने बीच वाली सीट पर रखा था। मैंने उसे उसी जगह खोला। एक नजर और सुराही पर डाली जो खिडकी के ऊपर वाले बर्थ पर रखी हुई थी। हॉलडाल के पाकिट से पुस्तक निकाली और मैं लम्बायमान होकर मन को पुस्तक में उलझाने लगा।

वह बच्चा मेरे सामने खिडकी के पास एक देवी की गोदमें बैठा था जो भलीभाँति अवगुंठन किए हुए थी। मैंने एक गहरी नजर उन दोनों पर डालकर उनके साथी कोभी देखना चाहा, परन्तु कोई ऐसा व्यक्ति न दिखा जिसे मेरा मन उनका साथी मान लेता। डिब्बे में भीड भाड न थी न अधिक खाली ही था। पैर पर पैर रखकर मैंने पुस्तक मे लिखे हुए काले अक्षरो को पढ़ने की चेष्टा की, परन्तु मेरे मन पर अपने सामने बैठने वाले यात्रियों के लिए अनेक प्रश्न उठने आरंभ हो गए थे। सच पूछिए तो मैं उस पुस्तक की आड मे अपने आपसे प्रश्न ही कर रहा था। मानव आखिर तो मानव है। वह कहीं भी चला जाय पर अपना स्वभाव ऐसा माल नहीं जिसे मानव साथ मे न ले जा सके। गाडी अपनी दौड से दौड रही थी और मेरे विचार भी उसकी दौड का साथ दे रहे थे।

गाडी रुकी, चिरगाँव का स्टेशन था। मुझे भारत भारती के कवि गुप्तजी का स्मरण हो आया और कुछ क्षणो के लिए मेरा मन भी उनके काव्य मे डूब गया। पर देखता हूँ कि वह आवरणमयी मूर्ति खिडकी से बाहर सिर निकालकर दोनों ओर दूर-दूर तक निगाह फैलाकर देख रही हैं। किन्तु वह जिसे चाहती है, उसका वहाँ पता भी नहीं है। पथरीली भूमि मे तो पानी का अक्सर अभाव ही होता है, जिस पर जी० आई० पी० का इन्तजाम। वे हताश हो गईं। धीरे से बच्चे से कुछ कहा। बच्चा तो प्यासा था उसे युवती के प्रिय वचन भी अप्रिय लगे, 'प्यास मे ऐसा ही होता है' गाडी फिर चलदी बच्चा झुंझलाकर उनसे बोला—'तुम तो ऐताई कहती हो आगे पानी मिलेगा, मिलता तो नहीं।' और उसकी आँखो के बडे-बडे पलक गरेरू से भर गए। उन्होने उसे धीरे से

पुचकारा। हाथ मे चादर का छोर लेकर उसके आँसू पोंछे और सरका कर निकट बैठा लिया।

मेरी समझ मे यह बात ज्यों की त्यों आगई, कारण स्पष्ट ही था। मैं चुपके-चुपके उनकी बेबसी का अन्दाज़ लगा रहा था। सोचा कह दूँ! आप मेरी सुराही से पानी लेकर बच्चे को पिला दीजिए! बात तो बहुत अच्छी थी, फिर भी मेरे स्वभाव से विरुद्ध थी। एक पर्दानशीन औरत से आगे होकर बोलना। शायद परिणाम अच्छा नहो। क्योंकि यदि स्त्री प्रसन्न है तो दानव स्वभाव के मनुष्य को देव सिद्ध करसकती है और अगर अप्रसन्न है तो देव को भी दानव बनाते उसे देर नहीं लगती। परन्तु न तो मैं दानव था न देव। साधारण कोटि मे अधिकांश ऐसे ही स्वभाव की स्त्रियाँ होती हैं। सच तो यह है कि यदि मेरी समझ मे कोई बात अभी तक नहीं आई है तो वह है—नारी विज्ञान। लेकिन मैं सोचता हूँ कि मुझ जैसे मनुष्यों को यह निश्चित कठिन विषय भी है। इसीलिए मैं नहीं बोला। पर बच्चे की कुम्हलाई हुई सूरत देखकर मैं जिस धर्म-संकट मे था उसे मैं ही भले प्रकार समझ रहा था, समझाने का विषय नहीं था। फिर भी पल-पल पर बिगडने वाली बच्चे की उस मुद्रा ने मुझे विवश-सा कर दिया। बड़ा संकोच और भयका-सा अनुभव करते हुए मैंने कहा—'मालूम होता है, बच्चा प्यासा है; आप इसे मेरी सुराही से पानी लेकर पिला दीजिये!' दो क्षण बाद मैंने महसूस किया कि उन पर मेरी सहानुभूति ऊसर जमीन का बीज बनकर रह गई है। मैं जिस अपमान की अपने मे शंका कर रहा था, वही मेरे सम्मुख था। बच्चे के चेहरे पर जरूर प्रसन्नता की झलक आई। उसने भोली चितवन से मेरी ओर देखा भी और फिर उन्हीं ललचाई हुई आँखो से उनकी ओर देखा। उन्होंने आँखों ही आँखों

से उनकी ओर देखा। उन्होंने आँखों ही आँखों में शायद उससे कुछ कहा। बच्चा फिर सिमिट कर अपनी उसी आकृति मे आ गया।

मेरी सभ्यता कहती थी अब न बोल, तेरा अपमान हुआ है। हृदय कहता था तेरे पास पानी है और तेरे सामने बच्चा प्यास से कुम्हला रहा है। कैसी समस्या थी! मैंने सोचा—'शायद सुराही को ये बुरी चीज समझती होंगी। इन्हे क्या मालूम है कि इसमे कितने गुण हैं। यह कितनी महिमामयी है। कहाँ से खरीदी गई। कहाँ से भरी गई। कितनी सफर कर चुकी है और यह इन दिनों मे कितने बडे—बडे घरों की लाडली बनकर रहती है। कितनी ऊंची-ऊंची गद्दियों की सम्मानिता है। खासकर कलाकारों को इससे कितना प्यार है। कितने विद्वान इसके नीर से अपनी तृषा शान्त करते हैं। कितनी सुन्दरिया अपने प्रियतम के लिये इसे भर-भर कर रखती हैं। शाही जमाने ने इसकी कितनी बड़ी इज्जत की थी और इसने कितनी बडी शोहरत पाई थी। और आज मेरे भूल जाने के बाद, मुझे मिली थी तब इससे मुझे कितनी बड़ी ममता हुई थी। इसकी ठंडी गर्मी के कारण ही मैं पेट के पाकिट मे हाथ डाल कर झाँसी मे टहलता रहा वर्ना मुझे भी स्वाभिमान खोकर उस मनहूस पानी पाँडे की मिन्नतें करनी पडतीं।'

सहज ही मुझे एक शंका हुई—शायद ये मुझे हिन्दू नहीं समझती होगी। तभी न हिलीं न डुलीं, न अच्छा कहा न बुरा। पानी मे डली की तरह प्रश्न ही गायब। मेरे लिये कहीं बहरी तो नहीं हो गई है—हो अपने को क्या? खयाल तो बच्चे का है, वह प्यासा है। एक बार और इनसे कहकर देख लूँ। फिर पिलाएँ तो इनकी राजी, प्यासा रखें तो इनकी मौज। इस विचार के बाद मैंने उनसे कहा—'मैं ब्राह्मण

हूँ, आप संकोच न करें बच्चे को पानी पिला दें। पानी होते हुए क्यों इसे प्यासे मार रही है।'

वे कुछ न बोली। मुझे क्रोध आ रहा था। बडे इतमीनान से उन्होने अपने कपड़े सम्हाले और पास मे रखे हुए लोटे को लेकर खडी हो गईं। उनके गुलाबी हाथो की नीली-नीली चूडियाँ, पतली-पतली उंगलियों का तीखापन और उन नाखूनो की लाली। मेरे मन मे आकर्षण को स्थान दे रही थी उनके पैर का महावर और पैंजन की धीमी-सी झनक। मुझे ऐसा लगा मानो उमर खैयाम की कल्पना मूर्त्ति रूप लेने जा रही है। बस फिर क्या था—मैंने—मानो विजय पा ली हो। उनका कद न ऊंचा ही था न नीचा ही, बडा ही अच्छा था। शरीर मे लावण्य था। और देखता हूँ कि उनकी वेणी कटि से नीचे आकर नाग जिह्वा की भाँति थोडी वाहर आकर उर्ध हो गई है। वाएँ हाथ से उन्होने मेरी सुराही का गला पकड लिया। दाहिना हाथ लोटा लेकर सुहारी के पास पहुंचा। मानो वह धातु-पात्र की याचना को मिट्टी की सुराही खिल, खिल, खिल कर हँसते हुए पूर्ति कर रही है। वही सुराही जिसने अब तक मेरी प्यास बुझाई थी।

कैसा अच्छा दृश्य, कैसी अनोखी छबि, कैसी अनुपम शोभा। आज भी मेरी आँखो मे वह तस्वीर-सी वनी हुई है। मुझे तो क्या? उमर खैयाम को भी शायद ही ऐसी सुरा और सुन्दरी की झाँकी के दर्शन हुए हो। उन्होंने सुराही को यथावत् जमाकर लोटा बच्चे को दे दिया। वे बैठ गईं। बच्चे ने लोटे को एक ही साँस मे गट, गट, गट, करके रिक्त कर दिया। मुझसे फिर न रहा गया। मैंने कहा—'और ले लीजिए न! बच्चे को भी अच्छी तरह पिला दीजिए और धार्मिकता मे कोई भारी आपत्ति न आती हो तो आप भी...।'

जरा झिझकते हुए वे फिर उठीं। उसी प्रकार फिर लोटा

भरा गया। बच्चे ने फिर एक-दो घूंट पानी पिया और लोटा उन्हें सौंप दिया। देखता हूँ कि लोटा अवगुंठन में छिप गया। बच्चे के चेहरे पर चैतन्य आया। वे भी मुँह पोछ कर राहत की साँसें लेने लगीं और प्रसन्नता के साथ बच्चे को ममता पूर्वक अपने पास सरका लिया। मानो हम सब एक ही साथ धर्म संकट से मुक्त हो गये हों।

❀ ❀ ❀ ❀

मन की बुद्धि जब हृदय की मथानी में मंथन करती है, तो जीवन का दर्शन मक्खन बनकर अपने ही आप ऊपर आ जाता है। उनकी दृढ़ता ही मेरा आकर्षण बन गई थी। और उनकी मर्यादा मेरी मानवी भावनाओं को अधिकाधिक उत्तेजित कर रही थी। उनका अवगुंठन मेरी पिपासाओं को बलवती बना रहा था और इस प्रकार वह पूरी की पूरी नारी, कविता कादम्बिनी की तरह मेरे लिये—रूप, गुण, प्रतिभा, रस और आकर्षणमयी बनकर मेरे मन-प्रदेश पर छाती जा रही थी।

मेरी प्रणय परिभाषा में प्रणय इस संसार का सर्वश्रेष्ठ पुण्य है और वह बड़भागी है, जिसे वह प्राप्त हो। वे जाने क्यों मुझे उसकी अधिकारिणी-सी मालूम होती थीं, ईश्वर ने—नारी सुलभ लज्जा, शील, संकोच, गुण और गरिमा सभी कुछ उस एक नारी में केंद्रित कर दिए थे। मुझे क्या मालूम था कि उनकी दृढ़ता मेरी दृढ़ता को परास्त कर देगी। इस रहस्य को मैं स्वयं भी न जान पाया कि अपने आपको भूलकर मैं क्यों अधिकाधिक प्रभावित होता जा रहा हूँ।

मैंने अपनी पेटी खोली। झोला निकाला और उससे कुछ फल निकाल कर बच्चे की ओर बढ़ाए। उन्होंने अवगुंठन की दृष्टि से फल देखकर बच्चे को कुछ संकेत कर दिया। बच्चा क्षण भर को चंचल होकर फिर शान्त-सा हो गया। और मेरा हाथ आगे बढ़ा का बढ़ा ही

रह गया। मैंने आग्रह की भाषा में कहा—'लो बच्चे खाओ! यह तो खाने की ही चीजें हैं।' बच्चे का साहस न हुआ और ललचाई हुई आँखों से टुकुर टुकुर फलों की ओर देखकर फिर युवती की मुँह की ओर देखा। मैंने फिर कहा—'आप आज्ञा दे दीजिए! बच्चे तो मनुष्य मात्र के ही प्रेम-पात्र होते हैं।'

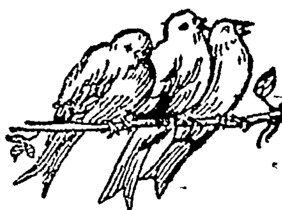
इस बार वे मेरे अनुरोध को न टाल सकीं। बच्चे को आज्ञा मिली। उसने आगे बढ़कर दोनो हाथो मे फल ले लिये। मैंने फिर कुछ फल लिए और हाथ उनकी तरफ बढाया। उन्होने अवगुंठन से हाथ निकाला। मैंने अपना हाथ और आगे बढ़ा दिया। लेकिन किसे मालूम था कि वह हाथ क्षण भर मे जरा हिलकर ही मेरी आशाओ को समूल नष्ट कर देगा। फिर लज्जित होकर वे फल मैं स्वयं ही खाने लगा। वे बच्चे को छील-छील कर खिलाने लगीं।

सोचा तो यह था कि इस प्रयत्न से मेरा परिचय अधिक बढ जायगा। किंतु मुझे ऐसा भान हो रहा था—मानो इस प्रयत्न ने पिछला परिचय भी नष्ट कर दिया।

बच्चे का भोलापन और आज्ञाकारिता अपने ही आप मेरे दिल में घर कर रही थी। बच्चो से प्रेम करना मेरा पुराना स्वभाव है। परन्तु साफ, सुथरे, स्वच्छ और सुन्दर बच्चो से। मेरा जी चाहता था कि इस प्यारे मुन्ने को गोद मे बैठा लूँ इसके भूरे-भूरे घुंघराले बालो को सहला लूँ। और इससे-इस जैसी बाते करके इसकी तोतली बोली का आनन्द लूँ। परन्तु मेरी अधिकार मर्यादा फिर आडे आ गयी। मर्यादा कहती थी—'तू तो राही है, मुसाफिर है, अपरिचित है, तेरे अधिकार तो केवल देख सकने तक ही सीमित है। तू इसे .....।

फिर मैं उससे बोल ही उठा—'तुम्हारा क्या नाम है बच्चे?' वह बोला—'कुमाल।'

'नाम तो तुम्हारा बड़ा अच्छा है, हमारे नाम से बदलते हो?' बच्चे ने भी युवती की ही तरह अपना छोटासा हाथ हिलाकर एक अजीब ढंग का मुंह बना कर हँसते हुए कहा—'नहीं।'



# टिकिट नहीं है

मैं मन के भावों को ज्यो-त्यो कर बटोरता। किन्तु फिर एक अज्ञात औत्सुक्य मेरे हृदय-स्थल को कंपित कर देता और वे पुन: बालू कण की भॉति बिखर जाते। मेरी पुस्तक के पृष्ठ बंद हो जाते और मैं डिब्बे की छत मे ऑखे अटकाकर ज्योतिहीन बत्ती से प्रश्न करने लगता। 'आखिर ये हैं कौन ?' बत्ती युवती की भॉति मौन, अचल, अविकल। तब मैं दृष्टि हटाकर युवती और बच्चे की ओर देखने लगता इस आशा से—जैसे वे अंतरयामिनी मेरे मूक प्रश्नो का वाणी की रचना मे उत्तर देंगी, पर व्यर्थ।

क्या हो गया था मुझे। जीवन मे पहली बार ऐसा कटु अनुभव कि न तो मन की बागडोर तनी, न बुद्धि की कांठी तंग हुई, न उत्साह की गति ही धीमी हुई फिर भी मेरी सरस प्रेरणाएं सवार होकर दौडती जाती थी और विवेक थककर चूर-चूर, बैठा था। कैसी निकटता मे दूरी थी, कैसी अजीब बेचैनी थी, कैसा अपरिचित उन्माद था। मैंने उनकी आयु का अन्दाज लगा लिया। भेष से उच्चवर्णीयता का भी विश्वास कर लिया, लेकिन रूप! और कहॉ से आई होगी ? कहॉ जाएंगी ? ये सब प्रश्न मेरे लिए विषम पहेली बनकर मेरी जिज्ञासा और उत्सुकता को गतिवान बनाते जाते थे। मैं अपने ही मे अनुभव कर रहा था कि मेरी युक्ति और तर्क दोनों ही इस अगम-क्षेत्र मे क्यो परास्त हो गई है।

यदि मैं उस नारी-आत्मा को समझ पाता जो आवरण से अपने आपको छिपाए रहती है तो आज मैं यह न कहता कि जीवन भर समझने की चेष्टा करने पर जो भली भॉति न समझी जा सके, उसका

नाम नारी है।

कुमार सहज ही फल खाने के बाद मुझे अपना-सा व्यक्ति समझने लगा था। और साहसी होकर थोड़ा बहुत इधर-उधर भी घूम फिर लेता था। जब वह मेरे पास आ जाता तब मैं उसका हाथ पकड़कर अपने पास कर लेता और उसके गुलाबी कपोलों को हिलाकर कहता—'क्यों कुमार और कुछ खाना है? पानी पीना है?' तब वह नेत्रानंद देने वाली अपनी बड़ी-बड़ी निर्मल आँखें नचाकर, कभी हाथ हिला कर 'नहीं' कह देता। मैं अनुभव कर रहा था कि बच्चे का शिक्षण और अनुशासन की मर्यादा उसकी अवस्था से कहीं अधिक बढ़ी-चढ़ी थी। दो तीन बार मेरे और उसके बीच यही बात हुई।

मैंने भी अपना ग्लास निकालकर सुराही से जल-प्राप्ति की आराधना की और मन ही मन कहा—'देवी! तुम आज महाभागा हो। तुम्हें सुन्दर कर-कंजों का कोमल स्पर्शानंद मिला है। तुम्हारे शीतल नीर ने एक सुन्दरी की तृषा शान्त की है। यदि आज तुम न होतीं तो इस परिचय का हेतु कौन बनता? क्या तुम्हारी शीतल बूंदों का गुण अमृत से कम है?'

मैंने देखा कि उनके हृदय पर मेरे उठते और गिरते भावों के प्रति किंचित भी कौतूहल न था। इसलिए मैं एक नारी की महानता, उसके हृदय की विशालता और मन की महान स्थिरता में डूबा जा रहा था मैं कहता था—यह है नारी की वह क्षमता जिसके सम्मुख मेरे सारे कौतूहल, मेरे हृदय का सारा निनाद, और आत्मा का सारा आकर्षण लज्जित है। और मैं रूप की उस चकाचौंध में चकित था। मरीचिका की निकटता में मृगवत कोसों की दूरी पार करता हुआ अपनी ही आत्मा की प्रतिध्वनि में पराई आवाज का विश्वास कर रहा था।

—योगी पुरुष भले ही डोल सकता है, किन्तु अचला नारी का मन

# टिकिट नहीं है

मैं मन के भावों को ज्यों-त्यों कर बटोरता। किन्तु फिर एक अज्ञात औत्सुक्य मेरे हृदय-स्थल को कंपित कर देता और वे पुनः वालू कण की भाँति विखर जाते। मेरी पुस्तक के पृष्ठ वंद हो जाते और मैं डिब्बे की छत मे आँखे अटकाकर ज्योतिहीन वत्ती से प्रश्न करने लगता। 'आखिर ये है कौन ?' वत्ती युवती की भाँति मौन, अचल, अविकल। तव मैं दृष्टि हटाकर युवती और वच्चे की ओर देखने लगता इस आशा से—जैसे वे अंतरयामिनी मेरे मूक प्रश्नो का वाणी की रचना मे उत्तर देंगी, पर व्यर्थ।

क्या हो गया था मुझे। जीवन मे पहली वार ऐसा कटु अनुभव कि न तो मन की वागडोर तनी, न बुद्धि की कांठी तंग हुई, न उत्साह की गति ही धीमी हुई फिर भी मेरी सरस प्रेरणाएं सवार होकर दौड़ती जाती थीं और विवेक थककर चूर-चूर, वैठा था। कैसी निकटता मे दूरी थी, कैसी अजीव वेचैनी थी, कैसा अपरिचित उन्माद था। मैंने उनकी आयु का अन्दाज लगा लिया। भेप से उच्चवर्णीयता का भी विश्वास कर लिया, लेकिन रूप! और कहाँ से आई होगी ? कहाँ जाएंगी ? ये सब प्रश्न मेरे लिए विपम पहेली वनकर मेरी जिज्ञासा और उत्सुकता को गतिवान बनाते जाते थे। मैं अपने ही मे अनुभव कर रहा था कि मेरी युक्ति और तर्क दोनों ही इस अगम-क्षेत्र मे क्यो परास्त हो गई है।

यदि मैं उस नारी-आत्मा को समझ पाता जो आवरण से अपने आपको छिपाए रहती है तो आज मैं यह न कहता कि जीवन भर समझने की चेष्टा करने पर जो भली भाँति न समझी जा सके, उसका

टिकिट नही है। ]

नाम नारी है।

कुमार सहज ही फल खाने के बाद मुझे अपना-सा व्यक्ति समझने लगा था। और साहसी होकर थोड़ा बहुत इधर-उधर भी घूम फिर लेता था। जब वह मेरे पास आ जाता तब मैं उसका हाथ पकड़कर अपने पास कर लेता और उसके गुलाबी कपोलो को हिलाकर कहता—'क्यो कुमार और कुछ खाना है ? पानी पीना है ?' तब वह नेत्रानंद देने वाली अपनी बड़ी-बड़ी निर्मल आँखे नचाकर, कभी हाथ हिला कर 'नही' कह देता। मैं अनुभव कर रहा था कि बच्चे का शिक्षण और अनुशासन की मर्यादा उसकी अवस्था से कहीं अधिक चढ़ी-चढी थी। दो तीन बार मेरे और उसके बीच यही बात हुई।

मैंने भी अपना ग्लास निकालकर सुराही से जल-प्राप्ति की आराधना की और मन ही मन कहा—'देवी ! तुम आज महाभागा हो। तुम्हे सुन्दर कर-कंजो का कोमल स्पर्शानंद मिला है। तुम्हारे शीतल-नीर ने एक सुन्दरी की तृषा शान्त की है। यदि आज तुम न होती तो इस परिचय का हेतु कौन बनता ? क्या तुम्हारी शीतल घूंटो का गुण अमृत से कम है ?'

मैंने देखा कि उनके हृदय पर मेरे उठते और गिरते भावों के प्रति किंचित भी कौतूहल न था। इसलिए मैं एक नारी की महानता, उसके हृदय की विशालता और मन की महान स्थिरता मे डूबा जा रहा था मैं कहता था—यह है नारी की वह क्षमता जिसके सम्मुख मेरे सारे कौतूहल, मेरे हृदय का सारा निनाद, और आत्मा का सारा आकर्षण लज्जित है। और मैं रूप की उस चकाचौंध मे चकित था। मरीचिका की निकटता में मृगवत कोसों की दूरी पार करता हुआ अपनी ही आत्मा की प्रतिध्वनि मे पराई आवाज का विश्वास कर रहा था।

—योगी पुरुष भले ही डोल सकता है, किन्तु अचला नारी का मन

डोल नहीं सकता। और मैं उनकी इन्ही विशेषताओं पर अधिकाधिक प्रभावित होता जा रहा था। मैं अपनी बढ़ी हुई बेवसी को भगीरथ प्रयत्नो द्वारा छिपाने का यत्न कर रहा था। और वे उस शुष्क-प्रदेश की भग्न शोभा के निरीक्षण में ही अपने मन का बहलाव करती जा रही थीं। इस प्रकार इधर गाडी कानपुर के नजदीक पहुंचने लगी, उधर सूर्य-देव संध्या के नजदीक पहुंचने लगे, पर मैं एक ही डिब्बे मे होकर भी उनसे एक अदृश्य-दूरी का अनुभव कर रहा था।

डिब्बे के अन्य यात्रियों मे, कानपुर की गर्मी, वहाँ का रोजगार, वहाँ की मंहगाई आदि भिन्न-भिन्न विपयो पर विभिन्न स्वरों मे चर्चाएं चल रही थीं और मतमतान्तरो की तो गिनती ही क्या थी। न तो उन्हे हम तीनों से कोई प्रयोजन था न हम सबको उन लोगो से। वे जाने हमे क्या-क्या समझते थे। चाहे जिसने जो भी समझा हो। हम सब तो वे तिनके थे जिन्हे अज्ञात वायु ने अज्ञात घडी मे उडा कर एकत्रित कर दिया था। फिर भी मैं उन पराए समझने वालो को अपना ही-सा समझ रहा था। पाप से भय का उतना ही निकट नाता है जितना प्रकाश का अंधेरे से। जहां मनुष्य कुभावो के साथ टिमटिमाते प्रकाश से कंपित हो जाता है वहाँ मैं—सूर्य के व्यापक-प्रकाश-पुंज मे भी उन उतने व्यक्तियो के सम्मुख कितना निडर कितना निर्भीक, और कितना साहसी था,—कुछ कह नहीं सकता।

कानपुर एक दो स्टेशन ही बाकी था। मेरे डिब्बे के अन्य यात्री अपने चेहरों पर पहुंचने के भाव बनाते जाते थे और अपना सामान भी व्यवस्थित करते जाते थे। मेरा हाल न पूछिए! मुझे न तो हॉलडाल बाँधना अच्छा लगता था न कानपुर पहुंचना ही। मुझसे मेरी खुशी —कोसों दूर चली जा रही थी। सच पूछिए, तो मैं यह

चाहता था कि गाडी जितनी धीरे चल सके चले। और हम इसी तरह इसमें बैठे रहे। उस अपरिचिता के प्रति, उसके मौन साधक व्यापारो के प्रति हृदय मे मोह इतना गहन जमकर बैठ गया था कि, न जाने क्यों कानपुर स्टेशन की निकटता से हृदय स्वयं को कुछ खोया खोया अनुभव करता जा रहा था। गाडी अपनी मंजिल की ओर उसी गति से बढ रही है। काल की गति को, समय के वेग को कौन रोक पाया है? किसने, दूरी से निकटता को नापा है? इस तुमुल कोलाहल मय विश्व के अभियान मे मिलन और वियोग की अनन्त घडियो को अनन्त नक्षत्रो की तरह कोई नही नाप पाया है। उस अवगुंठनवती का सामीप्य मानो अपना हो चला था—एक शंका मेरे हृदय मे प्रवेश कर चुकी थी जो मेरे मन से मन ही मे कह रही थी—'कानपुर आते ही यह परिवार पराया हो जायगा और ये हीरे जाने कहां जाकर चमकेंगे।'

'मुसाफिर की जिन्दगी भी क्या कोई जिन्दगी है? क्या सफर का परिचय भी कोई परिचय है? कुछ क्षणो का साथ भी कोई साथ है? यह सब जानते हुए भी मैंने क्यो यह माया-मोह की बस्ती बसाई जो अभी-अभी मेरी इन आँखों के नव निर्मित स्वप्न को बिखेर करके ओझल हो जायगी। और मैं फिर ज्यों का त्यो—एकाकी हो जाऊंगा जैसा वर्षों से हूं।' मैं अपनी इस बेसमझी पर अपने ही आप खिन्न हो रहा था।

लीजिए! यह बिजली की बत्तियों का झुंड तो कानपुर का ही है। और यह गाडी भी अब कानपुर की ही सीमा मे चल रही है। ये अब पटली भी बदलने लगी। कमबख्त खडी भी हो गई! दोपहर का ही दृश्य एक भारी भीड-भाड़ मे रोशनी मेरे अपरिचित चेहरो को

चमकाने लगी । ये पल्टन की तरह एक कतार में खड़े हुए कानपुर के कुली हैं । ये चिल्लाते हुए खोंमचे वाले और यह उठता हुआ सदेह कोलाहल । ये मुसाफिर उतरने भी तो लगे ।

मैं भी एक लम्बी सर्द साँस लेकर उठ खड़ा हुआ । —क्या करता, उठना ही पड़ा । अनमना हो अपना हॉलडाल लपेटा । कुली को बुलाया और उससे एक साँस में ही कहकर कि 'ये सामान उतारो,' मैं निर्मोही की भाँति उतर गया । क्या करता मन के सारे भावो को बरबस सभ्यता की आड में छिपाना पड़ा । एक तो मेरा मन यों ही मेरा मन न रह गया था । फिर चारों तरफ का असह्य कोलाहल मुझे मेरी निराश कल्पनाओं के रूप में पीड़ा पहुँचा रहा था ।

बेबसी से कठोर हुए क्षण । आत्मवेधक-सी अभागी घड़ियाँ । बड़े असह्य हो गये थे वे पल जो आज भी रोमांच पैदा कर देते हैं । कुली पेटी और हॉलडाल लेकर नीचे उतरा और मैं उस खिड़की की ओर बढ़ा जहां वे बैठी थीं—नमस्ते करने, और दिए हुए कष्ट की सभ्यता के नाते क्षमा-याचना करने । परन्तु सभ्यता की सीमा ने मुझे अपने हृदय के उद्‌गारो को प्रकट करने से इस तरह रोका—मानो किसी के अज्ञात हाथों ने मुझे रोक लिया हो ।

वे खड़ी होकर अपने वस्त्र ठीक कर रही थीं । मैंने कुमार को सम्बोधित करके कहा—'अच्छा कुमार खुश रहना.     ।' इतने में ही उन्होंने मेरी ओर देखा । मैंने दोनो हाथ जोड़कर मूक नमस्ते की । आँखे ही कुछ कह रही थीं । मुँह बेचारा तो जैसे गिरवी रखा गया हो । मन कह रहा था, कुछ इनसे भी कह ले, यह विदा वेला ..... ।

धीमी खट,खट,खट,की आवाज के सम्बोधन के साथ ही वे मेरी सुराही उठाकर खिड़की से मुझे थंभाने लगी । और मैंने देखा फिर वे नीली नीली चूड़ियाँ हिलीं । नाखूनों की लाली आँखों से टकराई ।

उंगलियों के तीखेपन ने फिर से दिल में एक अमिट–स्मृति चिन्ह अंकित कर दिया। मैंने दिल मसोसे हुए, पीडित, आहत–हो, नजदीक बढ़कर सुराही ले ली, परन्तु मेरी आँखें उस कांतिमय अवगुंठित अर्ध चन्द्राकार मुखमण्डल की अनुपम शोभा का आनन्द लेने में ही लीन हो चुकी थी। सुराही झेलते हुए मेरी उंगलियो से उनकी उंगलियो का जो क्षणिक स्पर्श हुआ कि मानो विद्युत ने मेरे सारे शरीर को रोमांचित कर दिया। उसी क्षण उन्होने अपने दिव्यानन को शीघ्रता से ढँक लिया। मैं देखता हूँ कि मेरे अचेतन–से शरीर मे चेतना का भान करानेवाली, मेरे सुख और दु:ख का एकमात्र कारण वही सुराही हाथ मे रह गई है।

उन्होने पेटी हाथों मे ली। मैंने कहा—'लाइये, मुझे दे दीजिए।' एक हलकी–सी झिझक के बाद उन्होंने भली भाति सम्हल कर पेटी खिडकी पर रख दी मैंने खीचली। बिस्तर भी दे दीजिए।' पेटी रखकर बिस्तर भी उसी तरह झेल लिया। उसे भी नीचे रखकर मैं उनके उतरने की राह देखने लगा। उन्होंने इधर–उधर देखा। कुमार का हाथ पकडा और चलकर धीरे–धीरे डब्बे से नीचे उतरी। बडी अच्छी तरह चलना जानती थीं वे। मेरे थोडे पास आकर खडी हो गईं। मैंने कहा—'यह सामान भी कुली पर रखा दूं न ?'

उन्होने उत्तर न देकर केवल मस्तक ही हिला दिया।

'आप कहाँ जाएँगी ?'

फिर भी वे कुछ न बोलीं। अपने खुसे हुए चादर के छोर से खोलकर एक टिकिट मेरी ओर बढा दिया। मैंने साहस पूर्वक टिकिट लेने के लिये हाथ बढ़ाया। उन्होंने जरा ऊपर से मेरे हाथ पर छोड दिया। उस झोन टिकिट की उस रोज ही अन्तिम तारीख थी और वह कानपुर में ही अपनी मंजिल तय करके खत्म होता था। लाल पत्थर

मैं वहुत खुश हुआ—'भानुजा देवी'।

मैंने उनसे पूछा—'आपका ही नाम भानुजादेवी है न ?'

उन्होंने अस्वीकारात्मक मस्तक हिला दिया। उनकी सचाई और मुझ पर किया गया विश्वास मुझे और भी कायल बना चुका था। तुरन्त ही आने वाली परिस्थिति का अनुमान करके मैंने उनसे कहा—'यह नाम आपका नहीं है तो भी आपको अपना ही वतलाना चाहिए। यदि यहा की तरह पूछने पर आपने वहां भी मस्तक हिला दिया—तो यह टिकिट एकदम गलत समझा जायग। और डबल चार्ज देना पडेगा—आप समझ गईं न ?'

उन्होंने उत्तर मे घूंघट को और थोडा नीचे सरका लिया।

मैंने कहा—'और इस बच्चे का टिकिट ?'

रसमयी सारिका के स्वर की एक क्षीण ध्वनि मेरे कानों में पडी—'नही है।' स्थिति जरा अटपट थी फिर भी समझ मे आ गई। वजन सिर पर लादे हुए कुली का खयाल करते हुए मैंने कुली से कहा—'इस समान को भी उठा लो !'

कुली ने उस सामान को भी सिर पर चढा लिया।

मैंने कहा—'लो ! ये सुराही भी एक हाथ मे ले लो ?'

उन्होंने सुराही का नाम सुनते ही तुरन्त अपना हाथ मेरे सुराही वाले हाथ की तरफ बढाया। मैंने सुराही उन्हे दे दी और कुमार का हाथ अपने हाथ मे लेकर कुली से कहा—'चलो !'

आगे-आगे कुली था, कुली के पीछे मैं और मेरे पीछे वे। गेट की भीड इतनी देर मे बहुत कुछ कम हो गई थी। कुली आसानी से गेट से पास हो गया। मैंने, जो व्यक्ति गेट पर खडा था, उस काले सुकडे सिगरेटबाज गेट कीपर को दोनों टिकिट एक साथ दे दिए। दूसरे

टिकिट का मतलब वह बडी आसानी से समझ गया। किन्तु उसकी गढे मे धँसी हुई छोटी और चंचल आँखें कुमार को देखे बिना न रह सकीं।

सिगरेट फेंकते हुए बोला—'इसका टिकिट किडर है ?'

मैं बोला—'जी ! इसका टिकिट, नही हैं।'

'ठहरो ! इसका इडर चार्ज देना परेगा।'

'नहीं लगता इसका चार्ज।'

जरा तेज होकर बोला—'इसका चार्ज जरूर लगेगा, बगैर चार्ज दिए आप नहीं जा सकता है।'

उसी स्वर में मैं भी बोला—'आप देखेंगे कि मैं जाता हूँ या नहीं, यह अभी तीन साल से कम का है।'

आश्चर्य में डूबकर बोला—'ओह ! कितना बरा लगता है, तीन साल का कैसे हो सकता है।'

'जरूर है, आप क्या जाने, मैं जानता हूँ इसकी बर्थ डेट।'

'क्या है ?'

जो मैंने पहले ही सोचली थी वही कह डाली—'थर्ड मार्च नाइनटीन थर्टी फोर।'

वह आश्चर्यान्वित होकर बोला—'ओ बाबा ! इतना बरा लरका तीन · ··।'

मैंने धैर्य के साथ कहा—'आप देखिए ! जिसका बाप इतना तगडा, ऊंचा-पूरा होगा उसका लड़का अगर ऐसा न होगा तो कैसा होगा ! आप जानते हैं ! जो दिनभर में सेर डेढ सेर दूध पी जाता है, फल खा जाता है और आप से शायद ज्यादा ही खाना भी खा जाता होगा—उसकी हैल्थ कैसी होगी।'

इस बीच मे ही एक मोटे-काले और ऊंचे-पूरे महाशय आकर

खड़े हो गए थे,—वे शायद इन्स्पेक्टर होंगे और बड़ी सावधानी से हमारी बातें सुन रहे थे। मैं कह रहा था—'अगर तीन साल से बड़ा ही होता तो हम टिकट ही न ले लेते, आप हमें क्या रजील समझते हैं? जरा विचार तो करिए।'

वे मोटे साहब मेरे कंधे पर हाथ रखकर बोले—'आप ठीक कहते हैं, हमारा बच्चा भी अपनी उम्र से बड़ा मालूम होता है। आप लोग जाइए। उससे बोले—'जाने दो जी इन्हें!'

हम लोग चल दिए—उसी तरह।

कुली जाकर मुसाफिरखाने के मैदान में खड़ा हो गया था। एक दूसरे कुली की सहायता से उसने सामान उतार कर नीचे भी रख दिया। हम सब भी पहुँच गए। मैं कुमार के प्रकरण को मन ही मन दुहरा रहा था। कुमार के गालों पर हाथ लगा कर कहा—'क्यों बेटा! बिना टिकिट ही सफर करते हो?'

कुमार मेरी बात के अर्थ को न समझा, परन्तु वे जरा लज्जित सी होकर उधर मुड़ गईं। कुमार प्यारी-प्यारी चितवन से कभी मेरी तरफ और कभी उनकी तरफ देख रहा था।

मैंने कहा—'यदि आप आपत्ति न समझें तो बतला दें, अब आप कहाँ जाएँगी?'

वे बड़ी मजबूरी सी मानकर बोलीं—'फतहपुर।'

मैंने पूछा—'फतहपुर गाड़ी किस समय जाती है आपको मालूम है?'

उन्होंने उत्तर न देकर मस्तक ही हिला दिया।

'तब आप अपने बेटे को सम्हालिए, मैं आपकी गाड़ी के समय

का पता लगा लूँ।' कुमार का हाथ छोड़कर मैं बुकिंग आफिस की ओर बढ़ चला। पूछने पर मालूम हुआ, गाड़ी रात को सवा दो बजे खुलती है। और मैंने अपनी घड़ी मे देखा तो ठीक पौने सात बजे थे।

आकर उनसे कहा—'अभी पौने सात बजा है। आपकी गाड़ी सवा दो बजे खुलेगी। याने पूरे सात घण्टे तक आपको गाड़ी की प्रतीक्षा करनी होगी।'

मेरे मुँह से यह बात सुनकर उन्हे, कोई हैरानी न हुई न कोई चिन्ता हुई। वे पूर्ववत् ज्यो की त्यो बैठी रहीं—न कुछ बोली ही। मै सोच रहा था—'अपने भावों और उद्वेगों के दबाने मे नारी जाति कितनी सिद्ध-हस्त है। क्या पुरुष कभी इतना सफल हो सकता है?' मेरे सम्मुख एक समस्या थी, अब क्या किया जाय?

थोड़ी देर सोच-विचारकर मैंने कहा—'बड़े शहर का मामला है। सब मुसाफिर एकसाँ नही आते, आपको यहाँ लगातार सात घण्टे काटना तो मुश्किल हो जायेंगे? न हो तो आप मेरे ही साथ चलें। मैं यहाँ ही इस सामने वाली धर्मशाला में ठहरूंगा। जब गाड़ी का समय हो जायगा तब आपको गाड़ी मे बैठा आऊंगा।'

वे कुछ न बोलीं, जैसे मेरे प्रश्न पर विचार कर रही हों।

मैंने कहा—'कहिए! कुली बेचारे को कितना समय हो गया है?' वे उठ खड़ी हुईं।

'चल रही है न आप मेरे साथ?'

उन्होने कपड़े सम्हाल कर रखी हुई सुराही को हाथ में उठा लिया। मैंने कुली से कहा—'चलो भाई, सामने वाली धर्मशाला मे हम लोगों का सामान ले चलो।'

उस बेचारे कुली ने बिना कुछ कहे-सुने फिर सामान अपने सिर पर लाद लिया। मैंने कुमार का हाथ फिर अपने हाथमें ले लिया।

खड़े हो गए थे,—वे शायद इन्स्पेक्टर होंगे और बड़ी सावधानी से हमारी बातें सुन रहे थे। मैं कह रहा था—'अगर तीन साल से बड़ा ही होता तो हम टिकट ही न ले लेते, आप हमें क्या रजील समझते हैं? जरा विचार तो करिए।'

वे मोटे साहब मेरे कंधे पर हाथ रखकर बोले—'आप ठीक कहते हैं, हमारा बच्चा भी अपनी उम्र से बड़ा मालूम होता है। आप लोग जाइए। उससे बोले—'जाने दो जी इन्हें!'

हम लोग चल दिए–उसी तरह।

कुली जाकर मुसाफिरखाने के मैदान में खड़ा हो गया था। एक दूसरे कुली की सहायता से उसने सामान उतार कर नीचे भी रख दिया। हम सब भी पहुँच गए। मैं कुमार के प्रकरण को मन ही मन दुहरा रहा था। कुमार के गालों पर हाथ लगा कर कहा—'क्यों बेटा! बिना टिकिट ही सफर करते हो?'

कुमार मेरी बात के अर्थ को न समझा, परन्तु वे जरा लज्जित सी होकर उधर मुड़ गईं। कुमार प्यारी–प्यारी चितवन से कभी मेरी तरफ और कभी उनकी तरफ देख रहा था।

मैंने कहा—'यदि आप आपत्ति न समझें तो बतला दें, अब आप कहाँ जाएँगी?'

वे बड़ी मज़बूरी सी मानकर बोलीं—'फतहपुर।'

मैंने पूछा—'फतहपुर गाड़ी किस समय जाती है आपको मालूम है?'

उन्होंने उत्तर न देकर मस्तक ही हिला दिया।

'तब आप अपने बेटे को सम्हालिए, मैं आपकी गाड़ी के समय

का पता लगा लूँ ।' कुमार का हाथ छोडकर मैं बुकिंग आफिस की ओर बढ चला । पूछने पर मालूम हुआ, गाडी रात को सवा दो बजे खुलती है । और मैंने अपनी घडी मे देखा तो ठीक पौने सात बजे थे ।

आकर उनसे कहा—'अभी पौने सात बजा है । आपकी गाडी सवा दो बजे खुलेगी । याने पूरे सात घण्टे तक आपको गाडी की प्रतीक्षा करनी होगी ।'

मेरे मुँह से यह बात सुनकर उन्हे, कोई हैरानी न हुई न कोई चिन्ता हुई । वे पूर्ववत् ज्यो की त्यों बैठी रहीं—न कुछ बोली ही । मैं सोच रहा था—'अपने भावो और उद्वेगों के दबाने मे नारी जाति कितनी सिद्ध-हस्त है । क्या पुरुष कभी इतना सफल हो सकता है ?' मेरे सम्मुख एक समस्या थी, अब क्या किया जाय ?

थोडी देर सोच-विचारकर मैंने कहा—'बडे शहर का मामला है । सब मुसाफिर एकसॉ नहीं आते, आपको यहॉ लगातार सात घण्टे काटना तो मुश्किल हो जायेंगे ? न हो तो आप मेरे ही साथ चलें । मैं यहॉ ही इस सामने वाली धर्मशाला में ठहरूंगा । जब गाड़ी का समय हो जायगा तब आपको गाडी मे बैठा आऊंगा ।'

वे कुछ न बोलीं, जैसे मेरे प्रश्न पर विचार कर रही हों ।

मैंने कहा—'कहिए ! कुली बेचारे को कितना समय हो गया है ?' वे उठ खडी हुईं ।

'चल रही हैं न आप मेरे साथ ?'

उन्होंने कपडे सम्हाल कर रखी हुई सुराही को हाथ मे उठा लिया । मैंने कुली से कहा—'चलो भाई, सामने वाली धर्मशाला मे हम लोगों का सामान ले चलो ।'

उस बेचारे कुली ने बिना कुछ कहे-सुने फिर सामान अपने सिर पर लाद लिया । मैंने कुमार का हाथ फिर अपने हाथमे ले लिया ।

वे और भी आवरणमयी नई नवोढा-सी मन्द-मन्द गति से मेरे पीछे चली आ रही थीं। और उनके हाथ में पहुँचकर क्या मिज़ाज पाया था उस सुराही ने—बस कुछ न पूछिए! कम्बख्त कोई शायर उस समय नहीं हुआ नहीं तो उसे कुछ न कुछ मसाला तो मिल ही जाता।

कुमार के साथ-साथ मेरी चाल अपने ही आप धीमी पड गई। सहसा मुझे याद हो आया अपनी देहात का बचपन, जब मैं कुमार के बराबर था। वे पडोसिनें, ताई, चाची, वे मुंहबोली भाभियाँ, वे बडी-बड़ी लडकियाँ और वे सब बडी-बूढी नारियाँ—जो थोडे-थोडे से प्रलोभनों में, मुझसे अपने कितने ही काम करा लेती थीं। मुझसे मेरी सी ही बचकानी बातें करती थी और शक्कर के एक-एक, दो-दो, बताशों में गाने गवातीं, नचातीं, कुदातीं, चिढ़ातीं जाने मेरे अकेले के क्या-क्या खिलौने बनाकर खेला करती थीं, कैसा था वह जीवन भी। उसके बाद में भी इस नारी जाति के प्रलोभन से मुक्त न हुआ और आज भी मुक्त नहीं हूँ, जाने किसके साथ क्यों और कैसे कहाँ चला जा रहा हूँ—कुछ पता नहीं। मुझे कोई बन्धन नहीं है फिर भी मैं प्रभावित हूँ। धर्मशाला सामने थी। कुली वहीं खडा हो गया। मैं मैनेजर से मिलकर कमरा तय करने के लिए आगे बढा। देखा मैनेजर साहब एकाग्र चित्त पेन्सिल से कुछ हिसाब लगा रहे थे—कभी उसे रबर से मिटाकर फिर लिखते जा रहे थे। मेरे नमस्ते के साथ ही साथ उनकी चश्माखोर आँखें मुझ पर पड़ीं—तो कोमल स्वर मे मैंने कहा—'मुझे कमरा चाहिए!'

वे अपने धागे की डण्डी वाले चश्मे को जो आधी नाक से, नीचे खिसक आया था, दुरुस्त करके एक बार मुझे नीचे से ऊपर तक देख गए। फिर उन्हें देखकर अपने खण्डित-दसन वाले मुखारविन्द को पिचका कर बोले 'जनाना आपके ही साथ है न बाबूजी?'

टिकिट नहीं है ]।

मैंने अपने स्वभाव को गंभीर बना कर कहा—'जी हाँ, मेरे ही साथ है।'

उन्होंने खडे हुए मुसाफिरों की पर्वाह न करते हुए अपने टूटी डंडी वाले होल्डर को घिनी-सी दावात मे डुबो कर छिटका और बोले—'हाँ साहब, नाम बतलाइए?'

मैंने कहा—'लिखिए! अनन्त शर्मा बी० ए०।'

बी० ए० सुनते ही तत्क्षण उनके मस्तक में तीन गहरी-गहरी सलें पड गईं और अधिक सतर्क होकर गलत, पर जमे हुए अक्षरों मे मेरा नाम लिखा।

ऊँचा मुँह करके—'पिताजी का नाम?'

'श्री जगदीशनाथ शर्मा।'

'जात?'

मुझे हँसी आ गई। मैंने जरा हँसते हुए कहा—'शर्मा कहने के बाद भी और अलग से जात बतलानी पडेगी क्या मैनेजर साहब?'

वे बोले—'जी, हमारे रजिस्टर में जात का अलग ही खाना है।

'फिर लिख लीजिए, ब्राह्मण।'

'आपकी उम्र साहब?'

'छब्बीस वर्ष।'

'पेशा?'

'नौकरी का रोजगार।'

'रहना?'

'ज्ञानपुर।'

'जिला?'

'जिला, तहसील, थाना सब कुछ ज्ञानपुर ही है।'

'कैसे आए!'

'घूमने-फिरने, देखने-भालने ।'

'साथ मे कितने आदमी है ।'

मैंने कहा—'मैं, आप, और यह बच्चा ।'

तब मैनेजर महाशय ने रजिस्टर के "आदमी-नग" के खाने मे एक का अंक बनाया । "औरत-नग" के खाने मे एक का अंक बनाया और "बच्चे-नग" के खाने मे एक का अंक बनाया । कमरा नं० २७ लिखा । फिर एक लम्बी साँस लेकर बोले—'एक रुपया दीजिए साहब ।'

मैंने एक रुपया दिया तो उन्होंने "डिपाजिट" के खाने मे फिर एक का अंक बनाया । फिर अन्त मे एक लकीर खींचकर रजिस्टर मेरी तरफ सरका दिया ।

मैंने हस्ताक्षर किये और कुली से कहा—'चलो भाई सत्ताईसवें नम्बर मे ।'

तब तक मैनेजर भी उठकर बाहर आ गये थे । वे बोले—'ए ! ए ! ए ! कुली ! ऊपर ले जाओ बाबू साहब को सत्ताईस नम्बर मे—मालूम है न ?'

कुली ने मोटे स्वर मे कहा—'मालूम काहे नही है साहब !'

ऊपर का चढ़ाव चढते ही रामदीन मिल गया । उसने झुक कर मेरे चरण छुए और हँसकर बोला—'सरकार ! इहिबिरिया मालकिन और बिटवा भी आए है का ।'

मैं हँसी को रोक कर बोला—'हाँ,रामदीन तुम अच्छे तो रहे ।'

हाथ जोड कर बोला—'जी, सरकार ।'

वह वहाँ से हमारे साथ हो लिया । कुली ने २७ नं० की साँकल खोली । रामदीन ने बत्ती लगाई । कमरा साफ ही था । कुली ने सब सामान जमा-जमा कर रख दिया । फिर

सिर का साफा उतार कर सिर सहलाने लगा मानो उसने इस बहाने ही अपने कठिन परिश्रम का बखान कर दिया हो।

मैंने अठन्नी देकर कहा—'खुश हो?'

'काहे नहीं मालिक।'

'अच्छा जाओ।'

वह चला गया। रामदीन ने खटिया बिछाकर उसपर मेरा हॉलडाल उठाकर रखा और खोलने लगा। उन्होंने अपने बिस्तर से दरी निकालकर एक दीवार के सहारे बिछा ली। मैंने कपडे खोलकर खूँटी पर टाँगे। फिर रामदीन से कहा—'रामदीन! हम तो नहाना चाहते हैं। आज गर्मी बहुत थी। परेशान कर दिया।'

'नहा न लीजिए सरकार! मरदाना, जनाना दोनो ही गुसलखानों के नल चल रहे हैं।'

मैंने उन्हे सम्बोधित करके कहा—'आप भी स्नान करेंगी न!'

उन्होंने हमेशा की तरह मस्तक हिलाकर मेरे प्रश्न का उत्तर दे डाला। फिर रूमाल के छोर से बंधी हुई चाभी से अपनी पेटी का ताला खोलकर अपने कपडे निकाल लिए।

रामदीन कुमार से दोस्ती कर रहा था। मैंने कहा—'रामदीन तुम इसे खिलाना। हम आजाएं जब भोजन की थालियो के लिए ढाबे मे कह आना और दूध वाले को भी।' मैंने अपनी पेटी खोलकर तेल, साबुन, काँच, कंघा, धोती, टावेल आदि सामान निकाला और झोले से लोटा निकालकर स्नान के लिए खडा हो गया। ठीक उसी तरह वे भी अपना लोटा और कपडे लेकर स्नान करने को तैयार हो गईं। नीचे चौक मे पहुँचकर उन्हे जनानी ओर इशारा करके कहा—'आप इस तरफ चली जाएं।'

वे उधर चली गईं और मैं मर्दाने बाथ रूम की तरफ बढ़ गया। मेरे दिल में फिर से मधुर कल्पनाओं की लहरें उठने लगीं। मस्तक पर नल के शीतल जल की धारा थिरक रही थी। ऐसा लगता था कि मानो शीतल जल की फुहारें मेरा अभिषेक कर रही हों मन में एक नई उमंग थी, उल्लास था, उत्साह था। स-विलम्ब स्नान करके मैं जब निकला तब वे ठीक मेरे पीछे-पीछे हो लीं—मानो मेरी प्रतीक्षा ही कर रही हों।

मेरा मन खूब हलका और चित्त प्रफुल्लित था। ऊपर जाकर गीले कपडे रामदीन को सौंप दिए। वे भी स्नान करके लौट आई थीं। सद्यस्नातकुंतलों से पानी की बूँदे मोतियों की तरह झड रही थीं। मस्तक नत, काँपती हुई उनकी काया बडी भली—लग रही थी। रामदीन ने उनसे भी उनके कपडे ले लिए और झटक-झटककर बंधी हुई रस्सियों पर सुखाने लगा। मैंने तेल लगाया। बाल साफ किए और वह सब सामान—उनके पास रखकर कमरे से बाहर हो गया। रामदीन और कुमार भी बाहर थे। मैं कुमार से कुछ बातें करने लगा और रामदीन को भोजन, दूध आदि के इन्तजाम के लिए भेज दिया।

कुछ समय के बाद जब मैं कुमार के साथ कमरे में प्रवेश करता हूँ तो क्या देखता हूँ कि शीशा उनके सामने रखा है और वे अपने मुखचन्द्र को निहारती हुई अपने सुकोमल प्रलम्ब कुंतलो को भली भाँति कंघे और हथेली के सहारे से सजा रही हैं। उनकी वह सिन्दूरी माँग मस्तक का समान विभाजन करती हुई वर्षा कालीन पगडंडी की भाँति सघन केश राशि में विलीन हो गई थी। ललाट की लाल बिन्दी और उन्नत बरौनियों से रक्षित मृगनयन जो उस रूप राशि के प्रहरी बने हुए थे, ज्योंही मेरी दृष्टि से टकराए मैं निश्चल

और निःस्तब्ध न रह सका। चकाचौंध से चकित हो गया। तनत्तण उन्होंने अपने मुख मंडल को ढँक लिया और मैं उसी त्तण कमरे से बाहर हो गया। मुझे मन ही मन ऐसा लग रहा कि—मानो मेरा बिना आहट के प्रवेश करना स्त्री जाति के नियमानुसार उनका अपमान करना है। फिर भी उस रूप की प्रशंसा से मेरा मन त्तणिक भी मौन न था। कैसी अच्छी लग रही थी उन्हे वह काले जार्जट की चमकीली किनारो वाली साड़ी, उनके उजले रंग पर—मानो वे रूपराशि स्वर्गसुन्दरियो को लज्जित करने जा रही हो। मैं कहता था—ईश्वर न करे कहीं आज इन्हे मेरी नजर न लग जाय क्योंकि उनके नयनों मे काजल न था।

मैंने उसके पहले सौंदर्य, सुन्दरता और सुन्दरी के नाम पर उन देवियो को देखा था जो पाउडर, स्नो, लिपस्टिक और सेण्ट की खुशबू उड़ाती हुई हमारे कालेज मे सहपाठिनी बनकर आती थी। उनकी ही उस शुष्क काया और म्लान छवि को ही मैं और मेरे संगी साथी फ्रेंड, ब्यूटी, सौन्दर्य और सुन्दरी कहकर पुकारते थे। पर इतना अत्तत रूप, इतनी अनुपम कांति, इतना सुन्दर स्वरूप तो मेरी इन अभागी आँखों ने अपना अभाग्य मिटाने को उसी समय देखा था। इसी तरह मैं उनके सौंदर्य की उत्ताल तरंगों मे अपने ही आप बहता रहा।

यद्यपि असंभव था फिर भी मन मधुप बार-बार उस रूप-सरोज का अभिलाषी था और धन्यवाद दे रहा था, उस प्रभु को जिसने अवकाश की घड़ियो मे बैठकर उस चित्र को चित्रित किया था। पर मैंने सोचा मुझे यह अधिकार ही कहाँ कि मैं अपने दृष्टि-दोष से उसे बार-बार दूषित करूं—कोई पुण्य था जो त्तणिक योग प्राप्त हो गया।

इतने मे ही कुमार भीतर से आया और मेरी उंगली पकड़ कर

बोला—'तलो ?'

'कहाँ तलो बच्चू ?'

'भीतल।'

मैं उसके साथ झूठी-सी खाँसी खाँस कर भीतर गया और अपनी खटिया पर बैठ गया। वे उस दीवार के पास दरी पर आवरणमयी होकर बैठी थीं। कुमार जाकर उनके पास बैठ गया।

मेरा मन उनके उस रूप की जिसकी लहरें मेरे मन में उठ रही थी आराधना कर रहा था।—'देवी ! प्रभु ने तुम पर बड़ी कृपा की है। तुम्हें मुक्त कर कमलों से महान सौंदर्य प्रदान किया है। सूर्य की आभा, चन्द्र की शीतलता, वसुधा की क्षमता, गगन मण्डल का गाम्भीर्य और सृष्टि का सारा आकर्षण तुम्हें देकर वह हर्षित है।

मुझमें तुम्हारे लिये, केवल तुम्हारे ही लिये नई-नई उत्कण्ठाएं, नया अनुराग और नई भक्ति का आविर्भाव हो रहा है। मैं इतना अधिक सौंदर्योपासक हूँ, इतना ममतामय हूँ, इतना आकर्षान्वित हूँ, इसका अनुभव मुझे तुम्हारे कारण ही और आज ही हो रहा है। इतना मोहक, इतना चित्ताकर्षक और इतना इच्छित चित्र मेरे हृदय-पट पर जीवन में पहली बार तुम ही अंकित कर सकी हो।" और मैं इन्हीं विचार-धराओं में प्रवाहित था कि रामदीन महाराज से थालियाँ रखवाकर कमरे में—चला आया।

उन्हीं के पास महाराज ने दोनों थालियाँ रख दीं और वह अपनी लाल साफी को कन्धे पर रख कर चला गया। रामदीन ने सुराही उठाई और पानी भरने चला गया। थोड़ी देर में रामदीन सुराही भर कर लौटा। सुराही रख कर मुझसे बोला—'सरकार ! मैं जाता हूँ। थोड़ी देर बाद दूध और पान ले आऊंगा।' दरवाजा ढुलकाता हुआ रामदीन चला गया।

मैंने उनसे कहा—'भोजन ठण्डा हो जायगा, आप भोजन कीजिए न!'

वे कुछ न बोलीं। केवल हाथ हिला दिया। जिसका अर्थ होता था 'नहीं।'

'यदि आप भोजन न करेंगी तो मैं भी हर्गिज भोजन नहीं करूंगा।'

वे विचारों मे पड गईं और मैं अपने घिरे हुए विचारों से मुक्त होकर उनके मन के गोपन का अनुमान करता हुआ उसी पथ मे चलता ही गया जैसे शक्ति के पद्चिन्ह की मर्यादा गिनता हुआ ब्रह्म चला जा रहा हो।

थोडी देर हमारा कमरा शांत रहा। मेरे मन मे उठनेवाली कल्पनाओ ने एक जाल-सा बिछा दिया। क्या मेरे अचानक कमरे मे प्रवेश करने से इनका रूपोद्भासित मुखमण्डल म्लान हो गया है? क्या इनका हृदय कुंठित हो गया है? अथवा कोई व्रत है? या महाराज की जाति पॉत पूछे बिना न खाएंगी?

इन सब अनुसन्धानित बातो को अपने मे ही सीमित रखकर बोला—'क्या आप मेरी धृष्टता के कारण अप्रसन्न हो गई हैं। मालूम होता है कुमार भूखा है और मुझे भी भूख कम नहीं है। परन्तु यदि आपकी कृपा न हुई तो भूखे ही रात काटनी होगी। महाराज थोडी देर मे आएगा और थालियॉ उठा ले जायगा। तब मुझे उसे पैसे तो देने ही पडेंगे साथ ही यह भी कहना ही पडेगा कि 'आप नाराज़ हो गई हैं; इसलिए हम हर्गिज भोजन नहीं करेंगे, आप थालियॉ ले जाइए।'

एक अजीव असमंजस का सा अनुभव करके वे बोलीं—'आप भोजन कीजिए, मुझे भूख नहीं है।'

भला यह हो ही कैसे सकता है कि आप भोजन न करे और
भोजन करूँ ? मुझसे तो ऐसा कभी नही होगा।'

वे उठीं। अपनी पेटी खोली और उससे एक रूमाल
जिसके एक छोर मे कुछ बँधा हुआ था। वह रूमाल मेरी ओर
दिया। मैने उसे उठाकर टटोला, उसमे कुछ रुपये पैसे बँधे थे।
कहा—'इसका क्या मतलब होता है, मैं तो कुछ समझ न पाया।
ये पैसे महाराज को दिए जाएँ ?'

वे धीरे से बोलीं—'हाँ।'

मैंने कहा—'बिना भोजन किए पैसे आप क्यों चुकाएँ। आ
मैंने आपकी बिना आज्ञा के दिया था; पैसे मैं दूँगा। हाँ, यदि भोज
करके पैसे दे तो एक बात भी है।'

'मैं कर लूंगी भोजन पर पैसे मैं दूँगी।'

मैंने हँसकर कहा—'कोई हर्ज नही, आप दे दीजिए, पर भोज
तो कीजिए! क्या मेरे पैसे भी आप ही चुकाएँगी ?

'जी हाँ।'

'तब तो कहना ही क्या है, आज हम आपके ही मेहमान सही।

वे उठीं सुराही से जलपात्र पूरित किए। एक अपने पास र
लिया और दूसरा कमरे के मध्य भाग मे रख कर एक थाली जो आका
मे जरा बडी और अधिक उजली-सी थी, लोटे के पास रख दी। फि
हाथ के संकेत से मुझे भोजन करने को कहा।

मैंने कहा—'हाँ, अब ठीक है। अब मुझे भोजन करने
सुख मिलेगा।

उन्हे सहज संकोच था। मेरी ओर पीठ करके बैठ गईं। कुम
को पास बिठा लिया और दीवार की तरफ मुँह करके उसे छोटे-छो
ग्रासो से खिलाने लगीं। यद्यपि कोई चीज थाली के अतिरिक्त न थ

जिसे कोई परोसता फिर भी मैं बोला—'आपने तो मेरी ओर पीठ कर ली; यदि जरूरत पडी तो मुझे परोसेगा कौन ?'

वे मेरी इस बात के सत्यासत्य को भली-भांति समझ गईं इसलिये ही कोई उत्तर न दिया। मैंने भोजन करना आरम्भ कर दिया। तब उन्होने कनखियों से मेरी ओर देखा फिर आप भी भोजन करने लगी।

उस दिन का भोजनानन्द अवर्णनीय है। उस थाली मे सारे पदार्थ, समस्त रस और अनेक व्यञ्जनों की रुचिरता आ गई थी जो मेरे मन की सारी भूख, आत्मा की सारी क्षुधा और हृदय की सारी अतृप्तियों को शान्त कर रही थी। और मैं उस रोज के दिन को प्रभू कृपा का प्रतीक मान रहा था। जिसकी कृपा से ही मेरा थाल अमृत का थाल-सा बन गया था।

मेरी दृष्टि कभी उनकी तरफ और कभी उनकी छाया जो छाया चित्र बनकर दीवार को सचित्र बना रही थी और कभी उस मुन्ने की तरफ जो शालीन बनकर भोजन कर रहा था, जा टिकती थी। वैसी अनोखी पूजा, वैसा सलोना पक्वान, और वैसा मधुरतम जीवन मुझे अलभ्य ही था। मेरा मन-मयूर उस सबन घन-राशि से नृत्य कर रहा था। कल्पना-कुमुदिनी उस शरद्चन्द्र की शीतल किरणों मे स्नान कर रही थी और मधुर स्पर्श की अभिलाषा से ही खिल उठी थी। प्रणय तो मेरी श्वासो के आवागमन मे ही घुल-मिल रहा था। इन सब अवस्थाओं के बाद भी मैं मानव सभ्यता का वन्दी बन मौन था। एक अजीब-सी अचेतनता थी और मैं इस भौतिक जगत से परे जाने किस प्रणय-प्रदेश मे जहां कि यह सांसारिकता निर्वासित है—जा रहा था।

मन की व्यस्त अवस्थाओं के कारण ही मैं भोजन के समय

का अन्दाज न कर सका। महाराज और रामदीन-दोनों जाने कितनी देर से बाहर गेलरी में खड़े थे। यदि उनकी बोली मेरे कानों में न पड़ती तो मुझसे और न जाने कितनी देर थाली की बची-खुची चटनी चाटने का मोह न छूटता। आज भी वह थाली भुलाए नहीं भूली जाती।

महाराज थाली और पैसे लेकर चला गया। उसके साथ रामदीन भी चला गया। थोड़ी देर में रामदीन दो सकोरों में दूध और पान ले आया। टोपी उतार कर नीचे रख दी और इत्मीनान से बैठ गया। फिर मेरी आँखों में आँखे डाल कर बोला—'सरकार! आप आज सिनेमा देखने को नहीं जाएंगे ?'

मैंने पूछा—'क्या खेल चल रहा है ?'

'खेल का नाम तो मालूम नहीं सरकार, सुना है कि खेल बहुत ही अच्छा है।'

'फिर तुम्हारी क्या राय है, देखना चाहते हो क्या ?'

उसके हृदय की प्रसन्नता मानो चेहरे पर छा गई हो। फिर नीचे सिर करके फर्श पर कुछ लिखता हुआ-सा बोला—'जैसी सरकार की मरजी होय।' समय यापन की दृष्टि से मुझे रामदीन की राय उचित ही प्रतीत हुई। घड़ी में देखा तो पौने दस बजे थे।

मैंने कहा—'अच्छा रामदीन सिनेमा चलेंगे !'

सकुचाते हुए रामदीन ने कहा—'सरकार मलकिन और राजा बाबू भी चलेंगे न !'

मैं रामदीन की इस सहृदयता की मन ही मन सराहना कर रहा था। उस प्रसन्न मुद्रा से उसके कहे हुए मलकिन और राजा बाबू ये दोनों शब्द मुझे कितने भले मालूम हुए—मैं तो निहाल हो गया

और वे अपने आपको मलकिन सुन कर, भगवान जाने उस बेचारे रामदीन को क्या-क्या कहती होंगी।

मैंने कहा—'अच्छा रामदीन तुम मैनेजर से छुट्टी ले लो। कुछ काम हो तो कर लो और फिर हमें नीचे ही मिलो; हम अभी आते हैं!'

रामदीन का समझ से जहां तक ताल्लुक है वह मर्यादा को भली भांति जानता है। मेरे कहते ही वह समझ गया और टोपी सिरपर रखते हुए बोला—'अच्छा सरकार, चले आएं मैं नीचे ही मिलूंगा।' द्वार ढुलकाता हुआ वह नीचे चला गया।

मैंने प्रार्थी के ढंग से कहा—'यदि आप कोई हर्ज न समझें तो हम लोग सिनेमा देख आएं, पास ही में है!' इतना कहकर मैं सोचने लगा जिस प्रकार रामदीन की प्रार्थना मैंने स्वीकार की उसी प्रकार मेरी प्रार्थना भी ये स्वीकार करलें तो कितना अच्छा हो। यदि ये नहीं गई तो मुझे जाना तो पड़ेगा किन्तु मजा तो ..। न जाऊंगा तो यहां भी मन चैन न पाएगा न नींद ही आएगी। व्यर्थ की परेशानी में समय व्यतीत करना पड़ेगा।'

वे कुछ न बोलीं—शायद कुछ सोच रही होंगी।

मैंने कहा—'एक डेढ बजे सिनेमा समाप्त हो जायगा और उसके बाद ही आपकी गाडी का समय भी हो जायगा।' कहते तो कह गया किन्तु मेरा दिल मुर्झा-सा गया। मन में एक वेदना-सी हो गई।

वे कुमार के नन्हें-नन्हे हाथों को अपने हाथो मे लेकर उन हाथों से कुछ खेल-सा खेल रही थीं। इस बार वे बोली—"जैसा आप ठीक समझे।' इस उत्तर ने मेरे अनुमान की पूर्त्ति की, जैसा कि मैंने अपने आप अनुमान कर रखा था। अपनी बात की पुष्टि करते हुए मैं फिर बोला—'थकान तो मालूम होती है; मगर यहां भी दो बजे तक

क्या करेंगे। मुमकिन है यहां नींद भी आ जाए, और गाड़ी चूक जाएँ, इससे तो चलना ही अच्छा है।' वे दिल के करार के साथ बोलीं—'चलिये न!'

उनके 'चलिए न!' ने मेरे हृदय के जलाशय को स्वच्छ कर दिया जिसमें शंका की काई जमी हुई थी, और उठने लगी उसमें हिलोरें। मैं पट्टीदार धोती पर बंगाली कुरता पहने हुए था। पास में रखे हुए शीशे को उठाकर मैंने अपना चेहरा देखा और बोला—'लीजिये मैं तो तैयार ही हूँ, अब कौन बदले कपड़े, यही अच्छे हैं।'

वे बोलीं—'बदल न लीजिये!'

उनके इस 'बदल न लीजिये!' में आत्मीयता का गोपन था जिसे वे अपनी लज्जा, शील और संकोच की सतह में छुपाए हुए थीं। ऐसी मधुरिमा जो सीधी दिल में उतर जाय, यह पहली बार इन हिदायत के शब्दों के साथ थी। फिर भी मैंने यही कहा—'बदले तो जा सकते हैं किन्तु कपड़ों का निकालना, खोलना, पहनना, यह सब एक झंझट-सी मालूम होती है।'

वे उठीं और बोलीं—'कहां रखे हैं? लाइए मैं निकाल दूं।'

'यदि इतनी कृपा है तो मैं अवश्य बदल लूंगा!'

मैंने कोट की जेब से ताली निकालकर उनकी ओर हाथ बढ़ाया और उन्होंने दो कदम आगे बढ़ कर मेरे हाथ से पेटी की ताली ले ली। पेटी का ताला खोला और अपनी पसन्दगी के कपड़े निकाल-निकालकर मेरी खटिया पर रखती गईं। और मैंने वे कपड़े खुशी-खुशी पहन लिए।

मैं बोला—'अब आप अपनी ताली मुझे दे दीजिए, मैं आपके कपड़े निकाल दूं!'

वे सहज भाव में बोलीं—'मैं बदला नहीं चाहती!'

उनके इस सारगर्भित उत्तर से मैं प्रभावित इतना अधिक हो गया कि अनुत्तर ही हो गया। मेरा मन क्षण-क्षण आनन्दानुभव कर रहा था। इनके कोमल हृदय की रस-माधुरी मे कैसी अव्यक्त मिठास है। कैसा अनोखा उत्पीडन है। कैसा सजीव दुलार है। मैं क्या कभी सोच पाया था कि मुझसे इतनी सीमित होने के बाद भी इनकी आत्मा मे मेरे लिये इतना अपनत्व, इतनी सम्हाल और इतनी घनी ममता छिपी हुई है; जिसके कारण मेरा आत्म-बल मुझसे भी अधिक बलवान शरीर हो गया और एक अज्ञात स्फूर्ति से अधिक चैतन्य हो गया था।

उन्होंने अपनी पेटी खोली। कुमार के कपडे निकाले और अपने कपडे निकाले। मैं कमरे के बाहर हो गया। गेलरी मे टहलते-टहलते मुझे किसी कवि की ये लाइनें याद आ गईं—'जैसोई रंग रंगी चुनरी पिय, तैसिहि पाग तुहूँ रंग लीजियो।' थोडी देर इसी लाइन को गुनगुनाता रहा। जब झूँठी खाँसी खाँसकर कमरे मे घुसा तो देखता हूँ कि आकाशी इन्द्रधनुप पृथ्वी पर उतरकर सुन्दरी के शरीर से लिपट गया है और वे धनुषाकार होकर ताला लगा रही हैं।

मैंने कहा—'शायद अब आप तैयार है। समय भी हो गया है, चला जाय। उन्होंने कुमार का हाथ पकडकर उसे मेरी तरफ बढा दिया। ताली कटि मे खोंस ली और माहुरवाले पैरो मे चप्पल सजा ली। मैंने कुमार को गोद मे ऊठाकर चूम लिया। यद्यपि प्रेमी की प्रत्येक वस्तु से प्रेमी को स्वाभाविक मोह हो जाता है, लेकिन कुमार के सम्बन्ध मे यह बात लागू नहीं होती, वह तो अपनी विशेषताओं से स्वयं ही मेरा प्रेमपात्र था।

हम सब नीचे उतरे। रामदीन ने मेरी गोद से कुमार को ले लिया और हम थोडे पास-पास जा रहे थे।

## सिनेमा

गगनविहारी भगवान अंशुमाली मीठी मुस्कान से मुस्करा रहे थे। उनकी शीतल रश्मियां संसार मे सुधा का संचार कर रही थी। तारक मण्डली विहँस रही थीं और पवनदेव अपनी त्रिगुणात्मक शक्तियों मे यात्रियों के वर्त्तमान पर परिहास कर रहे थे। सड़कें चहल-पहल से चमन थीं। बिजली की बत्तियाँ परस्पर मूक संकेत कर रही थी और उनका आलोक चन्द्र की चांदनी से लज्जित हो रहा था। यात्री अपने-अपने भूत और भविष्य को भूलकर केवल वर्तमान ही की दिशा मे बढे चले जा रहे थे।

बहुत थोडा चल पाए थे कि सिनेमाघर आ गया। मैंने रामदीन को एक नोट देकर कहा—'रामदीन, पहले दर्जे के टिकिट ले आओ!' और कुमार को उसकी गोद से लेते हुए कहा—'क्यों बेटे! तुम तो रेल में भी बिना टिकिट चलते हो जिसमे तो यह सिनेमा है।' रामदीन तेजी से बुकिंग आफिस की तरफ लपका, भीड़ को चीरकर अन्दर हो गया।

वे अपने को चादर से चोटी से एडी तक ढके हुए थी और दोनों हाथों से अपने घूंघट की सम्हाल कर रही थीं। मन कहता था—'रामदीन आए तब तक इन्हीं से बातें की जाय, किन्तु सिनेमा-दर्शकों की विषैली आँखो के क्षण-क्षण होने वाले अनेकों दृष्टिपात मुझे क्षुभित कर रहे थे और मैं अपने मे ही कहता था—'कैसी आदत है पुरुषों की स्त्रियों के प्रति।' मेरा साहस उनसे बातें करने का नहीं हुआ—प्रथम अवसर ही तो था मेरा। इसीलिए मैं कुमार का हाथ पकड़कर दूर-दूर तक दृष्टि दौड़ाने लगा—रामदीन को देखने के लिए।

मानों वह बहुत देर का गया हुआ हो।

रामदीन आ गया। दो टिकिट और बचे हुए पैसे मुझे देते हुए बोला—'सरकार, आप पधारें।'

'और तुम्हारा टिकिट कहां है?'

'सरकार! मेरा टिकिट मेरे पास है।'

'तुम किसे देख रहे हो?'

'एक संघी को देख रहा हूं सरकार; वह आता ही होगा, आप पधारें हम लोग बैठ जाएंगे।'

'हमारे साथ नहीं चलोगे?'

'नहीं सरकार हमारा टिकिट तो नीचे दर्जे का है न!'

'क्यों? नीचे दर्जे का क्यों लिया?'

वह कुछ लजाते हुए बोला—'हम तो हमारे संघी साथिन के साथ ही बैठते अच्छे लगते हैं।'

वह दूर-दूर तक आँखें फैलाए देख रहा था। अधीर था अपने साथी की तलाश में। मैं सोच रहा था—'यह ठीक ही कहता है। इसका भी तो कोई साथी है। उसका अभाव इसे बरदाश्त नहीं होता। उसके बिना इसे सचमुचही मजा भी न आएगा। यह अकेला न जायगा।

मैंने कहा—'सिनेमा खुलते ही मुझे मिल जाना।'

'जरूर सरकार इण्टरवेल में ही हम आपके पास आ जाएंगे।'

वह फिर उसी तरह आनेवालों की सूरतें देखने लगा। उसे वहीं छोड़कर हम अन्दर चले गए।

❀ ❀ ❀ ❀

वे मेरे दाहिनी ओर थी। मैं बाईं ओर की कुर्सी रूमाल से पोंछकर बैठने लगा। यदि वे मुझे दाहिनी कुर्सी की ओर हाथ से इशारा न करतीं तो मैं बैठ ही जाता। मैं अपनी इस व्यावहारिक

अल्पज्ञता पर लज्जित था। वे मेरी बाईं ओर वाली कुर्सी पर बैठ गईं, कुमार को अपनी गोद में बिठा लिया। मैं अपने मौन में लज्जा को छुपा रहा था कि हाउस तिमिराच्छन्न हो गया। अब उस घने अन्धकार में विज्ञापनों की पर्दे पर वर्षा हो रही थी और मेरे मन में भावों का उद्वेग उठ रहा था। इसीलिए मैं सोच रहा था कि इनसे कुछ बातें करूँ। मैं बात करने का विषय सोच रहा था कि पर्दे पर फिल्म-चित्र उतरने लगा और मैं अपने आसपास में बैठी हुई सभ्यता की तराजू पर अपना वजन तौलने लगा। मैं चाहता था कि कोई यह न जान पाए कि मैं इस जीवन मे नया हूँ, इस अवस्था मे नया हूँ, और इस अनुभव में नया हूँ। उन्हीं की तरह मैं भी चतुर्भुज रूप में अपने आपको पाकर एक अजीब-सी गुदगुदी का दिल मे अनुभव कर रहा था।

मैं क्या कम था जब कि मेरी निकटता में भी मेरा नया जीवन संगीत था जिससे सिनेमा संगीत अधिक रुचिकर और मोहक न था। मैं भी अपने काल्पनिक साम्राज्य का अपने ही आप सम्राट था और सम्राज्ञीजी बड़ी तल्लीनता से पर्दे के चित्र को देख रही थीं। मैं अपने ही आप में खोया-सा, कभी उनको कभी आस-पास वालो को और कभी चित्र को देख लेता था। मैं देख रहा था कि उनमें मेरी तरह कोई उत्पीडन, कोई चाञ्चल्य और कोई वैचित्र न था।

मैं उन पात्राओं मे जो चित्र मे थीं वह छवि खोज रहा था जो उस समय मेरी आँखो की राह उतरकर हृदयोद्यान में विकसित प्रसून की भाँति रूपमयी, रसमयी और गन्धमयी मोहकता से मुझे मोहित किए हुए थी। और उसी समय से वह रूपराशि मेरे हृदय-प्रदेश के समस्त साम्राज्य की साम्राज्ञी बन चुकी थी। मैं उनके रूप का अगृह उनकी उसी मादकता मे, उसी माधुरी मे और उसी ज्योति-प्रभा में

अपने आपको, खोए हुए बैठा था।

मैंने अपने ही साथ-साथ उन्हे भी भुलाने का प्रयत्न किया। और बीच-बीच मे उन्हे चित्र की विशेषताओं को समझाने लगा। पर उन्हे मैंने इतना गंभीर, इतना धीमान पाया कि—मानो उन्हे मेरे स्पष्टीकरण की तनिक भी जरूरत नहीं, वे भलीभाँति समझ रही हैं।

मैंने सोचा—'इनके लिये क्या यह सिनेमा क्षेत्र भी मर्यादा की जंजीरों से जकडा हुआ है? क्या इन्हे इन सिनेमा के अपरिचितों की भी परिचितों की ही भाँति लज्जा करनी पडती है? मैं क्या जानूँ कि नारी जाति की प्रत्येक स्वाँस के साथ मर्यादा की शृंखला है। उसका अभ्यंतर और बाह्य, परिचित और अपरिचित, अपने और पराए सभी उसकी लज्जा से सम्मानित हैं।'

मैं सोच बैठा, शायद इनको ऐसा ही करना पडता है। इसी लिये मैं भी अपने दोनों हाथ बगल मे दबाकर मर्यादित पुरुषों की भाँति शालीनता को सम्हाले बैठा रहा। और मैं थोडी देर के लिये अपने आपको उन मित्रो की तरह मानने लगा जो विवाहित जीवन व्यतीत कर रहे थे। उनकी भी यही स्थिति रहती होगी तभी वे इस मानव तंत्री संसार से अपनी कुलीनता, शीलता और गम्भीरता की रक्षा कर पाते होगे।

खेल के गाने अच्छे थे। मैं इसलिये उन्हें अच्छे कहता हूँ कि उन गीतों मे मेरे मन के भाव निहित थे। इन्टरवल हुआ। रामदीन हमारे पास आ खडा हुआ और बोला—'सरकार! कुछ लेमन, सोडा, पान लाऊँ?'

मैंने मुस्करा कर कहा—'ले आओ, अगर तुम्हारी मलकिन साहिबा को कोई एतराज न हो तो।'

वे मेरे मुँह से ऐसा सुनकर कुछ लजा गईं और मुँह फेर कर कुमार को सचेत करने लगीं जो उनकी गोद में ही सो गया था।

मैं बोला—'लाइए! कुमार को मुझे दे दीजिये, सो गया है, आपको कष्ट होता होगा।'

'जी नहीं, मुझे कोई कष्ट नहीं है।'

रामदीन बाहर चला गया।

मैंने कहा—'कहिये! खेल पसन्द आया आपको?'

'जी हाँ!'

'मुझे तो अच्छा नहीं लगा।'

'आपने तो ऐसे सैकडो खेल देखे होंगे, हमेशाही देखने को मिलते होंगे।'

उनके इस व्यंग तर्क का मुझसे उत्तर देते न बना। मैं कैसे सरासर झूँठ बोलता कि मैंने सैकडों खेल नही देखे है। उनकी यह बात मानों मेरे हृदय को छूकर निकल गई।

जरा सा सोचकर बोला—'देखे तो सचमुच ही सैकड़ो होंगे परन्तु यह तो आज ही देखा है।'

'शायद यह आपके काबिल नही है, हलका है; बढ़िया होता तो आप को पसन्द आता।'

इतने मे ही रामदीन अपने दोनो हाथो मे दो गिलास ले आया। मैंने अपने दोनों हाथों मे तुरन्त दोनों गिलास झेल लिये। एक गिलास उनकी तरफ बढ़ाया। उन्होंने सिर हिला दिया।

मैंने खड़े हुए रामदीन से कहा—'लो रामदीन, तुम्हारी यह सेवा मलकिन को स्वीकार नहीं, मालूम होता है नाराज है। बस अब हम नहीं पिएंगे। तुम बाहर जाकर फेंक देना और गिलास उसे दे आना।

वे धीरे से बोलीं—'क्यो आप पीजिए न? मुझे तो आदत भी

नहीं है और यहाँ पीते हुए अच्छा भी'.....।'

मैंने जरा हँसकर कहा—'माना साहब कि शर्म आपका स्वभाव बन गई है; किन्तु जिस घूँघट में आप इतने बड़े चन्द्र को छिपाए रहती हैं, उसमें यह गिलास भी बेचारा छिप जायगा। शीघ्रता कीजिए वर्ना ये दोनों ही आपकी शर्म के नाम पर ढोल दिये जाएंगे।'

उन्होंने अधिक विरोध उचित न समझ कर मेरे हाथ से बड़ी सावधानी से एक गिलास ले लिया। मैंने पीना आरम्भ किया और उन्होंने भी दूसरी तरफ मुँह फेर कर गिलास को घूंघट में छिपा कर घूंटें लेना आरम्भ कर दीं। बड़े इत्मीनान से मैं आइसक्रीम वाली लेमन की घूंटें उतार रहा था।

पास ही में खड़े हुए रामदीन से पूछा—'तेरा संगी आ गया ?'

'बड़ी देर में आया सरकार !'

'खेल कैसा लगा ?'

'बहुत अच्छा है।'

'गाने कैसे हैं ?'

'बहुत अच्छे।'

रामदीन के पास केवल एक ही उत्तर था—'बहुत अच्छे' या 'अच्छा।' हम लोगों के हाथों से गिलास लिये। और पान देते हुए कहा—'जाऊं सरकार ?'

'हाँ, जाओ तुम्हारा संगी राह देखता होगा।'

वह चला गया। फिर खेल शुरू हुआ। फिर मेरी वही हालत रही। खेल समाप्त होने को आया परन्तु मेरे मानसिक संकल्प-विकल्प अबाधित रूप से चले जा रहे थे। मैं रह-रह कर अपने मनोवेगों पर विजयी होने का भरसक प्रयत्न कर रहा था। मेरी सारी साधना, सारा संयम, और सारी शक्ति अपने आपको सम्हालने में लग रही

थी। मानो आज ही मुझे आत्म बल की परीक्षा में उत्तीर्ण होना हो। यही कारण है कि मैं आज उस सिनेमा के अभिनेता और अभिनेत्रियों के नाम नहीं बतला सकता, न उस सिनेमा का प्लाट ही बतला सकूंगा और न उन विशेषताओं को ही जिनके कारण वे सब सैकड़ों मनुष्य उस हाल में भरे हुए थे। मैं तो अस्तित्व हीन सा बैठा रहा और जब खेल समाप्त हुआ तो अपनी भूली हुई चेतना को सजग करके खड़ा हो गया। मेरे मन पर तो अपने ही सिनेमा का अस्तित्व था, मैं तो स्वयं ही मानसिक अभिनय कर रहा था। जाने किस आधार पर खड़ा होकर मैं रामदीन के आने की बाट देख रहा था।

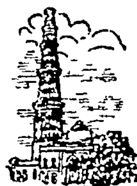
रामदीन आ गया। उनकी गोद से सोते हुए कुमार को मैंने उठा कर उसे सौंप दिया। वह चला और हम लोग भी उसके पीछे पीछे सिनेमा की सीमा से बाहर हुए।

चाँदनी खूब भरपेट खिल चुकी थी। चन्द्रदेव का रजत-रथ नभ मध्य में शनैः शनैः जा रहा था। रात्रि अपनी आधी आयु व्यतीत कर चुकी थी। सड़क पर दूर-दूर तक सन्नाटा व्याप्त हो रहा था। सिनेमा के दर्शक बन्धन-मुक्त से होकर अपने-अपने स्थान को जा रहे थे। किंतु हमारी गति में कोई तीव्रता न थी, कोई तेजी न थी; कोई चेतना न थी।

सड़क पार करते ही मुझे उनकी बिदा का विषाद घेर चुका था। धर्मशाला में भी कोई चहल-पहल न थी। थके-थकाए यात्री विश्राम की गोद में विलीन हो चुके थे। कमरों के कपाट बन्द थे। किसी-किसी खिड़की से किसी एकाकी की आह प्रकाश के रूप में सींकचों की कालिमा से विभक्त होकर आ रही थी। वह मध्य भाग की बड़ी बत्ती उन दल-दल के पंछियों का मूक संतरी बनकर पहरा दे रही थी।

मेरे मन की वे मधुर कल्पनाएँ, अद्भुत प्रेरणाएँ और कोमल भावनाएँ निकट की निराशा के गर्त में धँसी जा रही थी। शरीर भी शिथिलता का अनुभव कर रहा था। मैं अपने ही आप अधिक शान्त और गंभीर था।

उन्होंने कमरे का ताला खोला। बत्ती लगाई और हम सब अन्दर आए। रामदीन ने बिछी हुई दरी पर कुमार को सुला दिया। मैं कपडों के सहित ही खटिया पर पैर लटकाकर पड गया। मेरे मुँह से अचानक निकला—'आह सिनेमा!' रामदीन ने दोनों हाथ जोडकर रात्रि भर की विदा माँगी। उसे क्या मालूम था कि कल केवल बाबूजी के ही दर्शन होंगे। मेरे अच्छा कहने के साथ ही वह दरवाजा ढुलकाता हुआ चला गया। उसके जाने के बाद ही उनकी विदा की चिन्तन वेला आई। उसी चिन्तन में मैं आँखे बंद किए हुए अपने दिल के दर्द को सहलाने लगा।



## पहली रात का स्वप्न

मेरे पैर नीचे थे और धड़ खटिया पर। इस प्रकार विचार सागर में डूबते उतराते ही मुझे नींद आ गई तो क्या स्वप्न देखता हूँ कि किसी बड़ी सरिता के पर्वत की तरह ऊंचे किनारे पर मैं अपने एक परिचित व्यक्ति के साथ ऊपर खड़ा हूँ। वह नीचे उतरने में असमर्थ हो गया और मुझे उसने एक पतली-सी पगडण्डी से नीचे ढकेल दिया। मैं ढुलकता-ढुलकता एक गहरी निचाई में जा गिरा, जहां रेतीली जगह थी। वह ऊपर खड़ा-खड़ा मुझे आहत देखकर हँस रहा था। मुझे उसकी हँसी पर क्रोध आ रहा था। किनारा सीधा कटा हुआ था। एक लम्बा बांस नीचे से ऊपर तक टिका हुआ रखा था। वह उसी बांस से चाले कर रहा था। मैंने उसे नीचे आने का आग्रह किया और वह अपने दोनों हाथ हिलाकर कह रहा था, "मैं नहीं आता"।

मैं उस लम्बे-चौड़े मैदान से जल के समीप पहुँचा। यमुना जल की तरह उस सरिता का जल श्याम था। बहुरंगे कमल खिल रहे थे। उसके आसपास छोटे और बड़े संगमर्मर के चौरस हवनकुण्ड से बने हुए थे। मैं स्नान की इच्छा से उस जल में उतर गया। मेरे एक मित्र पहले से ही स्नान कर रहे थे। मैं भी उनकी तरह तैरने लगा और तैरते-तैरते धारा-प्रवाह में होकर बह चला। उस धारा में अनेक रंग के गुलाब-पुष्प और तुलसी-दल बह रहे थे। मैं कभी तुलसीदल खाता; कभी पुष्पों को पकड़ता था। मैं यह भी सोच रहा था कि मेरी आत्मा पवित्र हो रही है लेकिन डूब जाने के भय से भयभीत होकर मैं चिल्ला उठा। तो देखता हूँ, कि एक देवी श्वेत वस्त्रों में मूर्ति

रूपा माँ सरस्वती के समान उन कमल दलों से आच्छादित श्वेत कुण्ड की परिधि पर स्थित हैं। मैं प्रवाह में बहता हुआ एक कुण्ड की परिधि का सहारा लेकर रुक गया और जब आर्त भावों से उनकी ओर देखा तो वे कल्याणी बन कर मुझे आशीर्वाद दे रही थीं। मुझे अभय कर रही थीं और प्रसन्न वदना मुझ से बातें करके प्रोत्साहन दे रही थीं। जब उन्होंने मुझे निकल जाने की आज्ञा दी तब मैं नदी से बाहर निकल सका।

वह मित्र जो ऊपर खड़ा था सहसा बांस के सहित नीचे आ गिरा। मैं डर गया और उसी भय से मेरी निद्रा भी भंग हो गई। जाग कर मैंने देखा कि मैं कानपुर की धर्मशाला के २७ नम्बर के कमरे में हूँ। पैर लटक रहे हैं और धड़ उसी तरह चारपाई पर पड़ा है। बत्ती के प्रकाश में मैंने चौकन्ना होकर चारों तरफ देखा। दिल की तीव्र धड़कन कुछ शान्त हुई।

आँखे मसल-मसलाकर जरा होश दुरुस्त किए फिर देखा तो उस दीवार पर एक उनकी परछांई और दूसरी काली साड़ी में वे; एक ही प्राणी के दो आकार। वे अपने दाहिने पैर पर ठोढ़ी का सहारा दिये हुए, एक हाथ बच्चे पर और दूसरे हाथ का सहारा लेकर बिस्तर के तकिए से टिकी हुई बैठी हैं। वे घूंघट मे,जिसमे उनकी समस्त आत्मा जो भावो के साथ-साथ कभी मुँह पर भी अंकित होकर झलक उठती है, उसमें छिपाए बैठी हैं।

मैं पैर पर पैर रखकर एक हाथ का सहारा लेकर और दूसरे से अपने विचारशील ओठो को सहलाता हुआ जैसी कि मेरी आदत है, सोचने लगा। पहुँचने लगा कल्पना के द्वारा नारी की सीमा से उसके असीम की ओर, परिमित से अपरिमित की दिशा में और परिधि से अनन्त के पथ पर।

कमरे में शान्ति व्याप्त थी जैसे नीरवता का साम्राज्य हो। इसी प्रकार थोड़ी देर सन्नाटा छाया रहा।

उन्होंने हलके बादलों से झाँकने वाले चाँद की तरह मेरी ओर देखा सहसा मुझे याद आ गई 'खूब बन बैठती हैं जब मिल बैठते हैं दो......।' मैं पूरी लाइन कह भी न पाया था कि वे अन्तरयामिनी की तरह मुस्करा दीं। मुझे उसी क्षण उनकी मुस्कराहट से धड़क जाने वाले दिल को सहलाना पड़ा। वे बिस्तर से दूर बे-सहारे हो गईं। और फिर यह मजेदार बात थी कि मैं जिस विचार में था वे भी शायद उसी विचार में थीं, 'अब क्या होगा ?'

जरा देर बाद वे ही एक धीमी-सी आवाज में—'क्या आप कोई सपना देख रहे थे ?'

'हाँ देवी ! सपना देख रहा था, एकदम अद्‌भुत और विचित्र।'

'कैसा सपना था ?'

मैं इस बात को भूल कर कि संसार ही एक सपना है और मनुष्य का अतीत वर्त्तमान में अपने ही आप सपना हो जाता है, उन्हें अपना देखा हुआ सपना सुनाने लगा। जब पूरा सपना सुना चुका तब वे बड़ी शालीनता के साथ बोलीं-'स्वप्न में नदी स्नान तो शुभ होता है।'

'क्या मालूम है कैसा होता है ! यह सपना तो मेरा पहला ही सपना है।'

'मुझे मालूम है मेरे पिता कहा करते हैं।'

'आपके पिता क्या ज्योतिषी पण्डित हैं ?'

'क्या ज्योतिषी ही सपने के लक्षण जानते हैं, और......।'

'मुझे तो इस दुनिया का ज्ञान नहीं है।'

'आपको तो किसी भी दुनियां......।'

मैं उनकी इस मीठी चुटकी से तिलमिला उठा और पसीने से

भीगे हुए कपड़ों को खोलने लगा। घड़ी पर नज़र पड़ी तो देखता हूँ ढाई बज चुके है। मेरे मुँह से सहसा निकल गया—'ओफ-ओ ! गजब हो गया। ढाई तो बज गया। अब तो आपकी गाड़ी का मिलना जरा मुश्किल ही मालूम होता है।'

'थोड़ी देर पहले सीटी हुई थी। शायद उसी गाड़ी की होगी।'

'यदि गई होगी तो फिर क्या होगा ?'

वे स-साहस बोली—'जो होना होगा सो होगा। जब चली ही ...... ।'

'आपने मुझे जगाया क्यो नही ?'

वे चुप रहीं।

मैंने कहा—'जगा देती तो पाप लग जाता; क्यों ?'

'आपका सपना भंग नही हो जाता !'

'अच्छा मैं नीचे देखता हूँ। शायद कोई कुली या इक्का मिल जाय तो उससे पता भी लग जायगा और सामान भी ले जायगा।'

मैं दरवाजा बन्द करता हुआ नीचे गया। किंतु मैं सोच रहा था कि अब गाडी नही मिलेगी। इसलिए उनकी विदा का भय मेरे हृदय से जाता रहा था। आसमान मे चॉद पूरा खिल रहा था जैसे सम्पूर्ण वसुधा का सौन्दर्य वह आज ही बिखेर रहा हो। वैसा ही चॉद जैसा कि "बिहारी" की नायिका ने देखा था—'मैं ही बौरी विरह, बस...'

कभी–कभी देव-मन्दिर का पवित्र प्रसाद जो हजारों प्रार्थनाओं के बाद भी देवो को दुर्लभ होजाता है, वह भाग्य से मनुष्य को सुलभ हो जाता है ! आज वे दिन कहाँ और मैं कहाँ।

मुझे न कुली मिला न तॉगा परन्तु सिरदर्द साथ मे ले आया। सिरदर्द शायद अधूरी नींद के कारण या गर्मी के कारण अथवा विचारो के बाहुल्य से हो गया था। मैं दर्द भूल जाने के लिये

थोडी देर उन बत्तियों को देखता रहा जो सूनी सडकों पर अपना प्रकाश फैलाए हुए थी और वे सडकें सूनी होकर भी चमाचम चमक रही थीं। उन्हें ही इधर-उधर देखकर लौट आया तो देखता हूँ कि वे अभी भी उसी तरह बैठी हुई थीं।

मैंने खटिया पर बैठते हुए कहा—'सडक मे तो सन्नाटा पहरा दे रहा है। तीन बज चुके हैं। गाडी तो निश्चित ही गई होगी। अब आपका पहरा मुझे देना होगा।'

थोडी देर उनका उत्तर न पाकर मैं विचार निमग्न हो गया और मन ही मन बोलकर भी न बोलने वाली उनकी शर्म, मर्यादा, और संकोच की तारीफ करता रहा। मैं मन ही मन उनके घूंघट को भी धन्यवाद दे रहा था। सिर के बढ़ते हुए दर्द को धीरे-धीरे मसल कर बन्द करना चाहता था परन्तु वह कम न हुआ, बढ़ता ही गया। मैं खटिया पर लेट गया और सिर मे हथेली की थपकियाँ लगाने लगा।

वे बोलीं—'क्या आपके सिर में दर्द हो रहा है ?'

'जी हाँ !'

'क्यो ?'

'शायद अधूरी नींद से, गर्मी से अथवा विचारो की अधिकता से दर्द बन गया है।'

सहृदयता की भाषा मे वे बोलीं—'मैं मसल दूँ क्या ?'

'जी नहीं, आप कष्ट न करें मुझे केवल वह तेल की शीशी उठा दें शायद तेल लगाने से कम हो जायगा।'

वे शीशी उठा लाईं और बोलीं—'लाइए; मैं लगा दूँ।'

'आप मुझे दे दीजिये। मैंने उनके हाथ से तेल की शीशी ले ली और थोडा तेल हथेली मे निकालकर शीशी उन्हें दे दी।

वे ढक्कन बन्द करने लगीं और मैं अपने सिर में तेल लगाने लगा।]
वे शीशी रखकर फिर मेरे पास आकर बोलीं—'लाइए, मैं सिर मसलना अच्छा जानती हूँ।'

'क्या आपको काम पडता रहता है ?'

'जी हाँ।'

'मुझे क्या मालूम कि आप इस मर्ज़ की डाक्टर है। मैंने तो इसीलिये मना किया था कि आपको व्यर्थ कष्ट होगा।'

'और मैं यह समझी कि शायद हम नीचे लोगों के छू जाने से आपका धर्म बिगड जाता होगा, इसलिये आप मना कर रहे हैं।'

'मेरी सीधी सी बात के आप जाने क्या अर्थ समझ बैठीं, नीचे लोग, धर्म, ये सब क्या बाते हैं, मेरी समझ मे तो कुछ नहीं आता।'

वे अपने आनन से आवरण को थोडा कम करते हुए बोली—'मैं हरिजन . . ।'

मैं सन्न रह गया। मेरे मन और मस्तिष्क पर एक विशेष समस्या आ गिरी परन्तु वे मेरी विचलित मुख-मुद्रा को देख-देख कर हँस रही थी।

'यदि आपका यह खयाल है तो दाबिए ! देखे यह फिर भी अच्छा होता है या नहीं।' वे खटिया से नीचे बैठकर मेरे सिर को अपने कोमल कर-कंज से मसलने लगीं। कितना अच्छा लगा उनकी अंगुलियों का स्पर्श परन्तु बहुत बुरा लग रहा था उनका नीचे बैठना।

'यदि आप यह सेवा ही करना चाहती है तो नीचे न बैठिए!'

'मैं बहुत अच्छी तरह बैठी हूँ।'

'पर मुझे तो बिलकुल पसन्द नही आपका यह संकोच।'

थोई वे कुछ न बोलीं। मानो सोच रही हों कि कैसे बैठूँ, क्यों प्र-र बैठूँ, आदि।

मैंने अपना सिर हटा लिया और बोला—'तब आप क्षमा करिए।'

वे नकली नाराज़ी के गहरे स्वर में बोलीं—'आप तो हर बात में अपनी ही टेक निभाते हैं।'

मैंने हँसकर कहा—'यह तो मेरी बान है, आप जानती ही हैं।'

एक अजीब ढंग का मुँह बनाकर बोलीं—'वाह! खूब है आपकी बान!'

ऐसा कह कर वे खटिया के एक कोने पर बैठ गईं। मैंने सिर सरका कर कहा—'हाँ, अब भली भाँति दाबते बनेगा, आप वैसे ठीक नहीं दाब रही थीं।

वे मुस्कराईं। गजब का मुस्कुराना था उनका। कितना आकर्षक था उनका मंद-मंद मुस्कुराना भी; दिल में गड गया। भले ही सम्पत्ति का निर्धन अपने अतीत को भूल जाय परन्तु प्यार का निर्धन अपने प्यार को नहीं भूलता। वह मुस्कान याद आते ही आज भी रसलीन की वह पंक्ति 'अमिय हलाहल मद भरे श्वेत श्याम रतनार।' याद आ जाती है।

'क्या आपको नींद नहीं आती?' भावों को छुपाने का यत्न करते हुए मैंने कहा।'

'नहीं तो।'

'मैं तो एक नींद सो भी लिया और एक अनोखा सपना भी देख चुका। मैं सोचता हूँ अब तो आपको बिस्तर खोल लेना चाहिये जिससे बच्चा भी अच्छी तरह सो जाय और आप भी अपने शरीर को विश्राम दे लें।'

'मुझे तो नई जगह में नींद नहीं आती।'

'आप सच कहती है, इतनी लज्जा-प्रिय महिला को नई जगह मे, नए प्रकाश मे और नये व्यक्ति के सामने नींद कैसे आ सकती है ?'

'आप तो कुछ का कुछ समझ लेते हैं।'

'जैसा आप बोलती है वैसा ही मैं समझता हूँ। आप गलत बोलती हैं, मैं गलत समझता हूँ;आप सच बोलें तो मैं सच समझ लूँ।'

'मैं झूँठ कहाँ बोली।' ऐसा कहकर उन्होंने अपनी साडी का छोर जल्दी से मुँह मे दबा लिया।

'अभी-अभी आप एक करारी झूँठ बोल चुकी है।'

'सो क्या ?'

'वही हरिजन वाली बात। आप समझती हैं मै सदा ही अचेत...।'

वे खिल-खिला कर हँस दीं।

'कहिए ! कैसी पकडी गई आपकी झूँठ।'

जरा सम्हल कर बोलीं—'यदि मै सच ही बोली होऊंगी तब तो आपका धर्म बिगड गया न ?'

'यह बात नही है देवी ! मैं धर्म को धर्म-ध्वज-धारियों की तरह पिलपिली चीज नहीं मानता जो जरा छुए से पिचक जाय। न उन पाखंडियो की तरह हलका ही मानता हूँ जो महज़ हवा से ही उड जाय और उन्हे हेमाद्री-प्रायश्चित्त करना पडे। न मेरा धर्म उन ढोंगी अविवेकी मनुष्यों की तरह पोचा ही है जो किसी की परछाँई से ही दब जाए और उन्हे तीर्थों मे जाकर शुद्धि करना पडे। मेरे धर्म का सीधा सम्बन्ध तो मन की पवित्रता और निर्मलता से है जो सदैव गोपनीय रखी जा सकती है और उसकी आस्था मे धर्म की हरीतिमा सदैव हरी रखी जा सकती है। मेरे अनुमान से तो आप

शुद्ध झूठ बोली है। यदि आप सच ही बोली है तो मन की ऐसी पवित्र जाति पर तन की हजारों जातियाँ न्योछावर की जा सकती है। मुझे अत्यन्त प्रसन्नता है जो जाति आप जैसी स्त्री-रत्न को देश की समाज को दे सकी। मेरे सम्मुख कभी ऐसा प्रश्न उपस्थित नहीं होता, मैं तो मानव-आत्मा के प्रेम को प्रभू की तरह पवित्र मान कर ही उसका सदैव स्वागत किया करता हूँ और वही प्रेम प्राणी मात्र का कल्याण भी कर सकता है।'

वे गंभीरता से मेरी बात सुनती रही और जब मैं चुप हो गया तब बोली—'आपको आपकी उदार आत्मा के लिये धन्यवाद है।'

उनका हाथ मेरे सिर पर बराबर चलता जा रहा था और मेरा मर्ज उनकी निकटता से ही मानो उड चुका था। मन कहता था, इसी प्रकार रात निकल जाय, किन्तु सभ्यता कहती थी यह सरासर अपने हमदर्द के प्रति अन्याय है। इसलिए मैं अपनी आँखें बन्द करके उनकी स्नेह-माधुरी और रूप-सुधा का आस्वादन करता रहा। फिर सोचने लगा, उनके निश्चिन्त होकर सो जाने का उपाय जब आँखे खोली तो देखता हूँ वे मेरे चेहरे की ओर बराबर देख रही है और उनका चेहरा प्रसन्न है।

मैं बोला—'अब मेरा सिर ठीक है। आपके हाथों में भी अजीब तासीर है, वाकई आप डाक्टर है। मैं सोचता हूँ कि अब मैं आपको डाक्टर ही कहा करूंगा।'

वे ढिठाई की भाषा मे बोली—'नही, नहीं, मुझे कुछ न कहिये।'

'अच्छा साहब आपको कुछ न कहा करूंगा। अब आप सो जाएँ मैं बाहर जाना चाहता हूँ। थोडी देर ठंडी हवा लगेगी तो शायद यह अपने ही आप अच्छा हो जायगा। मुझे आपको और कष्ट देने का अधिकार तो नहीं है किंतु आपके हाथों से ,

गिलास सुराही का ठंडा पानी मिल जाय तो .।'

वे उठी और सुराही से छल, छल, छल करके गिलास भर लाई। उसी सुराही से, जोकि मेरे और उनके परिचय का माध्यम थी। मैंने पानी पिया। गिलास उन्हे वापस दे दिया। जूते पहने और दरवाजा ढुलकाते हुए कहा—'आप अन्दर से साँकल बन्द करके सो जाएँ ।'

वे कुछ कहना चाहती थी परन्तु जैसे होठो तक आकर कोई बात रुक गई हो। मैं थोड़ी देर इधर-उधर टहलता रहा और फिर उन हर भरे वृक्षो के बीच जा बैठा, उस टूटी-सी बेंच पर। पुरानी बेंच चरमरा उठी।

चाँदनी रजनी के शांत रथ पर भ्रमण कर रही थी। चन्द्र बच्चों की तरह किलकारी मारकर अपनी रश्मियाँ बिखेर रहा था। दूरी पर कही गायों के साथ कुत्तो का प्रकोप नीरवता भंग कर रहा था। कभी इक्के के घोडो की टापे तबले की तरह बज उठती थी। कभी पोलिसमैन की सीटी और कभी रेल की सीटी उस शांत रात्रि मे चेतनता की दुहाई दे देती थीं। वह समीर जो पत्तियो के बीच बैठकर कभी-कभी सनसनाती और मेरे मन को हरा कर जाती, तन को सहला जाती तब मैं सोचता यदि वे यहाँ होती तो यह शीतल समीर उन्हे भी आनन्दित करता, मेरा समय भी उनकी कटीली बातों मे कट जाता। चाँद से शरमाए हुए तारे और तारिकाएँ झिलमिल-झिलमिलकर आँख मिचौनी खेलते और मैं इन भावों के उद्दीप्त समय मे मानव मन और मानवी मर्यादा के बीच दबा हुआ सोच रहा था, एक सभ्य महिला के प्रति अपना कर्तव्य।

विश्व की सारी विलक्षणताओं को भूलकर मेरा मन नारी स्वभाव के चित्रण मे उदय होकर उसी मे अस्त हो जाता था और निन

नये आने वाले दिन की भाँति एक नया वेग छा जाता था, मेरे मन पर। मुझे उस वाटिका मे बैठे हुए घंटा भर भी न हुआ होगा कि मैं अपने विचारो से हैरान हो गया। मेरा वह त्याग जिसे लेकर मैं कमरे से बाहर हुआ था, फिर से उन्हे देखने, उन से बातें करने और उन्हें भी छोटीसी बगिया की जीर्ण शीर्ष बेंच पर बैठाने का अनुरागी बन गया। मैं इस तरह खडा हो गया मानो किसी ने हाथ पकडकर उठा दिया हो।

उठने के बाद फिर मैंने अपने चंचल मन को संयम की ग्रन्थियों से बांधने का यत्न किया और मैं सडक की तरफ मुड गया। लेकिन वे सीध में तनी तनाई, ध्यान मुद्रा मे स्थित—सी सुनसान बत्तियॉ और विरहिन सन्यासिनी सी वियोग की घडियॉ व्यतीत करती हुई सडक, मेरे मन को अधिक बहला न सकी। कदम—कदम पर मेरा मन बोझिल सा होता गया और मैं एक अजीब स्थिति का अनुभव करता रहा। आँखों मे नींद के निशान तक न थे और पैर चहलकदमी के लिये वृद्ध पुरुष की तरह शिथिल मालूम होते थे और मन तो हिरन की भांति ग्रन्थि मुक्त होकर उनसे मिलने को चौकडियॉ भर रहा था।

मैंने ऊपर जाने का निश्चय कर लिया। और जिस सभ्यता की शंका से मेरे पैर डगमगा रहे थे उनमे इस बहाने से बल आ गया कि कह दूँगा मुझे हॉलडाल चाहिये। ऊपर जाकर गच्ची मे सोना चाहता हूँ।' मनुष्य को निश्चय के साथ जरिए और बहाने अपने ही आप सूझ जाते हैं।

मैंने धीरे-धीरे ऊपर जाकर कमरे का दरवाजा धकाया। दरवाजे की सांकल खुली हुई थी। वे तुरन्त सम्हलीं। वक्ष को बिस्तर का सहारा देकर हाथ से मस्तक को साधे और पैर लम्बे किये हुए जैसे लेटी हुई थी, बैठ गई। मैं खटिया पर बैठ गया। उन्हें जागती हुई

पाकर मन कमल खिल गया। मैंने कहा—'आपने दरवाजा बंद नहीं किया कोई आकर कुछ उठा लेजाता तो?'

'आ कैसे जाता और उठा कैसे ले जाता,मैं क्या सोई हुई थी?'

'आपको नींद नहीं आई क्या?'

उत्तर न देकर केवल साडी से पैर की महावर को ढकते हुए वे बोलीं—'अब कैसा है आपके सिर का दर्द?'

'न ज्यादे हुआ न कम, करीब-करीब वैसा ही है।'

'आपको आज ही सिर दर्द हुआ है या पहले भी कभी हुआ था?'

'कभी-कभी हो जाया करता है, डाक्टरों का कहना है कि मानसिक श्रम के कारण ऐसा हो जाता है।'

'आज तो आपने मानसिक श्रम किया ही नहीं!'

मुझे उनके पूछने में व्यंग सा मालूम हुआ। मानसिक श्रम का अर्थ उन्होंने न जाने क्या लगा लिया था।

मैंने कहा—'आज ऐसा श्रम हुआ है जो दिखलाई नहीं पडता केवल समझा ही जा सकता है' और मन ही में कहा—'आपको क्या पता है आज किस तरह मस्तिष्क बोझिल होता जा रहा है।' बात को बदलते हुए मैंने कहा—'आज तो गर्मी भी बहुत थी। आप को भी अनावश्यक कष्ट देना पडा,आप जाने क्षमा करेंगी या नहीं।' वे अस्वाभाविक नाराजी प्रदर्शित करती हुई बोलीं,—'मैं तो इन कष्ट, क्षमा, कृपा, वाले बडे-बडे शब्दों से बहुत घबराती हूं।'

मैंने कहा—'घबराना तो आपका स्वभाव है। दो दो अक्षरों के छोटे शब्द तो हैं ही।'

'जी हाँ,।'

'क्या आप बतलाएंगी, आपने शिक्षा कहाँ तक पाई है?'

वे हँसकर बोली—'बहुत पाई है।'

'याने ?'

'याने चूल्हे से चक्की तक और चक्की से कुएँ तक।'

मैं उनके इस उत्तर से फिर भ्रम मे पड गया, क्या यह ठीक था ?

'आप फिर झूँठ बोलीं, सच-सच बतलाइए न ?'

'यही सच है और हम लोगो की शिक्षा का साधारण सम मे क्या अर्थ है ?'

उनके इस कथन मे जीवन की निराशा थी, जिसने मेरी को अधिक तीव्र बना दिया। बात को दोहराते हुए मैंने कहा—' शिक्षित है यह तो आपके शब्द, उनका प्रयोग, उच्चारण और से ही सिद्ध हो जाता है पर पर्दे ने शिक्षा की इस सतह तक भी इस सम्मान कैसे पाया, यह मेरी समझ मे नही आता।'

'मैं शिक्षित भी नही हूँ पर मुझे ऐसा ही रहना अच्छा लगता है, क्योकि आदत जो पड गई है।'

मैं पर्दे पर बहुत कुछ कह सकता था परन्तु उनके पर्दे स्वाभाविकता थी। व्यर्थ का दिखावा और भोंडापन नही था। इसलि कुछ कहने का साहस नही हुआ। वे अपनी बात कहकर अधिक गम्भी सी हो गई थीं। 'अब आपको भी नींद नही आ रही है न मुझे ही आ रही है, जिसे आ रही है वह सो रहा है। चलिए! हम लोग नीचे ही चले, वहाँ एक छोटी-सी बगिया है। एक बेंच भी है, हम लोग वहाँ बैठकर तारे गिनेगे।'

'क्या तारे भी गिने जा सकते है ?'

'क्या असम्भव है, अगर दो तपस्वी आकाश के दो हिस्से करके गिनने बैठ जाएँ तो गिन भी सकते हैं।'

वे मुक्त हास्य मे हँस दी। मानो पर्दे के आवरण मे बिजली कौंध गई हो।

मेरे प्रस्ताव का समर्थन करके बोली—'कुमार अकेला रहेगा!'

'हम लोग पास ही तो रहेगे। थोडी देर मे आ जाएँगे। कमरे को बाहर से ताला लगा चलते है।'

वे साधारण स्वर मे बोली—'चलिए!'

उनके इस शब्द ने मेरे मन के वेग को हलका कर दिया। शरीर मे एक अनूठी शक्ति का संचार-सा हो गया। मैं उठ खडा हुआ और मन मे सोचने लगा—बडा अच्छा-सा समर्थन हो गया। उन्होने बिस्तर खोलकर तकिया निकाला और उसके ऊपर कुमार का सिर रखा अपनी महीन चादर उसे उढ़ा दी। चप्पल पहनकर तैयार हो गईं। ताला भी उन्होने लगाया और ताली भी अपने ही पास रखली। हम लोग उस वाटिका मे जा पहुँचे। मन मे कुछ विचार थे और हम उन छोटी-छोटी क्यारियो मे घूम-फिर रहे थे। मैने गुलाब से खिले हुए फूल को सहज ही तोड लिया।

आघात की तरह तडपकर वे बोलीं—'राम-राम! यह आपने क्या किया?'

मैंने आश्चर्य चकित होकर कहा—'क्या हुआ?'

'आपने फूल तोडकर सोते हुए वृक्ष को सता दिया।'

फूल मैंने अपने लिए नही तोडा था। मैंने उनसे कहा—'यह फूल तो मैंने आपके ही लिए तोड़ा था, अपने लिए नही। मैं तो सोचता था आप प्रसन्न होगी, किंतु भाग्य, आप तो खिन्न हो गईं।'

'सोते हुए वृक्ष से कोई फूल, फल, पत्ते तोडता भी है?'

मैंने भूल सुधार की दृष्टि से कहा—'वृक्ष भी कही सोते हैं? देखिए न, ये सब बराबर तने हुए खडे है।'

वे व्यंग हास्य से हँसीं—'वाह साहब वाह ! बड़ा अच्छा है आपका । जब मनुष्य, पशु, पक्षी सभी सोते हैं तब वृक्ष क्या जीवधारी नहीं हैं जो सोएँ नहीं ?'

उन्हें छेड़ने की दृष्टि से मैं बोला—'वृक्ष तो निर्जीव है।'

वे हँस दीं, और बोलीं—

'समझदारों को समझाना मुश्किल है।'

मैंने कहा—'सच तो यह है कि मनुष्य स्वार्थी है। इस मानव ने अपने स्वार्थ के लिये मीलों के वन्य-प्रदेश के हरे वृक्षों को काट कर कोयला बना डाला। दुर्गों का ध्वंस कर डाला। नदियों की नहरें काट डालीं। पक्षियों को अपने शौक के लिये पिंजरे में बन्द किया, बन्दी बना लिया। पेट की ज्वाला के लिए भक्षण कर गया। पशुओं से अपना पेट भरा उन बेचारे मूक प्राणियों से अपनी जीविका चलाई और अनेकानेक जरूरतें पूरी कीं। क्या यह दुर्व्यवहार नहीं है? जलचरों तक को नहीं छोड़ा। समुद्र की छाती पर जंगी जहाजों का भार रखा। रत्नों के लिये उसका पेट खाली किया। द्रव्यों और पदार्थों के लिये, रत्नों और धातुओं के लिये पृथ्वी को खोखली कर दी। आकाश की स्वच्छन्द वायु से संघर्ष किया, कहाँ तक गिनाया जाए मनुष्य के स्वार्थ की काली करतूतों को। और इसके बाद भी उसने कभी यह नहीं सोचा कि मैंने सृष्टि कर्त्ता और उसकी सृष्टि के साथ, कोई अन्याय किया है।

'स्वार्थ की श्रेणी में मनुष्य हृदय हीन हो जाता है। बुरे को अच्छा और पाप को पाप जानकर भी पुण्य मानता है। यदि मनुष्य के अस्तित्व से स्वार्थ का अंश निकाल दिया जाय तो जिन्दा रहना असम्भव हो जाय। यह सब तो अन्य मनुष्यों की बात हैं। आप अपनी बात बतलाइए कि आपने कैसे जाना कि वृक्ष सोते हैं ?'

'एक रोज मेरे पिता ने कहा था' भोले स्वभाव से वे बोलीं।

'आप तो 'बाबा वाक्यं प्रमाणं' को वास्तविक रूप से चरितार्थ ी है, बडा ही महत्व देती है।

'हम लोगों को तो उन लोगों की बातो को ही प्रमाण मानना ता है। बाबाओं की ही क्यो बुढ़ियाओ की बातों को भी शिरोधार्य ना पडता है।'

'माना, किंतु विवेक से ही निर्णय करने के बाद, न कि जिसने कुछ कहा, अन्ध विश्वास होकर वही मान लिया। इसीलिए तो ज देश की नारियो की यह स्थिति बन गई है।'

'हम स्त्रियाँ ठहरी, हमारी दुनिया मे पहले विश्वास और फिर सी परिस्थिति विशेष के बाद विवेक। आप लोगो की तरह ज्ञान हमारे पल्ले मे होता नहीं जो दलीलो से, तर्क से, ज्ञान और विवेक निर्णय निकाले। हमे तो निष्कर्ष का स्थान विश्वास को ही देना ता है। वही हमारा अवलम्बन मात्र रहता है।

जैसा उन्हे मुझे मेरा समझाना मुश्किल होता था वैसे ही मुझे को समझाना मुश्किल हो गया। मैं नारी जगत को क्या जानूँ उस दुनिया मे बीस वर्ष की लडकी साठ साल की बुढिया से खुल : प्रत्येक विषय की बाते कर सकती है। मानो मैं उनकी दलीलो से ास्त हो गया। मैंने कहा—'क्षमा करिए, भूल तो थी हो गई। नुष्य का स्वभाव ही भूल है। अब तो आप इस वेचारे को स्वीकार जिए।'

वे मुस्कराकर बोली—'यह आप लोगो को ही आता है, भूल ना और फिर क्षमा माँगना।'

उनका आक्रमण कुछ असह्य सा हो गया किंतु जो मनुष्य नारी के रूप से परास्त हो जाता है वह उसकी भाषा, उसके व्यवहार और

उसके गुण सभी से परास्त हो जाता है। मैं सह गया। फूल मेरे ही हाथ रहा और मैंने उनसे कहा—'लीजिए, थोडी देर बैठ ही जाएँ। मन कह रहा था अनन्त तू बी० ए० होकर भी एक नारी से हार गया, परास्त हो गया, फेल हो गया। आखिर ये नारी है जो अजेय है।" क्या पर्दे के अन्दर रहकर भी ये इतनी बडी शक्ति अपने पास रखती हैं, कभी सोच ही न पाया था। हम लोग बेंच के पास पहुँचे। उनका स्थान छोडकर मैं बैठ गया। उनसे कहा—'बैठिए न!'

वे ही खडी रहीं। मैंने फिर कहा—'आप बैठ जाइए न, खडी ही क्यो रह गईं?' वे नीचे बैठ गईं और बोली—'आप बैठिए मुझे यहीं अच्छा लगता है।'

उन्हें पकडकर बैठाने को मेरा हाथ बढा, किन्तु हाथ मे कम्पन था। जाने यह कम्पन मेरी किस शिरा मे छिपा हुआ था। वे और सरक गईं।' मेरा हाथ गिर गया। मैं कह रहा था—'क्या मुझसे फिर एक भूल हो गई।' प्रकट मे कहा—'मुझे भी नीचे ही बैठना पडेगा'। इतना कह कर मैं भी उसी नन्ही-नन्ही दूब के गलीचे पर उनके पास बैठ गया।

'आप नीचे क्यों बैठ गए? ऊपर ही बैठिए न!'

'जहाँ आप बैठी अच्छी लगती है, वहाँ मैं क्यों नहीं अच्छा लगूंगा?'

'आप इतने बडे आदमी नीचे अच्छे नहीं लगते।'

'मुझे बेंच पर बैठने का शौक नहीं है। मैंने तो हमेशा ही प्रकृति की स्वाभाविकता को ही स्थान दिया है। जो प्रकृति कह सकती है वह मनुष्य नहीं कह सकता। जो प्रकृति लिख सकती है, वह मनुष्य नहीं लिख सकता। जो प्रकृति दे सकती है, वह मनुष्य नहीं दे सकता। इसके बाद भी मनुष्य के निर्माण का भी एक स्थान है और मैं उसी

स्तित्व को सम्मान देने बैठना चाहता था।'

'किन्तु आपने तो सम्मान की अपेक्षा नीचे बैठ कर अपमान कर दिया।'

'प्रकृति के सम्मुख पुरुष का क्या अस्तित्व, आप प्रकृति रूपा है ौर आपके सम्मुख मेरा.... ।'

वे मेरी आँखों मे अपनी बडी-बडी आँखे डालकर मुस्कुरा दीं। र बोलीं—'आप मुझे पागल बनाकर चने के झाड पर चढा देना–खूब ानते हैं।' उनकी इस बात ने मेरे आत्म बल को प्रोत्साहन दिया। अधिक साहसी हो गया और उसी साहस मे कह गया 'मैंने चाहा ा कि आपको हाथ पकड कर बैठा लूँ, इसीलिए बाँह बढाई थी।'

'आपने बाँह क्या बाँह पकडने को बढ़ाई थी ?'

मैं दूब से खेलता हुआ बोला—हाँ।'

वे अधिक सावधान होकर बोली—'और बाँह गहे की लाज ?'

मैं यह सुनते ही मानो उनके शब्दो के साथ-साथ उड रहा हूँ। ोचता ही रहा पर सोच न पाया। क्षण भर को मैं जाने कहाँ से कहाँ हुँच गया।'

'आप तो बडे सोच-विचार मे पड गये।'

'मेरी छोटी सी बात को आपने विचारणीय बना दिया, इसीलिए वेचार आवश्यक हो गया। यदि उस आवेष मे पकड़ ही लेता तो क्या ाप हाथ नही झटक देतीं और मुझे उसके बाद तो धरती मे ही धँस ााना पडता।'

'मैं क्यों झटकती, पर आपका हृदय ही आपका साथ न े सका।'

वे एक व्यंग हास्य से हँस दीं, मानों मेरी भीरुता पिट रही हो।'

'लीजिए! मैं बैठ जाती हूँ—इसलिये कि पुरुष जाति के

निर्माण को सम्मान देना है।'

वे उठ खड़ी हुईं। मैं भी उनके साथ उठ खड़ा हुआ था। मैं भी बैठ गया और वे भी मेरे पास बैठ गईं। मानो बेंच के भाग्य खुल गए। खुशी में एक बार और चरमराई 'कहिये, अब तो आप खुश है ?'

मैंने कहा—मेरा तो वही हाल है कि—'राजी हैं हम उसीमें जिसमें तेरी रजा है।' मुझे इस समय इन्द्र के आसन के मिल जाने की सी खुशी है।'

'क्यों नहीं ! कहिए, क्या बात कहना चाहते है ?'

'सबसे पहली बात तो यह है कि मुझसे आप ऐसी निर्जनता में भी इतना पर्दा क्यों करती है ?'

'मेरा पर्दा कहाँ रहा। पर्दा तो वही नष्ट हो गया जहाँ मैं आप से बोलने लगी, मारवाड़ियों की तरह पर्दा भी और बोलना भी मुझे तो अच्छा नहीं लगता—भगवान जाने वे बेचारियाँ कैसे ।'

'मालूम होता है, आप लोगो मे पर्दा प्रथा अधिक है ?'

'हाँ, अधिक है, देखने-दिखाने के लिए परन्तु वास्तव मे तो 'कुछ नहीं' के ही बराबर है।'

'फिर भी ससुराल मे तो करना ही पड़ता होगा ?'

मेरी इस सहज बात पर ही उन्होने एक ऐसी वेदनामयी साँस ली मानों उन्हे वृश्चिक दंश छू गया हो। मन का वेग उसी क्षण उतर सा गया। मैं भी अपने आनन्द को खो बैठा। कुछ क्षण के लिए हम दोनों ही अपनी-अपनी विचार-वीथियो में भटकते रहे। एक गहरा सन्नाटा छा गया और फिर मैंने नीरवता भंग करने की चेष्टा से कहा— 'क्या फिर मुझे क्षमा माँगनी पड़ेगी ?'

वे अपनी सारी आत्म-पीड़ा को छिपाकर अस्वभाविक प्रसन्नता से बोली—'नहीं, ऐसा कुछ नहीं।'

'आप मौन क्यों हो गईं ?'

'योंहीं कुछ और ही बात थी।'

मैंने बच्चे की तरह मचलकर कहा—'नही बतलाइए तो क्या ात है—आपको मेरी शपथ है।'

मीठी नाराजी से वे बोलीं—'यह क्या करते है आप, शपथ यों देते हैं !'

मन की सफाई पेश करते हुए मैंने कहा—'और क्या उपाय है ापके मन से छिपी हुई बात निकालने का।'

जरा हँसीं और हलकी-सी खीज के साथ बोलीं—'वाह वाह ाच्छा उपाय सोचा आपने . . .।'

'यदि आप क्षमा कर दे तो एक बात कहूँ ?' मैंने प्रार्थी की ारह कहा।

'मैंने पहले ही क्षमा के लिए क्षमा मांग ली। फिर आप बार-ार क्यो क्षमा क्षमा, ले दौडते है।' मानो वे नाराज हो गई हों।

'मनुष्य आवेश में अपने बन्धन भूल जाता है, मैं भी भूल ाया। अच्छा अब यह शब्द मुँह पर न आने दिया करूंगा। सच ो यह है कि मैं अपनी ही आत्मा का गुलाम बन गया हूँ। जाने क्यों ुझे आपसे अपने ही आप इतना स्नेह हो गया है कि ..। आपने ाम्बी साँस क्या ली मानो मेरे दिल के टूक-टूक हो गये हों।'

वे बडी सादगी से बोली—'जी !' और हँस दी। जरा सतर्क ोकर कहा—'पुरुष बडे विचित्र होते है। लीजिए ! साँस मैंने ली और आपने दिल के टूक-टूक ही कर लिये। मेरे दिल के न तो टुकडे ो होते है, न मुझे आपसे स्नेह ही है। यदि होता तो मैं आपसे ापकी तरह कह अवश्य देती।'

उनका बड़ा करारा व्यंग था। मैं लज्जित हो गया और अपनी

बढती हुई लज्जा को छिपाने का यत्न करते हुए कहा—'कह देना तो प्रेम का प्रदर्शन कर देना है।'

वे फिर गंभीर हास्य से हँस दीं। उनके हास्य से मेरे मन पर एक गुप्त चोट लगी। मैंने अपने से ही कहा—'क्या मेरी बुद्धि कुण्ठित हो गई है? मैं बात बात में क्यो लथाड खा जाता हूं। उनके उस सन्ध्या के सारे हास्य मुझे याद आ गये। मुझे ऐसा लगा मानों बातों की इस हाट मे मेरे प्रेम का वही मूल्य हुआ है जो पानी उतरे हुए मोती का सराफे मे हो जाता है।

मैंने कहा—'आपने तो मेरी बातो को बातो ही मे इस तरह टाल दिया जैसे ब्याज देकर साहूकार टाल दिया जाता है।'

वे हँस दीं।

मैंने स-साहस तीखे स्वर में कहा—'कहिए न!'

'क्यो हठ कर रहे हैं आप। हम स्त्रियो का तो रूप और आवरण ही मोहक होता है, हृदय तो दुखो और पीडाओ से भरा हुआ होता है। समझदार पुरुष रूप ही देखते हैं हृदय नहीं देखते....।'

मैं बीच ही मे उनकी बात काट कर बोला, मानो मैं पुरुष जाति का वकील हूँ,—'आप उलटी बात कह रही हैं। समझदार पुरुष केवल हृदय ही देखते हैं रूप नहीं देखते।'

मेरी समझ से मैंने बहुत ही अच्छा उत्तर दिया किन्तु ज्यों ही वे फिर एक गंभीर हास्य हँसीं कि मेरे देवता कूँच हो गये। मैं ऐसा अनुभव कर रहा था—मानो दौड़ता हुआ घोटा एकदम खाइयों के घेरे मे घिर गया हो।'

वे जरा गर्दन हिलाते हुए बोलीं—'पुरुष समाज ने तो केवल स्त्रियों को मानो अपने खेल और मनोरंजन का चबूतरा समझ रखा है।

उनकी इच्छा के साथ-साथ चमन है और अनिच्छा मे मग्न. . .।'

मैंने मार्ग खोजते हुए कहा—'मुझे तो भली-भाँति अनुभव नहीं पर आपके कथन की सत्यता में भी मुझे कोई सन्देह नहीं दिखाई देता । होते है, अधिकतर मनुष्य ऐसी ही मनोवृत्तियो के।' और मुझे याद आ गई अपने मन चले साथियो की, जिन्होने खिलवाड समझ कर ही अनेक नारी हृदयो की हत्याएँ कर डाली थी, छोटी-छोटी बातो का बहाना लेकर दूर हट गये। उन बेचारियो की वे शिकायते जो पत्रो के रूप मे उनके पास आई थी ऐसी ही तो थीं। मैं थोडी देर चुप रहा, इन्ही बातो के कारण। विषय भी अधिक गंभीर होता जा रहा था और मैं सोचने लगा विषय बदल देने का उपाय,जिससे उनकी चातुरी जो मेरे हक मे दल-दल बन गई थी—उससे बचकर ऊपर जाने का उपाय। मेरा हर्ष लुटा जा रहा था और मैं किंकर्त्तव्य विमूढ की भाँति लदता ही जाता था कि इतने मे ही वे हाथों की उंगलियों को आपस मे फँसाती हुई बोली—'जीवन के उपवन मे जब चिन्ताएं पैने शूल गडाती है तब बेचारी नारी एक दर्द और सिहरन लेकर अपने आप मे ही दिनो-दिन आहत हो जाने का अनुभव करने लगती है और घुलती रहती है, तिल-तिल होकर अपने भाग्य और भगवान के नाम पर।'

मानो मेरी बुद्धि ने उनके विवेचन के सम्मुख अपने शस्त्र डाल दिये।

'यह आप ठीक कहती हैं। पुरुषों मे प्रयत्न के बाद वह रसता नहीं देखी जाती जो आप लोगों मे स्वाभाविक ही होती है।' यह कहने के बाद भी मुझे विश्वास नहीं हुआ कि मैंने कुछ कहा। और होता भी कैसे जब कि मैंने झूठे गवाह की शहादत की भाँति नारी जाति के सम्पर्क में आने के पूर्व अपनी सम्मति दे डाली। मै अपने

ही आप में शंकित था, फिर भी बरबस उनके जीवन के तलछट में उतरा जा रहा था। ओह ! इस सुकुमार हृदय में ऐसी बेचैन आँच। इतना कटु अनुभव इस पुरुष जाति का और इतनी सत्य आलोचनाएँ, जाने कैसे और क्यों प्रवेश कर गई है। इन्हीं विचारों की कटीली झाड़ी ने मुझे चारों तरफ से पकड़ लिया कि थोड़ी ही देर में मेरी देह पसीने से तर हो गई। अपने शरीर पर हाथ मलकर मैं विवश होकर उनसे बोला—'अब आप इस विषय को अधिक गंभीर न कीजिए। मेरा मन समस्याओं का क्रीडा-थस्ल बना जा रहा है। वह आनन्द, जिसकी कि मैं कल्पना करके यहाँ आपको लाया था कपूर की भाँति उड़ गया।'

वे बहुत सरल होकर बोलीं—'इसलिये ही तो मैं आपसे कह . . .।'

साहस की दुहाई देते हुए मैंने कहा—'मगर मेरी उत्सुकता तो अब भी है कि मैं आपसे वह कारण जानूँ जिसके कारण आपके हृदय में ये भावनाएँ अपना पड़ाव डाले हुए हैं।'

मेरी बात को सुनकर भी वे अनसुनी सी कर गईं। फिर बात को टालने के इरादे से बोलीं—'जाने भी दीजिए इन बातों को, आप तो और कुछ बातें कीजिए।'

मैं जान गया कि यह बात उन्होंने मुझ से महज मेरी खिन्नता मिटाने के ही हेतु कही थी। इसलिये मैंने भी सोच लिया कि और किसी समय यह बात पूछ ली जायगी।'

बात बदलने के ख्याल से कहा—'कहिये, भोजन कैसा था?'

वे मनमार कर बोलीं—'अच्छा ही था। क्या यहाँ सीधा सामान नहीं मिलता?'

मैंने घाटी चढ़े हुए राही के से धैर्य के साथ कहा—'मिलता

क्यों नहीं, सीधा, सामान, बर्त्तन, लकड़ी सभी मिल जाते हैं। अपने कमरे के सामने वाली लाइन के पीछे रसोई घर बने हुए हैं; पर यह सब झंझट करे कौन; और बनाना आता ही किसे है ?'

वे अधिकार में शंका का पुट देते हुए बोली—'यदि आपको मेरे हाथ के भोजन में अड़चन न आती हो तो कल सामान ही मंगाइए!'

सहानुभूतिपूर्ण उनकी इस हमदर्दी से मेरा मन नाच उठा।

मैं बोला—'मुझे आपके हाथों से तो सख्त परहेज है। हाँ, आपके पैरो से जरूर नहीं है क्योंकि हरिजन के हाथों की अपेक्षा पैर अधिक पवित्रहोते है—पैरों से बन सकता है क्या ?'

वे हँस दीं और गर्दन हिलाकर बोली—'जी साहब!'

हम लोग मानो गहर गंभीर सरिता को पारकर के किनारे जा लगे हों।

'देखा आपने टी-टी साहब का ढंग ?'

वे इतराई हुई आवाज में बोलीं—'ऐसा ही मुआ मरा ही जा रहा था। जैसे हम उसके सिर पर ही बैठकर आए हो।'

'वह बेचारा मोटा अच्छा आदमी था क्यो न ?'

'जी, आपने भी तो उस मुकटे के लत्ते ले डाले।'

वे मुँह फेर कर हँस दीं फिर बोली—आप 'कुमार के बाप जो ठहरे।' इतना कहते २ वे फिर अजीब प्रसन्नता से खिलखिला उठीं।

'क्या करता उस समय कोई उपाय ही न सूझा, इसलिए 'आपत्ति काले मर्यादा नास्ति' वाली बात करनी पड़ी, उस समय आपको बहुत बुरा लगा होगा।'

वे मंद हास्य हँसकर बोली—'क्यों ?'

'इसलिए कि मैं एक महज राही और यों ही बाप बन गया।'

'जब संसार के बच्चे आपके प्रेम-पात्र हैं तो फिर पिता बने

ही आप मे शंकित था, फिर भी बरबस उनके जीवन के तलछट मे उतरा जा रहा था । ओह ! इस सुकुमार हृदय मे ऐसी बेचैन आँच । इतना कटु अनुभव इस पुरुष जाति का और इतनी सत्य आलोचनाएँ, जान कैसे और क्यो प्रवेश कर गई है । इन्ही विचारो की कटीली झाड़ो ने मुझे चारो तरफ से पकड लिया कि थोडी ही देर मे मेरी देह पसीने से तर हो गई । अपने शरीर पर हाथ मलकर मैं विवश होकर उनसे बोला—'अब आप इस विषय को अधिक गंभीर न कीजिए । मेरा मन समस्याओं का क्रीडा-स्थल बना जा रहा है । वह आनन्द जिसकी कि मैं कल्पना करके यहाँ आपको लाया था कपूर की भाँति उड गया ।'

वे बहुत सरल होकर बोलीं—'इसलिये ही तो मैं आपसे कह . . .।'

साहस की दुहाई देते हुए मैंने कहा—'मगर मेरी उत्सुकता तो अब भी है कि मैं आपसे वह कारण जानूँ जिसके कारण आपके हृदय मे ये भावनाएँ अपना पडाव डाले हुए हैं ।'

मेरी बात को सुनकर भी वे अनसुनी सी कर गईं । फिर बात को टालने के इरादे से बोलीं—'जाने भी दीजिए इन बातों को, आप तो और कुछ बाते कीजिए ।'

मैं जान गया कि यह बात उन्होंने मुझ से महज़ मेरी खिन्नता मिटाने के ही हेतु कही थी । इसलिये मैंने भी सोच लिया कि और किसी समय यह बात पूछ ली जायगी ।'

बात बदलने के खयाल से कहा—'कहिये, भोजन कैसा था ?'

वे मनमार कर बोलीं—'अच्छा ही था । क्या यहाँ सीधा सामान नहीं मिलता ?'

मैंने घाटी चढ़े हुए राही के से धैर्य के साथ कहा—'मिलता

नहीं और बैठी है आप ही इस समय बगीचे मे।'

वे मुक्त हास्य से खिल खिला कर हँस दीं। फिर उंगली अधरों से लगाकर बोली—'जैसे आप नकली पिता है वैसे ही मैं भी नकली.. ...।'

'राम–राम क्या मजेदार पहेली है। मैं तो हैरान हूँ, कुमार की ही जानकारी प्राप्त करने मे।'

मैं फिर परास्त हो गया और वे मेरी थकान का भली भांति अनुमान लगाकर बोली—'कुमार मेरी बडी बहन का बच्चा है।'

'भगवान आपका भला करे। आज आप कहाँ से आ रही हैं?'

'बहन के यहाँ से।'

'क्या वह टिकिट आपकी बहन साहिबा का ही था?'

'जी!'

इस बात के साथ ही साथ उन्हे कुमार के अकेले होने का खयाल हो आया जैसे आते समय बहन की कही हुई बात याद हो आयी हो 'देखना कुमार को अच्छी तरह रखना।' चिन्ता के भावों को बटोरती हुई बोली—'कुमार को पसीना आ गया होगा तो वह जाग जायगा। दरवाजा बन्द और अकेला समझकर डरकर रोता होगा।'

'फिर चलें क्या?'

'जी हाँ बहुत देर हो गई।'

'चलिये!' कहकर मैं खडा हो गया। वे भी मेरे साथ–साथ उठ खडी हुईं। जब हमने कमरा खोल कर अन्दर देखा तो कुमार सचेत होकर भयभीत मुद्रा बनाए बैठा था। वे उसके पास पहुँचीं और उसे चूमती हुई बोली 'क्यों नींद खुल गई?' और साथ ही हाथों से उसके शरीर का पसीना पोछने लगीं। 'डर लग रहा था क्यों?' कुमार ने उनकी तरफ देखकर मुँह फुला लिया। बार–बार के प्यार पुचकार को

बिना प्यार कैसे निभाया जा सकता है ?'

'आपका बच्चा बडा ही सुपात्र और होनहार होगा। उसके ऐसे ही लक्षण हैं।'

वे फिर एक बार हँस दी।

'आप तो बार-बार हँस देती हैं ?'

'इसलिए कि पराए बच्चे के जैसे आप जबरन ही बाप बन गए वैसे ही मुझे भी माँ बना रहे है ?'

मैं उनकी इस बात से अप्रतिभ हो गया।

'क्या कुमार आपका बच्चा नही है ?'

वे मुँह मे साडी का छोर लगाकर हँसी चुरा गई।

'मेरा नहीं है, भगवान का है।'

मेरी हालत और भी विचलित हो गई।

'भगवान का तो है ही। फिर आपका भी तो है।'

वे फिर एक मीठी हँसी से हँसते मुँह से ही बोली—'नहीं

'यह आप क्या कह रही है ?'

हँसी का आनन्द विस्मय छीन बैठा था।

'मैं झूँठ नही बोलती ठीक ही कह रही हूँ।'

'फिर कुमार किसका बच्चा है ?'

'उसके माँ–बाप का।'

'कहाँ हैं उसके माँ–बाप ?'

'इस समय के तो बगीचे मे बैठे है।'

मैं हैरान सा हो गया 'हे भगवान यह और क्या नई उलझन है ?

'क्या दिन की बात ही आपको रात में उलझन मालुम होने लगती है ?'

'यह उलझन नहीं है तो क्या ? आप कहती हैं मैं उसकी माँ

'नहीं और बैठी है आप ही इस समय बगीचे मे।'

वे मुक्त हास्य से खिल खिला कर हँस दीं। फिर उंगली अधरों से लगाकर बोली—'जैसे आप नकली पिता है वैसे ही मैं भी नकली......।'

'राम–राम क्या मजेदार पहेली है। मैं तो हैरान हूँ, कुमार की ही जानकारी प्राप्त करने मे।'

मैं फिर परास्त हो गया और वे मेरी थकान का भली भाति अनुमान लगाकर बोली—'कुमार मेरी बडी बहन का बच्चा है।'

'भगवान आपका भला करे। आज आप कहाँ से आ रही हैं ?'

'बहन के यहाँ से।'

'क्या वह टिकिट आपकी बहन साहिबा का ही था ?'

'जी !'

इस बात के साथ ही साथ उन्हे कुमार के अकेले होने का खयाल हो आया जैसे आते समय बहन की कही हुई बात याद हो आयी हो 'देखना कुमार को अच्छी तरह रखना।' चिन्ता के भावों को बटोरती हुई बोली—'कुमार को पसीना आ गया होगा तो वह जाग जायगा। दरवाजा बन्द और अकेला समझकर डरकर रोता होगा।'

'फिर चले क्या ?'

'जी हाँ बहुत देर हो गई।'

'चलिये !' कहकर मैं खडा हो गया। वे भी मेरे साथ–साथ उठ खडी हुईं। जब हमने कमरा खोल कर अन्दर देखा तो कुमार सचेत होकर भयभीत मुद्रा बनाए बैठा था। वे उसके पास पहुँचीं और उसे चूमती हुई बोली 'क्यो नींद खुल गई ?' और साथ ही हाथों से उसके शरीर का पसीना पोछने लगी। 'डर लग रहा था क्यो ?' कुमार ने उनकी तरफ देखकर मुँह फुला लिया। बार–बार के प्यार पुचकार को

पाकर उसका अधिकार जागा। हाथों को गले में डालकर बोला—'तुम कहाँ गईं थीं मोंछी हमको अकेला छोड़कर ?'

वे एक अज्ञात आशंका से शंकित हो गईं। मेरी ओर देखा, खाट पर बैठा-बैठा मैं उन दोनो के प्रश्नोत्तरो का निष्कर्ष सोच रहा था। जरा सम्हल कर बोलीं—'गर्मी लग रही थी तो बाहर खडी थी, कहीं गई थोडे ही थी।' और मुझे उनकी झूँठ पर खुरापात सूझ रही थी। मैं कहना चाहता था—'तुम्हारी नकली माँ नकली बाप के साथ हवा खा रही थी।'

उन्होने कुमार को अपनी गोद मे लिटा लिया और धीरे-धीरे उसे थपथपाने लगीं। मैं जूते खोलकर खटिया पर लेट गया, किंतु मेरी आँखों से नींद फिर भी लापता थी। मैंने उन्हीं की तरफ अपनी करवट ले ली और मीठी-मीठी चितवन से निहारता रहा उनका चन्द्रानन जो अनन्त मोहक था। नेत्र नेह वृष्टि कर रहे थे, चेतनाओं मे शिष्ट चापल्य था। अधरों मे मधुर मुस्कान थी जो समस्त आनन पर रानी की भांति सुशोभित थी। मैं कह रहा था अपने ही से—आज ये छीन लाईं चंद्र से कलाओ को, अब उसके पास क्या रखा है। उपवन की गन्ध लूट लाईं हैं; वह भी गन्धहीन है। पवनदेव से ताप हारिता का वरदान ले आईं हैं तभी तो निशा के इस पिछले पहर मे भी इनकी द्युति अक्षुण्ण है। ऐसी आभा की अपूर्वता मेरे मन का अवलम्बन थी। हाथ की घडी चार बजाकर पैंतीस मिनिट खत्म कर चुकी थी।

इस प्रकार की थोड़ी नीरवता ने कुमार की आँखो मे फिर से नींद घोल दी। जब उन्होंने उसका माथा तकिए पर रखा और मेरी ओर देखा तब कुमार के जाग जाने के भय से मैंने उन्हें हाथ के संकेत से बुलाया और उसका उत्तर उन्होंने अपनी आँखों की सैन मे दिया। यह उनकी 'लोल कटाक्षपात निपुणा' की पहली क्रिया थी, जिसने

मन को पुनः झकझोर दिया। जरा देर के बाद वे उठी और मंद-गति से मेरे पास आई—'कहिए; क्या बात है?'

'आपको नींद आ रही है क्या?'

सजग चितवन से कहा—'नहीं तो, मुँह से भी यही शब्द कला।'

आशा की अभिलाषा लेकर मैंने कहा—'चलिये! फिर जरा र की गच्ची की ही हवाखोरी कर आएँ। दिन में तो मौका मिलेगा। इस समय चाँदनी रात में खूब हवा आ रही होगी।'

सन्देह के भाव बनाकर वे बोलीं—'और अगर कुमार फिर ग गया तो?'

सहूलियत निकालते हुए मैं बोला—'अभी तो सोया ही है ड़ी देर में तो हम लोग आ ही जाएंगे। इतनी जल्दी तो शायद नींद खुले।'

'आप ही हो आइएगा!'

'मुझे भी रामदीन की तरह बिना संगी के मजा न आएगा।'

'फिर आप बिना संगी के अकेले चल ही कैसे दिये?'

'जिसका कोई संगी हो नहीं वह क्या करे? संगी तो मनुष्य भाग्य और मुश्किल से ही किसी को कोई मिलता है और जो हीं वह भी सलोना हो तो फिर तो कहना ही क्या है। मेरे भाग्य तने अच्छे हैं जो आप उस तरह मिलीं' मानो डाल से टूट कर आ गई हो सीधे हाथों में।'

उन्होंने मुँह फेर लिया। शायद हँसी होगी या मुस्कुराई ोंगी। जब मेरी तरफ देखा तो बोलीं—'चलिए चलें।' फिर बोलीं —'देख लूँ कहीं ढोंगकरके जागता हुआ तो नहीं सो रहा है।'

वे उसे एक बार आवाज दे करके परीक्षा कर चुकीं। फिर

बोली—'चलिए !' दबे-दबे पैर हम दोनों कमरे से बाहर हुए। दरवाजा बन्द किया और धीरे-धीरे ही ऊपर चाँदनी में जा पहुँचे। मैंने यह कहा ही था कि—'देखिये; कितना अच्छा लगता है। चन्द्रिका वृक्षों की झुरमुट से कैसे झाँक रही है; मानो पर्दानशीन नाज़नीं अपनी तनहाई का सदुपयोग कर रही हों।' इतने में ही एक तीव्र प्रकाश हुआ। हम लोगों की दृष्टि प्रकाश के साथ-साथ दौड़ने लगी। क्षण भर ही में लाखों मीलों की दूरी को समेट कर वह प्रकाश पुंज तारा अपने अस्तित्व को लेकर गगनाञ्चल में विलीन हो गया। वे राम, राम राम कहने लगीं। मैं भी उनके साथ-साथ राम, राम कहने लगा।

मैंने उनसे कहा—'क्या यह इसकी विदावेला की राम-राम है ?'

'हाँ, किसी बड़े तपस्वी का तप क्षीण हो जाता है तब वह अपने स्थान से गिर जाता है।'

'आकाशी स्वच्छन्दता पर भी प्रभु का आर्डिनन्स (दंड विधान) काम करता है यह बात आपको कैसे मालूम हुई ?' मैं सोच ही रहा था कि यही कहेंगी कि 'मेरे पिता कहा करते हैं।' इतने में ही उन्होंने वही कहा और मुझे उनकी इस बात पर हँसी आ गई। अपनी समझ शक्ति पर गर्व भी हुआ कि मैंने सोचा था वहीं उत्तर मिला।

'मैं तो आपके कहने के पहले ही समझ गया था कि आप क्या कहेंगी। वही आपने कहा—।'

'नहीं तो क्या मैं अपनी माता के पेट से सीखकर आई हूँ या आपकी तरह पढ़ी लिखी हूँ जो ज्ञान को बटोर रखा है।'

मैंने कहा—'आपके पिता क्या हैं, सृष्टि शास्त्र के विशेषज्ञ हैं ? जी चाहता है उनके दर्शन किये जाएँ।'

वे पुलकित मन होकर बोलीं—'बड़े ही अच्छे हैं मेरे पिता !

इतना कहकर वे शान्त विचार धारा मे तल्लीन हो गईं।

मैंने कहा—'क्या आपको पिता की याद आ गईं ?'

'पिता की याद तो आती है। अभी तो मैं यह सोच रही हूँ यह जो बेचारा तारा टूट गया है, वह अब फिर भी कभी अपने साथी से मिल सकेगा, क्या ?'

मैंने अपने अध्यात्म ज्ञान का परिचय देते हुए कहा—'हाँ, इस रूप से नही, इस समय नही, किंतु युग–युग के बाद ही सही पर मिलेगा तो अवश्य। मिलन और वियोग तो सृष्टि का अबाधित विधान है। इस इतने बडे ब्रह्माण्ड मे क्षण-क्षण जाने कितने योग वियोग होते रहते है। योग ही वियोग की प्रथम सूचना है और वियोग योग की प्रथम आशा है। आपकी कल्पना ने तो कवि कल्पना को भी पीछे रख दिया।' मैं और कुछ कहना चाहता था कि सामने की रगीन खिडकी जो खुली हुई थी अचानक वहाँ सारंगी ने साँस ली। तबले ने स्वर–साधना मे हथोडी का दण्ड झेलना शुरू किया। स्वर मिल गये उधर और इधर योग–वियोग की मानसिक विवेचना करते हुए टहल रहे थे दो प्राणी; मंद–मंद समीर शरीर को छू–छू जाती और तारे झप–झप करते, कि इतने मे एक कोकिल कंठ साज के साथ स्वर भरने लगा। मेरी दृष्टि कानो की राह दौड–दौड कर बार–बार खिडकी पर जाती यह देखने कि कौन है जो गा रहा है। स्वर साफ था किन्तु बोल अस्पष्ट थे। हम दोनो ही डोल के सहारे कोहनी पर शरीर का भार साधते हुए खडे हो गये।

मैंने कहा—'कितना अच्छा लग रहा है इस समय इसका गाना।' वाद्य की सजगता मन को चुरा रही थी। उनकी उँगलियाँ स्वर के साथ–साथ चल रही थी मानो वे कुछ बजा कर उस साज का साथ दे रही हों।

मैंने कहा—'यह प्रभाती होगी ?'

वे बोलीं—प्रभाती नहीं है; जोगिया है।'

मैंने कहा—'आप तो संगीत को समझती हैं, तभी आ सिनेमा में संगीत का आनन्द ले रही थीं।'

वे बोलीं—'सिनेमा का संगीत कुछ और है और यह कु और है।'

मुझे उनके ज्ञान से कुछ ईर्षा सी हुई, बोला—'आप क्यों नह समझें। एक तो आप स्वयं ही वीणा-वादिनी की जाति की फि आपके पिता हैं, क्या कमी है। अभागा तो मैं हूँ जो न दादा है न अम्म मुझे कौन समझाए।'

आश्चर्य से उन्होंने प्रश्न किया—'आपके माता-पिता नह हैं क्या ?'

मैंने कहा—'हाँ, ये शरीर ऐसा ही अभागा है।'

मैं आँखें बन्द करके अपने बचपन को स्मरण करने लगा औ डूबना चाहता था उन्हीं नन्हीं-नन्ही स्मृतियों में कि वे कुछ गुन गुनाने लगी।

मैंने आँखें खोल कर उनकी ओर झांका और बोला—'माल होता है आप बहुत अच्छा गाना भी जानती हैं ?'

निहायत सादगी से उन्होंने कहा—'ऐसा कुछ तो नहीं; प हाँ, कभी-कभी थोड़ा ऐसा ही गुन-गुना लेती हूँ।'

'क्यों नहीं; यह तो आपका वह अधिकार है जो जन सिद्ध है।'

इसके बाद दो मिनट का विश्राम लेकर फिर साज आरम्भ हुआ। मीरा का पद आरम्भ हुआ—'मैं तो गिरधर आगे नाचूँगी' की इस पद में सहयोग देने लगीं। इसके बाद तुलसी का पद, स

का पद, कबीर के निर्गुण ब्रह्म के पद गाये गये। पर वे भी बराबर साथ दे रही थी।

मैंने कहा—'क्यों आया न आनन्द। मालूम होता है कोई अच्छा। गाने वाला है?'

वे हँस दी।

'क्यों?'

'गाने वाला नहीं है 'गाने वाली' है। मालूम होता है कोई बंगालिन है पद अशुद्ध बोलती है।'

मैं मन ही मन उनके ज्ञान से लज्जित हो गया। सराहना कर रहा था उनके निर्माण नायक की जो संस्कृति के पूर्ण हिमायती है,' कि वे बोली—

'मनुष्य भी क्या पक्षियों से कम है? एक दिन मे कहाँ से कहाँ पहुंच जाता है। कल इस समय मैं कहाँ थी और आज इस समय कहाँ हूँ।'

'यह सब रेल की कृपा का फल है जो नित्य लाखों व्यक्तियों को योग वियोग के सुख-दुख दिलाती है। स्थिर को अस्थिर बनाती है। आशा को निराशा मे डालती है और निराशों को सफल आशा के दिन दिखलाती है। कल इस समय आप कहाँ थी?'

'बीना मे थी।'

'वहाँ कौन है आपके?'

'मेरी बहन और बहनोई है।'

'याने कुमार के माता पिता?'

'जी।'

'यह अपने माता-पिता को छोड कर आपके साथ कैसे आ गया होगा?'

'इस बार मुझे तीन चार माह वहाँ रहना पड़ा। यह मुन्ना ऐसा हिल गया कि माता-पिता की याद ही नहीं करता। वे तो फ्रीन टिकिट से १०, १२, रोज घूमने चले गये यह उनके साथ न गया, मेरे ही पास रहा और एक रोज भी उनकी याद नहीं की।'

मैंने कहा—'भई प्रेम के तो प्राणी मात्र कायल हैं, क्या बच्चे क्या जवान, क्या बूढ़े; क्या पशु, क्या पक्षी, सभी इसकी महिमा मानते है।'

'बच्चों का प्रेम ही सच्चा प्रेम है और तो सब ठीक ही ठीक।'

'यह तो ठीक है परन्तु और सब को भी करना तो पड़ता है, चाहे वे जिस भी रूप से करें, जैसे भी करें। जन्म के बाद मृत्यु के पहले यदि कोई चीज मनुष्य के साथ होकर चलती है, वह केवल उसका प्रेम ही है। और जिसका प्रेम नष्ट हो जाता उसका संसार ही नष्ट हो जाता है।'

'आजकल तो प्रेम के साथ स्वार्थ का उतना ही बड़ा नाता है जितना आम के छिलके का आम से 'सुर, नर, मुनि, सब की रीति; स्वारथ लागि करहिं सब प्रीती, तुलसीदासजी ने कहा है।'

उन्होंने एक बात कहकर मेरा मुँह बन्द कर दिया और की सारी व्याख्या को आजकल का सहारा लेकर स्वार्थ के ऐसे अंधे कूप में ढकेला कि मुझे फिर विरोध करने का मौका ही न मिला। मेरी पराजय पर वे विजय पाती जाती थीं। मेरी बुद्धि हीनता पर कमी में उनकी बुद्धि शनैः शनैः विकास पाती जाती थी। वे जो कुछ करती थीं सहज ही कह देती थीं जब कि मैं सोच कर कहता था और यह जानकर कहता था कि मुझे अपनी बी० ए० वाली पूँजी की अवश्य ही रक्षा कर लेनी चाहिये किन्तु जाने क्यों......।

❀ ❀ ❀ ❀

## वह प्रभात

सडक की शून्यता शनैः शनैः भंग होती जा रही थी। भगवद् भक्त राम नाम का स्मरण कर निकलने लगे थे। इक्के और ताँगे रात के आलस्य को विताते हुए धीमी-धीमी टापो से नीरवता भंग करने लगे थे। हलवाइयों की भट्टियाँ धुँआँ उगलने लगी थीं। पानवालो के बर्तन उजले होने लगे थे। सडक की बत्तियो ने विश्राम ले लिया था। पक्षी नीडों से भाग निकले थे चहचहाते हुए। पशु बन्धनमुक्त हो चुके थे और अपनी लम्बी रम्हाहट से भगवान की वन्दना करने लगे थे। कही सुदूरपूर्व मुर्गे की बाँग सुनाई देती, कभी मुल्ले की इबादत सुनाई देती थी।

इधर अलसिसा उन्मादिनी-सी उदयाचल पर अपना चीर टटाती हुई चली आ रही थी। अरुण अपने रथ को धीरे-धीरे चलाते हुए आगे बढ रहे थे और वे हमारे साथी रात के तारे धीरे-धीरे विलीन होते जा रहे थे। चन्द्र भी आभाहीन होकर पश्चिम मे उतरने लगा था। पर हमारी बातो का जो विषय था वह चल ही रहा था और वह था प्राचीन भक्तो का प्रेम। मैं देख रहा था कि उनकी पुतलियाँ कभी-कभी पलकों की ओट में लुका छिपी खेलने लगी थीं। मै कोई विशेष बात छेड देता और वे अपने अधरों की भोली मुस्कुराहट मे आँखो की शिकायत छिपा जातीं। कभी हँसकर मुँह के मोती चमका देतीं और कभी बड़ी-बडी आँखों के मीठे सैनो से मेरी बात का समर्थन कर देती जो एक लहर बनकर मेरे मन को थपथपाती हुई मस्तिष्क की स्मृतियों के ऊपर होकर निकल जातीं।

बातो का क्रम भंग करते हुए उन्होंने कहा—'रात सारी ही निकल

गई, किंतु बातें न खुटी न मुँदी नींद ही आई। जाने कब आई ऊब चली गई, रात का ही कुछ पता न चला। कितनी छोटी हो गई रात ही!'

रात की करारी चोटें मेरे दिल में बहुत पहले से थीं ही कि वे तनहाई पाकर कैसे-कैसे जुल्म ढाती हैं। फिर भी मैंने उनकी कार-गुजारियों का बखान न किया केवल इतना ही कहकर रह गया कि— 'यह सब आप ही का पुण्यप्रताप है जो आज की रात साथ में ही लपेटकर प्रभात ले आई है।'

वे व्यंग करने की मनोवृत्तियाँ तो बनाए ही रहती थीं, उसी भाषा में बोलों—'जी हाँ, मेरे कारण ही, वर्ना आपसे तो रात का कोई परिचय ही न होगा।'

मैंने मन के वेग को मन ही में पीकर कहा—'मेरा परिचय तो बहुत ही पुराना है। तभी तो वह बेरोकटोक मुझ पर जुल्म ढाती है मगर आज उसकी गुजर न लगी क्योंकि प्रेमियों की क्षण-क्षण पर टकरा जाने वाली साँसों में उसे दब कर चौपट हो जाने का भय जो रहता है।'

वे, समझी हुई बेसमझी की भाषा में बोलीं—'भगवान जाने आप क्या कह रहे हैं।'

मैंने पिछले प्रसंग को दोहराते हुए प्रश्न किया—'आप क्या कह रही थीं—'मनुष्य से समाज इस तरह रिश्ता तोड़ लेता है जैसे टूटे हुए पत्ते से वृक्ष'।

वे बोलीं—'मैं समझती हूँ आप मुझे लम्बी बात छेड़कर बहलाना चाहते हैं। यह बात उस समय की है थी जब वह विषय चल रहा था—'प्रेमी क्या चाहते हैं और समाज क्या चाहता है? कितनी देर हो गई है अगर कुमार जग गया होगा तो रोता होगा। एक बार तो झूठ बोलकर बहला दिया, बार-बार कैसे बहलाया जायगा इतना

डा बच्चा सब याद रखता है।'

मैंने कहा—'न कहो मरजी आपकी। चलो नीचे चले देखे कुमार साहब क्या कर रहे है ?'

नीचे आकर दरवाजा खोलकर देखते है तो कुमार प्रभात की ीठी नीद निकाल रहा है उसे क्या पता है। कि रात के इन बारह घंटों । मनुष्य क्या–क्या चरित्र कर डालते है। क्या-क्या अनहोनी हो जाती : । सयानी सूरते कैसी–कैसी पागल बन जाती है। विचारक कैसे-कैसे अविचारक हो जाते हैं और पुण्यात्मा भी क्या–क्या पाप कर डालते :—इसलिये ही तो यह रात बेचारी काली पड गई है। परन्तु हमारा रेश्ता आज अन्धकार और कालिमा से चणिक भी न था। हम तो ात्तियों की हिरासत मे थे और तारो का पहरा था। स्वयं चंद्रदेव हमारे यायाधीश थे। थे न ?

मैं फिर अपने पलंग याने उसी खटिया पर बैठ गया और गुजरे सग को पकडते हुए बोला—'समाज की हमेशा से ही दो जीभे हती आई हैं। वह किसी अच्छे काम को बुरा कह सकती है और ूसरी जीभ से उस बुरे को ही फिर अच्छा कहती है और अच्छा कह र भी फिर बुरा कह सकती है। फिर जिस मध्यम वर्ग मे हम अपना ीवन व्यतीत करते है, तीसरे दर्जे के रेल के यात्री। सभ्य और सभ्यता के सम्मिश्रण स्वरूपो मे कुभावनाएँ बडी जल्दी पनपतीं और लती फूलती है। उच्च श्रेणी के व्यक्ति स्वयं के अनुभव, संसार के वेक और वर्तमान के ज्ञान बल से, पाप मयी कल्पनाओं से मुक्त हते है। निम्न श्रेणी के श्रमजीवी मजदूर भी इस व्यर्थ के व्यापार े मुक्त है। तरुण मजदूर के साथ तरुणी मजदूरिन कन्धे से कंधा गाकर काम करती है। वह टोकनी भर भरकर उसके सिर पर रखता । हँसता भी है बोलता भी है, बाते भी वे लोग करते ही है, किन्तु वे

अज्ञानता का इतना अधिक भोलापन अपने साथ रखते हैं कि कु-भावनाएं, कु-चेष्टाएँ और कु-प्रवृत्तियाँ उनके मन में सहज ही पैदा नहीं होतीं। जब भी उनमें कोई मध्यम श्रेणी का व्यक्ति नमूना, पथ-प्रदर्शक, और उद्दीपक बनेगा तभी उनमें उद्दीपन होगा और वे अनुकरण करेंगे, उस मध्यम वर्गीय व्यक्ति का। इसलिये आज के शहरों की अपेक्षा देहातों का चरित्र-बल उत्तम है। जो भी कुछ कु-प्रभाव दृष्टिगोचर होता है यह शहर या शहराती व्यक्तियों की कृपा का प्रतीक है। जो आग शहरों में लगी है—उसकी वे लपटें और वह धुआ है जो वहाँ कहीं-कहीं कालिमा फैलाते हुए कभी-कभी देखने सुनने को मिलता है जहाँ विलासिता के मर्मज्ञ, मनीषी, और क्रीडा-कर्मठ जन हैं, उपभोगों के धुरीण पण्डित इस विज्ञान की खोज में उतरे और डूबे रहते हैं—वहीं तो ये सब चीजें फलती-फूलती हैं।'

वे सरल स्वभाव से बोलीं—'हाँ, हमारी देहातों में तो ऐसी भयंकर बुराइयाँ कम सुनने को मिलती हैं।'

मैंने अपने अनुमान को सही समझने के खयाल से कहा—'क्या आपका भी जन्म किसी देहात का ही है या आप शहरों से देहातों में जाकर रहती हैं?'

वे बोलीं—'जी नहीं, मेरा जन्म ही देहात की निर्मल वायु में हुआ है। भाग्य वश शहर की तरफ जाना पड़ा।'

मैं शीघ्रता में बोला—'बस यही हाल मेरा भी है।'

वे बोलीं—'मेरे पिता कहते हैं यदि दरिद्रता न होती तो देहात स्वर्ग होते।'

वे ठीक ही कहते हैं। दरिद्रता, मूर्खता, और अ-विचारिता न होती तो देहातों के स्वर्ग होने में सन्देह ही क्या है?'

इसी बात के साथ-साथ मैंने कपड़े खोले और धोती ता-

टावेल लेकर नित्य कार्य के लिए तैयार हुआ।

वे बोली—'कुमार जब तक सो रहा है, मैं भी निपट लूँ जिससे आलस्य न घेरे।'

'इससे अच्छी बात और क्या हो सकती है?'

वे उठीं और अपने कपडे सम्हाले और आलमारी की तरफ दृष्टि डालकर विस्मित-सी हुईं, फिर बोली—'ए राम, यह क्या हुआ!'

मैं भी विस्मित होकर बोला—'कहाँ क्या हुआ?'

'आपका दूध तो रखा ही रह गया।'

'होश मे ही कहाँ था जिससे दूध पीने की सुध रहती।'

वे मुस्कराती हुई बोलीं—'पुरुषों को बातें बनानी तो खूब ही अच्छी आती हैं।'

धोती दबाई, लोटा लिया और मेरे साथ नीचे जाने को तैयार हो गईं। अभी थके हुए यात्रियों के कपाट नहीं खुले थे। उसी तरह हम लोग स्नान आदि से लौट कर कमरे मे आए। कुमार महाशय लेटे ही लेटे कमरे मे लम्बी चौडी अँगडाइयाँ ले रहे थे। मेरी आँखो में भी जागरण की खुमारी थी और उनकी आँखे भी तनी-तनी-सी उन्मादिनी सी हो रही थीं। मगर स्नान से शरीर मे चैतन्य और स्फूर्ति थी। जमे हुए केश थोडे अव्यवस्थित होकर उनके सौन्दर्य व सादगी को बढा रहे थे। अब उनके शरीर पर हलके अंगूरी रंग की साटी थी और गहरे कत्थाई रंग का ब्लाउज, जिसमे सफेद रंग की झालर और जालीदार गोट लगी हुई थी। कमरे मे आकर उन्होंने अपने कपडे सुखाए और तब तक मैंने अपने बाल साफ करके कपडे पहने और ला-परवाही से अपने कपडे सुखाकर सब सामान उनके लिए ज्यों का त्यो ही छोड कमरे से बाहर होकर उन्ही स्मृतियो को दोहराता हुआ वाटिका मे चला गया। थोडी देर इधर-उधर घूमता रहा। बडा मोहक और सुहावना प्रभात लग

रहा था। इतने मे ही आँखों को मलता हुआ—कुछ लथर-पथर-सी अवस्था मे बाहर से रामदीन आया। हाथ जोडकर प्रणाम किया। जरा पास आकर बोला—'सरकार स्नान हो गए क्या ?'

'हाँ, रामदीन हम लोग तो स्नान कर चुके हैं। कुमार अभी सो रहा है। तुम थोडी देर बाद जाकर जरा उसे सम्हाल लेना। वह नीचे जायगा। और हम लोग दूध पीना भूल गए है उसे ले जाकर तुम अपनी चाय के काम मे ले लेना।'

रामदीन चला गया और मैं उनके मन की स्वच्छता,माधुरी और विवेक की लहरो मे कोई घण्टे भर तक तैरता रहा,पर पार न पा सका। इस प्रकार वह रात व्यतीत हो गई।



## जीवन नाटक

जब मैं कमरे मे आया तो रामदीन बाहर झाड़ू लगा रहा था। वे कुमार के शरीर को पोंछ रही थीं। उनके चेहरे पर अनुरोध के भाव थे। रामदीन अपनी नेक राय उन्हें दे चुका था और भोला प्राणी बन कर नीचीनिगाह से अपना काम कर रहा था।

वे अभिलषित भाषा मे बोलीं—'यहाँ से गंगाजी दूर है ?'

मैंने वस्तु-स्थिति समझने के खयाल से कहा—'बहुत दूर हैं करीब चार पाँच मील।'

रामदीन तुरन्त ही बोला—'मलकिन ! सरकार आपको चिढा रहे हैं। एक मील भी दूर नहीं हैं।'

मैंने उनसे पूछा—'यह राय रामदीन ने ही दी होगी ?'

वे कुछ सहम सी गईं और रामदीन गहरी चुप्पी साध गया।

मैं बोला—'यदि आपकी इच्छा गंगा-स्नान की ही हो तो चला जाय, इक्के, ताँगे सब मिलते हैं, दूरी का क्या सवाल है।'

वे स-साहस बोलीं—'एक मील ही दूर है तो इक्के ताँगे की क्या जरूरत ? पैदल ही चल सकते है।'

मैंने वहाँ जाने के पूर्व उनसे कुछ नाश्ता करके चलने को कहा परन्तु उन्होंने—'आपको करना हो तो आप कर लीजिये, मैं तो कुछ नहीं करूंगी'—मेरे प्रस्ताव को यों कह कर टाल दिया। कह नहीं सकता इसमें उनके गंगा-स्नान के पूर्व कुछ न खाना, ऐसी धार्मिक भावना भी सम्मिलित हो। क्योंकि स्त्रियों का धर्मशास्त्र पुरुषों से कई गुना बढ़ा चढ़ा है। कुमार के लिये मैंने रामदीन से आधा पाव जलेबी मंगाई जो उसने थोड़ी बहुत ज्यो-त्यो करके खाई। दोनो सकोरे

दूध रामदीन को देकर हम लोग गंगा-स्नान की तैयारी करने लगे। मुसाफिर समुदाय उठ आया था। सूर्य देव का रथ गगनांगण में आगे बढ रहा था। रामदीन को भोजन के सामान की तैयारी रखने का आदेश देकर हम लोग चल दिये। उन्होंने अपनी रेशमी चादर ओढ ली और मैंने कुमार को अपनी उँगली पकडा कर अपने साथ कर लिया।

धर्मशाला के बाहर ज्योंही हम लोग सडक पर आए कि स्थूल शरीर, मोटी खादी का सफेद कुरता, एकलंगी धोती और देशी जूती, सिर पर सफेद गाँधी टोपी और बडी-बडी मूँछे कुछ घूरती सी निगाह वाले एक सज्जन हम लोगों के पास आये। वेष-भूषा मेरी थी तो परिचित, किन्तु कालान्तर ने अपरिचित स्मृतियों में सम्मिलित कर दी थी।'

उन्होंने और गहरी नजरों से मुझे देखा और मैंने भी उनपर अपनी दृष्टि स्थित कर पिछली स्मृतियों को ताजा कर देखा—'ओह, ये तो श्रीराम शर्मा मेरे हिन्दी क्लास के अध्यापक है। इन्ही की कृपा से तो मैं आज कभी-कभी कोई चित्र बना लेता हूँ। आकाशी नक्षत्रों का ज्ञान इन्ही का तो पुण्य है। झखरा और मूसला जडों के ज्ञान कराने वाले यही तो है जो प्रेम से नेचर स्टेडी कराया करते थे। मुझे पहचानने में अधिक दिक्कत न हुई, न विलम्ब ही लगा, क्षण भर मे ही वे दस-बारह वर्ष की पुरानी रेखाएँ स्पष्ट हो गई। मैंने कुमार से हाथ छुडाकर थोडा आगे बढकर उनके चरण छुए। उन्होंने मन्द-मन्द मुस्कराते हुए मेरे दोनो हाथ पकडे और अपनी छाती से लगा लिये।

मन के मारे वात्सल्य भावों के साथ वे बोले—'क्यों अनन्त! तुम यहाँ कैसे?

कुमार मेरे पास ही खड़ा रहा परन्तु वे तुरन्त ही मुँह फेरकर खड़ी हो गई थी।

मैं नीची निगाह किए ही बोला—'यों ही घूमने-फिरने आ गया पण्डितजी।'

वे हँसकर बोले—'फ्रोन टिकिट का फायदा उठाने? लगभग दस बारह वर्ष के बाद मिले हो, मेरी तो पहचान ही में नहीं आए। सोच रहा था मैंने कहीं देखा तो है पर कहाँ, कब, कैसे, यह कुछ सोच ही नहीं पाया।'

मैंने कहा—'गुरुजन अपने विद्यार्थियों को भूल सकते हैं—क्योंकि उनके विद्यार्थी अनेक होते हैं। पर विद्यार्थी अपने गुरुओं को कैसे भूल सकते हैं?'

उनके मुँह पर अवर्णनीय प्रसन्नता छा गई। नेत्र अधिक मोहक हो गए। मैं उन्हें ही देख रहा था।

'क्या बाल-बच्चे भी साथ ही हैं?'

मैं क्या कहता। केवल नीची निगाह कर ली और चुप खड़ा रहा। उन्होंने अपने अनुमान को सही मान लिया और मेरे पास में ही खड़े हुए कुमार को मेरा पुत्र जानकर गोद में लेकर चूम लिया। उनकी ममता और भी स्पष्ट हो गई। अपना आशीर्वादात्मक हाथ माथे पर फेरा और भीतर की जेब से रुपया निकालकर कुमार को देते हुए बोले—'लो बेटे! मीठा लेकर खाना।'

मैंने सविनय कहा—'आपका तो आशीर्वाद सबसे अच्छा प्रसाद है। रुपये का यह क्या करेगा।'

वे हमेशा के आज्ञा-स्वर में बोले—'नहीं, आशीर्वाद के साथ प्रसाद भी चाहिए।' ऐसा कहकर रुपया जेब में डाल दिया और कुमार के गुलाबी कपोलों को हिलाकर कहा—'इस मामले में तुम्हारे बोलने की जरा

भी जरूरत नहीं। बच्चा बड़ा ही सुशील और होनहार है। तुम भी जब छोटे थे तब तुम्हारे चेहरे पर यही शील था। फिर कुमार की मुखातिब होकर बोले—'क्या नाम है बेटे तुम्हारा ?'

कुमार ने सकुचाते हुए अपनी तोतली भाषा मे कहा—'कुमाल।'

सहसा उनकी मुखाकृति विवर्ण हो गई और कहा—'रमेश कहीं भाग गया है। साल भर पूरा भी नहीं हुआ शादी किए को। बहू घर मे है और वह मूर्ख बिना किसी से कुछ कहे-सुने ला-पता है। मैं उसे तलाश करने ही आठ रोज से निकला हूँ, तुम्हे तो कहीं नज़र नहीं आया ?'

उनके वर्णन ने मुझे दुखी कर दिया। वही भाव मेरे थे और मैं बोला—'अभी तक तो कही दिखा नहीं, अब दिखेगा तो ध्यान रखूंगा।'

'देखो न ! कितने लाड-प्यार से रखा। पाला-पोसा, खिलाया-पिलाया; पढाया-लिखाया, विवाह-शादी की; और अब जब कमाने खाने लायक हुआ तो उसने मेरे साथ यह नालायकी का व्यवहार किया। घर मे हीरे-सी बहू रो-रो कर मरी जाती है। वह अलग अन्न पानी छोड़े बैठी है। ऐसी आपत्ति में पड गया हूँ कि कुछ कहते नहीं बनता कहते-कहते पण्डितजी के माथे पर चिन्ता के सल पड गये आँखें डबडबा आईं। वे खिन्न हो बोले—तुम कहाँ ठहरे हो ?'

मैंने धर्मशाला की ओर हाथ करके कहा—'यहीं ठहरा हूँ। अभी एक दो रोज रहने का इरादा है। आपने तो बडे दुःख की बात सुनाई।'

वे बोले—'मैं भी एक मित्र के यहाँ ठहरा हूँ। सोचा है धर्मशाला में कहीं आया हो तो मैनेजर से पता लगा लूँ। फिर मिलूंगा। अभी तुम लोग स्नान करने जा रहे हो, जाओ। बहुत विलम्ब हो गया।' उनकी तरफ देखकर कहा—'बहू बेचारी कब की खडी है।'

कुमार को गोद से उतार दिया। मैंने प्रणाम किया और कुमार से कहा—'कुमार, गुरूजी को प्रणाम करो।' कुमार ने अपने नन्हे-नन्हे हाथ जोडकर प्रणाम कर लिया। वे बोले—'आयुष्मान भव!' हम लोग आगे बढे! वे ज्यादे दूर नहीं थीं। कनखियों से उनने सब देखा, सब सुना; फिर भी मुझसे पूछा—'ये कौन थे आपके?'

मैं भावो को बदलते हुए बोला—'ये मेरे हिन्दी के अध्यापक हैं। हमारी ही तरह एक अभागा लडका था जिसे इन्होंने पाला था। वही लडका भाग गया है।

बेचारे उसीका पता लगाने निकले है, बडे दुखी है।'

वे बडी उत्सुकता से बोलीं—'कुमार से क्या कहते थे?'

'कह रहे थे बच्चा बडा होनहार है। तुम भी बचपन में ऐसे ही सुशील थे।' हम दोनों की आँखें लड गईं और एक अनुपम-सा मानसिक विनोद हो गया। मैंने कहा—'फिर बोले—'जाओ, बहुत विलंब हो गया—वहू बेचारी कब की खडी है।

वे हँसकर बोलीं—'यह क्या तमाशा हैं जिसे देखो वही... ..।'

मैंने हँसते हुए कहा—'यह वह बनाव है जो अपने ही आप विधि-विधान की भांति बन गया है। यहाँ न तो मेरा वस हैं,न आपका। सुनते ही बनता है, कुछ कहते नही बनता। स्पष्टीकरण करता हूँ तो बात बनी बनाई बिगड कर धूल हो जाती है। आप आज्ञा दे तो स्पष्ट कर दिया करूँ।

'हे भगवान!' कहकर वे मुस्कुरा दी—क्या उत्तर देतीं। हम लोग शहर देखते-भालते, कहते-सुनते, धीरे-धीरे कोई एक-पौन घटे में गंगा तट पर पहुँचे।

मैंने उनकी सम्मति ली—'यदि आप चाहे तो जनाना घाट इस

तरफ है, वहाँ स्नान करे, चाहे यहाँ करे, यहाँ भी सब स्त्रियाँ नहा रही है ?'

एक क्षण सोच कर वे बोली—'जनाने घाट पर अक्सर चोरियाँ हुआ करती है।'

'तब चलिये, इस पण्डे के यहाँ कपड़े रख दे और यही नहाएं।'

हम लोग ज्योंही बूढ़े पण्डेकी ओर मुड़े, उसने उठकर स्वागत किया। तखत पर हम लोगो के बैठने के लिये आसन बिछा दिया और बड़ी आवभगत-सी करने लगा। उसके चेहरे पर प्रसन्नता थी। हमारे बैठते ही वह पेशगी आशीर्वाद भी देने लगा—'भगवान, गंगा मैया, आपकी जुगल-जोड़ी अम्मर करे। यह सुनते ही हम दोनो एक दूसरे की तरफ देखकर मुस्कुरा दिये। हमारी मुस्कुराहट पंडाजी की विशेष प्रसन्नता का कारण बन गई मानो अपने अच्छे यजमानो को पाकर वह फूला न समा रहा हो।

'यही सब कपड़े, सामान रख दे सरकार। जोखिम होय तो हम को दे दे। प्रेम से स्नान करे। गंगा मैया पुत्र, धन-धान्य की वृद्धि करें।'

हम लोग उनकी व्यवहार-कुशलता और सरल मनोवृत्ति देखकर सचमुच ही बहुत प्रसन्न थे। सब कपड़े उतार कर वही रख दिये। मनी-बेग पण्डाजी को दे दिया। घाट पर विशेष भीड़-भाड़ न थी। वे कुमार को लेकर मेरे संकेत से स्नान करने चल दी। पंडाजी बटुए से सुरती निकाल कर चूना मिलाने लगे और मैं अन्य पण्डो के यात्रियों के साथ होने वाले दुर्व्यवहारो को भोले भावो से सुनने लगा। मेरा ध्यान कुमार वगैरह की ओर न था। पंडाजी बातो के सिलसिले में अपना नाम 'भीखू' बतला चुके थे और साथ ही अपने ही आप अपने नाम की व्याख्या भी कर चुके थे। बाते करते हुए उनके झुर्रियों से घिरे हुए ढीले लाल-लाल नेत्रों की उछल कूद मे एक अजीब आनन्द

—जो मेरे मन को घेरे हुए था। उनका पोपला मुँह अजीब-अजीब आकृति बना रहा था। थोडी ही देर मे एक अजीव चिल्लाहट के साथ शोर हुआ जो गंगा की तरंगों से टकरा कर सारे तटपर व्याप्त हो गया। एक पैनी, तीखी, तेज आवाज आई 'कुमार! कुमार!! कुमार!!!

मैं उठा और तेजी से जल की तरफ बढ़ा! माली ने कहा—बचवा डूब गया—राम राम।' मैने पूछा—'किसका?'

वे विवर्ण होकर बोली—'कुमार डूब गया अभी-अभी। अरे राम' और एक हृदय-बेधक चीख से चीखउठी। मेरे हृदय पर वज्राघात-सा हुआ। उसी क्षण धोती का कछहा कर मैं उनके बतलाए हुए इंगित पर धड़ाम से कूद पडा। हाथ पैरो से धार की गहरी तलछट मे, कुमार की खोज करने लगा, पता न लगा। मैं साँस लेने ऊपर निकला उनका करुण क्रंदन, चीख-चिल्लाहट चालू ही थे। मानो मेरे मस्तिष्क पर एक साथ अनेको घनो की चोटे लगी। स्त्रियो का बहुत बडा समुदाय उन्हे घेरे खडा था। तुरन्त ही मैंने फिर डुबकी लगाई। धारा के वेग के साथ-साथ आगे तक निकल गया, पर व्यर्थ। फिर साँस लेने निकला। एक दो सज्जन मेरी ही तरह कूद कर खोज कर रहे थे। हे प्रभु यह क्या किया! मेरा अंत.करण कातर होकर प्रभु को पुकार उठा। फिर गोता लगाया। मैं बहाव के साथ थोडा दूर निकल गया था। मेरे पैरो मे कुमार का शरीर टकराया। मैंने सीधी डुबकी लेकर कुमार का हाथ पकडा और उसें ऊपर खीच लाया। कुमार ने बडे जोर से साँस ली। उसका सिर ऊपर रख कर मैं ज्यो-त्यो करके किनारे लगा। मिल गया! मिल गया!! मिल गया!!! की साहसी आवाज घाट भर मे फैल चुकी थी। कुमार अचेत हो गया था परन्तु साँस की गति बंधी हुई थी, भंग न हुई थी। सबके चेहरो पर प्रसन्नता छा गई।

कुछ लोगों ने कहा—इसे उलटा लिटा कर इसके पेट से पानी निकाल दो।' किसी ने कहा 'साँस न लेता हो तो मुँह से मुँह लगा कर साँस दिवाओ।' मैंने देखा वे बुरी तरह सिर पर हाथ लगाकर करुण क्रन्दन कर रही थीं। कुमार के पेट से थोड़ा पानी निकला। लोग कहने लगे इसे भगवान ने ही बचाया। थोड़ी देर और लग जाती तो पाला पोसा बच्चा हाथ से गया था। ऐसी आग में बचना बड़ा मुश्किल है। 'जाको राखे साँइयाँ मार सके ना कोय, अनेक मुँह अनेक बातें होने लगीं। चारों तरफ से मनुष्यों की भीड थी। वे भी आ गई थीं। उन्हें भी स्त्रियाँ अनेक बातें कहकर समझा बुझा रही थीं। थोडी ही देर मे बच्चे ने अपनी बन्द पलकें खोलीं। लोगों ने कहा—'अब कोई फिकर की बात नहीं है, गंगा मैया ने चंगा कर दिया।' यह सुनकर उनका रुदन भी बन्द हुआ। एक साहब ने कहा—'मालूम होता है आपका ही बच्चा है साहब!' पास खड़े हुए पंडाजी ने उत्तर दे दिया—'हाँ, साहब, बाबू साहब का ही बच्चा है। ये तो मेरे पास बैठे थे, माँई स्नान करने पधारी थीं और बच्चा माँई के साथ ही था। महिलाओ ने कहा इनकी गोद भरी रह गई। कुमार के लिये सभी उपस्थित महिलाओं ने जी से शुभकामनाएं की। सामूहिक सहानुभूति दिखलाई। भीड धीरे-धीरे कम होने लगी। कुमार को मैं अपने छाती से चिपकाए हुए था 'उन्होने दोनों हाथ बढाये। मैंने उन्हें दे दिया। चूमा, पुचकारा, शरीर पर हाथ फेरा। फिर आँखो से धार बंध गई। मुझे उनकी यह दशा असह्य हो रही थी।

मैंने कहा—'इसे मुझे दे दो और आप कपडे बदल लो। अब तो जरा भी चिन्ता की जरूरत नहीं है। यह एकदम अच्छा है, कुमार को लेकर ज्योंही मैं मुस्कराया कि वह भी मुस्करा उठा। उनके शरीर से साडी चिपकी हुई थी। शरीर की सारी बनावट और शरीर

ा चम्पई रंग साडी से छन-छन कर झलक रहा था। केशों की लडियाँ नक्र सर्पाकार बिखरी हुई थीं। आँखे लाल और कपोल सुर्ख हो ये थे। और भी कुछ स्त्रियाँ उनके से भेष मे थी—किन्तु मुझे उन्हे खनेका अवकाश ही कहाँ और देखता भी क्यो। वे होली खेली ई गोपियों के बीच मे राधा रानी-सी जो लग रही थीं। मुझे अपने ी आप भय लग रहा था—कही इन्हे डीठ न लग जाए। उन्होने खत के पास बनी हुई आड मे जाकर कपडे बदले। मै कुमार से बाते रने लगा था। वह भले ढंग से मुझसे बाते कर रहा था। किंतु हरे पर कुछ कुम्हलाहट अवश्य थी।

जब वे कपडे बदलकर आई तो कुमार को मैंने उन्हे दे दिया ौर कहा—'अब यह अच्छा है, रोने बिसूरने की जरूरत नही। यही श्वर ने अच्छा किया कि यह शीघ्र ही मिल गया। धार एकदम कट र गहरी हो गई है। यह उसी धार मे बहकर बालू मे गड गया ा। यदि थोडी देर और न मिलता तब तो मुश्किल ही था। स्हे हाथ नही छोडना था। पर तुम्हे भी क्या पता कि आगे धार हरी है। 'पण्डाजी उन्हे और मुझे अनेक तरह अनेक ऐसी घटनाओ ी बात कह-कहकर समझाने लगे। मैने जाकर स्नान किया। गंगाजी मन ही मन प्रार्थना की। बाहर आया तो पण्डाजी मेरी धोती, बेल लेकर खडे थे। उनसे शिष्टाचार के ढंग पर कहा—'आपने क्यो कलीफ की।' मैं शरीर पोछकर धोती पहनने लगा। कुमार को पंडाजी उनकी गोद से ले लिया। 'बहन! आप कपडे निचो ले फिर प्रेम से गामैया का पूजन कर ले।'

उन्होने अपने कपडों के साथ ही मेरी धोती भी उठा ली। धपि मैं यह नही चाहता था फिर भी क्या कह सकता था। कुछ हिलाएँ जो सम्भव है सन्देह में होगी, उन्हे उनके धोती उठाने से

अपने ही आप उत्तर मिल गया। वे कपड़े धो रही थीं। मैं कपड़े … कर बाल साफ कर रहा था और पण्डाजी गोद में कुमार को लिए … पूजन के सामान को सजा रहे थे।

उनके आने पर कहा—'चलिए सरकार! आप भी वहाँ गंगामैया का प्रेम-भक्ति और जोड़े से पूजन कर लें।'

मैंने पण्डाजी से अनुरोध भरे स्वर में कहा—'आप तो … से पूजन करा दीजिए मैं तो यहीं से प्रणाम कर लूँगा।' … उन्होंने आधुनिक शिक्षा को मन ही मन कोसा हो।

जरा हठीले स्वर में कहा—'सरकार आप इतनी दूर से … आए हैं यहाँ के स्नान की यही मरजादा है। गंगामैया ने आपको … आपको सौंप दिया—पूजन कीजिए, पूजन में आलस्य न कीजिए।'

मैं विरोध भी करूँ तो कैसे करूँ, बड़े असमंजस में था। … ही मन भगवान और गंगाजी से प्रार्थना करके क्षमा-याचना की। … किया जाय। मनुष्य कभी-कभी और कुछ चाहता है और मानव … उसकी इच्छा से भिन्न कुछ और ही चाहता है, ईश्वर न जाने … चाहता है। लेकिन जिसे समाज के साथ होकर चलना पड़ता है, … अपनी इच्छा से विरुद्ध समाज की ही इच्छापूर्ति करनी पड़ती है, … मुझे भी करना पड़ा।

वे भी इस बात का विरोध न कर सकीं, कैसे करतीं। एक तो … का स्वभाव, धर्म के मामले में धर्म-भीरु होता ही है, फिर शायद … भी सोचा हो कि जब ये ही विरोध करके सफल न हो सके … कैसे सफल हो सकूँगी। इसलिए वे चुपचाप पण्डाजी की आज्ञा … आकर गंगा के किनारे खड़ी हो गईं।

पण्डाजी ने हम दोनों के हाथ में गन्ध, पुष्प, अक्षत दिए। … दोनों ही मन ही मन कुछ सुना रहे थे। पण्डाजी कुछ संस्कृत में …

हिन्दी मे, कुछ कानपुरी मे श्लोक-उच्चारण कर रहे थे। अपराधी की भाँति मै मौन खडा-खडा उन क्रिया-प्रतिक्रियाओ को देख-सुन रहा था। कुमार बेचारा पानी से डरा हुआ दूर खडा-खडा साक्षी की तरह देख रहा था अपने रस्ते चलते माँ-बाप की लीला को टुकुर-टुकुर। पण्डाजी अपने सकल्प मे क्या कह रहे थे मुझे कुछ याद नहीं, पर मै अपने मानसिक संकल्प मे यही कह रहा था—भगवान ! समाज और सभ्यता के बन्धन मे पडकर मैं जो भी कुछ कर रहा हूँ, इसे आप क्षमा करना। परिस्थिति के अटपट बनाव के साथ मुझे हर्ष न था फिर भी मैं हर्षित ही नजर आ रहा था। मैं देख रहा था कि मेरे जीवन नाटक का दृश्य, समाज की स्टेज पर किस हद तक आ गया है, इस पर मुझे स्वयं ही आश्चर्य था। वे भी अपराधिन की भाँति मेरे पास खडी थी परन्तु सकल्प-विकल्प से वे भी मुक्त न थीं। हम दोनों ही मानो दो अपराधी थे।

पण्डाजी की दक्षिणा अभी शेष थी क्योकि मनीपर्स उन्हीं के पास था। हम लोग जब पण्डाजी के आसन पर आये तब उन्होने आज्ञा दी 'सरकार स्नान करके गंगामैया के तट पर जल-पान करने का बड़ा महातम है—अन्यथा पुण्य अपूर्ण रह जायगा। मैंने कहा—'पुण्य पूरा मिले वही कीजिए।' वे हे हे करके बोले—'सरकार तो सब जानते हैं यह भीखू तो केवल भीख माँगना ही जानता है सरकार !'

मैंने उनसे मनीबेग लेकर सवा रुपया उनकी दक्षिणा भेट की और एक रुपया देकर कहा—'यह जल-दान के लिए।' उन्होने तुरन्त ही धूरन महाजन को गोहराया और एक रुपये का मीठा लाने का वहीं बैठे-बैठे आर्डर दे दिया। वे तब तक अनेक मनोरंजक आशीर्वाद देते रहे।

धूरन मीठा ले आया। भीखू पण्डा सहित हम लोगो ने थोड़ा-थोड़ा जल-पान किया। वे बार-बार कुमार को प्यार करते थे। यदि

माता-पिता को अधिक प्रसन्न रखना है तो सन्तान को अधिक प्यार करना चाहिए, यह वर्त्तमान मानव शास्त्र का सूत्र पण्डाजी को भली-भाँति याद था। उन्हे क्या पता था कि ये माता-पिता कैसे हैं।

उन्होंने सब कपडे टावेल मे बाँध लिए और कुमार को मैंने अपनी गोद मे उठाकर उनके मत की सार्थकता सिद्ध की। आज्ञा ली और चल दिए। उनके हृदय पर शोक सन्ताप की छाया न थी फिर भी हमेशा की भाँति हृदय प्रफुल्लित न था। पण्डाजी अपनी भूली हुई बात को सुधारने की दृष्टि से हमारे पीछे दौडे आये और सरकार! कह हमे सम्बोधित करके रोका। फिर बोले—'अभी तो सरकार दो-चार रोज रहेंगे?'

मैंने उनके मर्म को समझते हुए कहा—'अभी कोई निश्चय तो नहीं है। यदि हम लोग रहे तो निश्चित आएंगे और आपके ही पास स्नान करेंगे।' हे, हे करके हँस दिए और लम्बा आशीर्वाद देते हुए लौट गए। हम आगे बढ़े।

सडक पर आते ही वे बोलीं—'आज तो काला मुँह होते-होते भगवान ने ही बचाया। मैं क्या कहती कि कुमार का क्या हुआ, कहाँ गया। इस प्रकार कहकर वे सिहर उठीं. एक क्षण को उनकी अंतरात्मा काँप उठी। अज्ञात आशंका से उनका मुख विवर्ण हो उठा। एक बार उन्होने अपने हृदय की समस्त ममता को आँखों में बटोरकर कुमार की ओर देखा और फिर एक पराजित सी दृष्टि मुझ पर डाली। मानो वे कह रही हों मैं हा···· ···र चुकी हूँ। नारी कब पुरुष से जीत सकी है, वह तो सदैव से हारती ही आई है।

मैं भी अतीत की घटना का वर्त्तमान में अनुसन्धान कर रहा था। और कल्पना कर रहा था उस भविष्य की जो कुमार के न मिलने

पर हम लोगों पर आक्रमण करता। मेरे शरीर और मन मे थकान थी। और जान पडता था कि उन्हे भी एक क्षण के लिए कल्पना से मुक्त होने का अवकाश न था समय भी लगभग ग्यारह बजे का हो गया था। सूर्यदेव तपकर हमारे अलसाए हुए चेहरों का पराक्रम देख रहे थे, जब कि हम दोनो ही आभाहीन, पराक्रमहीन और सुषमाहीन लग रहे थे।

मैंने जाते हुए एक इक्के को रोका। उसने कहा—'बैठिये बाबू साहब।' वे कुछ बोलकर बैठने को आमादा हो गई, जैसे उनीदे को बिछौना मिल जाय। हम दोनो बच्चे को लेकर बैठ गये। यद्यपि लौटती बार बैंकुठ बाजार को देखते हुए चलने का इरादा था, किन्तु अब चलना ठीक नही लग रहा था। विलम्ब भी हो गया था। गर्मी बढ गई थी 'फिर आएगे,—' यह सोच कर मन ही मन उस विचार को खत्म कर दिया।

इक्के मे कोई बात उल्लेखनीय नही हुई। यही होता रहा कि वे कभी-कभी मीठी चितवन से मुझे देख लेती थी। उनके सदा के स्वभाव पर मानो विवशता अपनी छाप लगाती जाती हो। कभी—कभी कुमार अपने सहज बालचापल्य मे उनकी पैनी उँगलियो को पकड कर किसी ऊँचे मकान या किसी नई चीज के विषय में कोई प्रश्न कर बैठता था। वे जो भी कुछ कहती ममता के कारण कहतीं परन्तु उस उत्तर मे उनका मन साथी नही हो रहा था।

अचानक हमारे इक्के से एक आधुनिक कालीन लड़की की साइकल टकराती—टकराती बची। बस, इक्केवान के स्वभाव की सारी रुक्षता उसपर बरस पडी। मैंने उसके स्वभाव का निखार जानने के लिये फूँक मारते हुए कहा—'आजकल की लडकियो का साइकल से घूमना-फिरना बुरा है।'

वह बोला—'क्या रखा है बाबूजी, ननठन करके आवारा जैसी

बनी घूमती हैं, मौका पड़े तो दाँत ठोकने को कौड़ी भी न निकले।'

'पहले तो यह रिवाज नहीं था।' मैंने कहा।

वह कुढ़कर बोला—'अब तो बाबूजी ससुरी गली-गली मारी फिरत है, जाने का जगजीत लेंहें का।'

मैंने जरा थपथपाते हुए कहा—'साइकल ये चलाएँ, मोटर ये चलाएँ, आदमी के कपड़े ये पहनें, इनकी बड़ी महिमा है।'

वह मन की घृणा उलीचते हुए बोला—'बाबू साहब! मोटर छोड़कर चाहे रेल चला लें मुदा रहिहैं तो आखिर महरिया की महरिया, मनई तो बनबे से रहीं। बड़े-बड़े लोगन ने बिटिया लोगन के पढ़ाय-पढ़ाय कर महरारुन की मरजादा चौपट-पाट कर दई। न ये कबहूँ कलट्टर बनीं, न दरोगा, मुदा मनई लोगन के फुसलावे बदे चाहे ई, फी, पढ जाएँ चाहे बी, फी, मुदा तरवार उठाय के जुद्ध करे के काम की तो रहत नहीं; न इन हूँ की अगनी परीछा पर अब मनई लोगन का बिसवास रहा।'

यह उसके स्वभाव का सत्य स्वरूप था जो घटना की ठोकर से लोहे के गोल छर्रों की भाँति बिखर पड़ा। मेरी दृष्टि बार-बार उन पर जाती। मुझे तो सहज चितवन से ही देखती परन्तु भृकुटी वक्र करके उसे वे इस तरह देखतीं मानो पुण्यात्मा किसी हिंसक को देखता हो। वह बातों के साथ ही साथ घोड़े की पीठ चाबुक से गरम करता जाता था और उसकी इस तेजी ने थोड़े ही समय में हमें धर्मशाला के द्वार पर पहुँचा दिया। पैसे लेकर वह अपने रास्ते लगा, हम अपने।

मैंने उन्हें ऊपर आते ही कह दिया था कि—'अब जल्दी में थालियाँ ही मगा ली जाएँ और कुछ खाकर नींद निकाली जाय।'

उन्हें मेरी यह राय पसन्द न आई। बोलीं—'क्या रामदीन ने व्यवस्था न की होगी? मुझे तो वहाँ का भोजन बिलकुल पसन्द

नही, आपकी आप जानें।'

उनकी आवाज न-साहस थी। इसलिये मैं भी उसी भारी गलडे की तरफ झुक गया। मैंने कहा—'आपके हाथ का भोजन मेरे सौभाग्य का ही पुण्य है। मैंने तो आपके कष्ट का ख्याल करते हुए यह सोचा था।'

वे अपनी चादर उतारते उतारते बोलीं—यदि सामान तैयार होगा तो देर ही क्या लगती है, बनाना ही कितना सा है।'

मैं खडे का खडा ही लौट गया और रामदीन को इधर-उधर देखने लगा। जरा देर मे ही रामदीन हाथ में गिलास लेकर निकला और वह गिलास मैनेजर के हाथ मे देकर मुझे हाथ के संकेत से कहा—'आ रहा हूं।'

मैं अपने कमरे मे लौट आया। इतने ही समय मे उन्होंने एक पीली पुरानी धोती पहन ली जो अपनी तरुणाई मे शायद चन्दई रंग की रही होगी। उसमे भी वे ऐसी सुन्दर लग रही थी मानो सुन्दरता उनके यहां गिरवी रखी हुई हो और कपडा मानो उन्हें लगान चुका रहा हो। मुझे उनमे जो कमी लगती थी वह आभूषणों की लेकिन उनके लिये उन अलंकारो का अभाव सौन्दर्य मे जरा भी बाधक नहीं होता था। पर मै यही सोच सका कि इस जमाने मे जहां अ-सुन्दर से अ-सुन्दर स्त्री के शरीर पर भी चार चीज देखता हूं—वहां इन पर एक भी नही ! मुझे तो यह बात खली उनकी वे जानें।

रामदीन पीछे लगा ही आ रहा था जब कि मैं उनसे कह रहा था कि 'आपको हरएक कपडा खिलता है।'

वे जरा नीचा सिर करके मुस्कुराईं और धीरे से बोलीं—'जैसे आपको खिलता ही न हो ?'

'बात को इस तरह लौटा देना भी चतुराई है,—' जिसे प्रत्येक

नारी जानती है।

मैं हँसा, वे भी हँसी और कुमार भोले भावों से हम लोग के मुँह की ओर देख कर हँस रहा था। उसी क्षण रामदीन भ हँसता हुआ अन्दर घुसा। मानो चतुर्दिक् से हँसी बरस पड़ी हो।

मैंने कहा—'तुझे क्यों हँसी आ रही है?'

वह बोला—'बाबू साहब! मैनेजर साहब ने पानी पिया तो सब रजिस्टर गीला कर दिया; वहाँ सब लोग हँस रहे है।'

'कारण तो तेरा भी ठीक है, भगवान बचाए इस बुढ़ापे से।'

'सरकार सब सौधा-सामान तैयार है?'

तुरन्त ही उसने अपना मुँह इस तरह बना लिया मानों व यान्त्रिकता की पराकाष्ठा कर देना चाहता है। मैंने कहा—'कहो क कहना चाहते हो?'

वह उत्तर न देकर गर्दन नीची करके जमीन कुरेदने लगा मैंने समझा शायद इसे सामान के पैसों की आवश्यकता होगी इसीलिए यह कहने में शर्मिंदा हो रहा है। मैंने एक नोट देकर कहा—'यह लो सामान के पैसे और तुम हमारे साथ ही भोजन कर लेना।'

'दोनों हाथ जोड़ कर बोला—'सरकार मैं यही कहना चाहता था कि आज सरकार के हाथ का थोड़ा परसा····।' पर कह नहीं सका।'

एक क्षण को उसका हृदय आँखों से छलक आया। मैंने कहा—'रामदीन पहले तो चौके की तरफ चलकर सब व्यवस्था इन्हें बतला दो फिर कुमार को ले जाकर किसी डाक्टर से दवा दिलानी है जिससे यह आराम कर ले।'

'काहे सरकार?'

मैंने कहा—'तुम पहले चौके मे चलो, वहीं बतलाऊंगा।' वह अपने साफे साफी आदि को इस तरह सम्हाल कर उठा मानो किसी को पकडने जा रहा हो। मैंने उनसे कहा—'बच्चा थक गया है, थोडा विश्राम कर लेगा तो इसे उस महाप्रसाद के समय आनंद आएगा। आप अकेली रहेंगी बर्ना मैं और रामदीन जाते तो डाक्टर से ठीक तरह कहकर इसे दवा दिला लाते।'

स-साहस वे बोलीं—'आप लोग जाइए; मुझे डर नही लगता। पर जल्दी आ जाना।'

'यो तो कोई बात नहीं है मगर यह धर्मशाला है, अनेक प्रकार के व्यक्ति आते जाते रहते हैं।'

वे बोलीं—'सब अपनी इज्जत सर पर लेकर चलते है। पुरुष भी स्त्रियो को ताड जाते हैं तब ऐसी वैसी बातें करते है और जो कहीं समझने मे भूल करते है तो इज्जत खतरे मे पड जाती है। वे फिर लगा चलती है.... .।'

'वे बहुत अच्छा करती है जो जैसे देव की वैसी ही पूजा कर चलती हैं। आपने देखी ताँगे वाले की शक्ल सूरत और आलोचना कैसी कर रहा था।'

वे बोलीं—'कुछ अतिशयोक्ति जरूर थी पर कही बातें सब खरी-खरी बेमुलाहिज़ा।'

'यही गनीमत थी कि बेमुलाहिजा होकर भी बे लगाम नहीं हुआ। नहीं तो घोड़े के साथी जो ठहरे।' हम दोनों ही हँस लिए।

'अब चलिये गर्मी का समय है, धूप बढ जायेगी तो आपको कष्ट होगा।'

'मैं आपसे एक बात कहना चाहती हूं आप उसे अवश्य मानेंगे!'

मानो वे मुझे आज्ञा दे रही हो। मैंने कहा—'मैं आपकी बात

कब नही मानता हूँ जो आपको जोर देकर कहना पड रहा है।'

'आप मुझे आप न कहा करे। मुझे आपके मुँह से आप सुनन अच्छा नही लगता।' इतना कहकर वे लजा-सी गईं।

'तो क्या कहा करूँ आपको ?'

वे और नीचा सिर कर करके बोली—'मैं नही जानती। यदि आप, आप कहेगे तो मैं नही बोलूँगी।'

मुझे हँसी आ गई। क्यो ? कुछ कह नही सकता।

'मैं भी जो आप कहेगी, वही कहा करूँगा आपको।'

वे मीठी झुँझलाहट से हृदय की प्रीति और वाणी की कठोरत लेकर बोली—'आपकी तो वही आदत है।'

'जो आपको भली भाँति मालूम है।' उनकी ऊपर उठी हुई दृष्टि से मेरी दृष्टि दो हृदयो की भाँति टकरा गई। कुमार कुछ अपने मनसूबे अलग ही बाँध रहा था। उसे हमारी बाते नही जाननी हैं वह तो अबोध जगती का मेम्बर है, स-बोधो की दुनियाँ मे प्रवेश करने का अभी उसे टिकिट नहीं मिला है।

'चलिये अधिक विलम्ब न करिए!'

'मेरा क्या विलम्ब है। आपकी बात तो 'बात बात मे बात, ज्यों कदली के पात मे पात पात मे पात' की तरह बढती ही जाती है।'

कुमार से मैंने कहा—'आओ बच्चू! चले अपनी भोजन शाला! मानो मैं किसी बेतुके कवि की अतुकान्त कविता पढ रहा हूँ। वे और जरा तिरछी सी चितौन से झाँकी, फिर कमरे से बाहर हुईं। धूप पूरी फैल चुकी थी। यदि मुझे कोई स्वर्गीय आत्मा भी आकर उस समय कहती कि भोजन बनाकर हमे कराओ तो मैं हाथ जोड लेता। पर परमात्मा ने स्त्री स्वभाव की रचना जाने किस कोमल चिकनी और संगदिल वाली मिट्टी से की है कि उन्हे अपने इरादे के बाद बडे से

बड़ा कष्ट भी नहीं व्यापता। मैं देख रहा था, उनके चेहरे पर परेशानी के जरा भी सल न थे।

रामदीन चूल्हा जलाकर सामान थालियों में संजोकर बैठा था गाल को हाथ लगाए हुए—मानो वह सोच लेना चाहता है, आज ही इस सारे विश्व की समस्त अटपट बनावट को। मैं उसके पास चुपके से जाकर खड़ा हो गया। वह देखकर निहाल-सा हो गया। उन्होंने एक दृष्टि में ही समझ लिया क्या-क्या अप्रवृत्तियाँ हैं। रामदीन से पहली फरमाइश चाकू की हुई। रामदीन की कमर को चाकू रखने का वैसा ही शौक था जैसा कि मुल्ला लोगों को डाढ़ी रखने का। रामदीन ने कमर से खोलकर चाकू दिया। वे उसे धोकर तरकारी दुरुस्त करने लगी और मैंने रामदीन से कहा—'इसे गोद में ले लो। चलो डाक्टर के यहाँ चलें!'

ऊँचा पेट, चौड़ी नेकटाई, मुँह में चुरट, गम्भीर-सी मुद्रा, हम लोगों को देखकर सजग होते हुए डॉक्टर ने कहा—'आइए! कहिए?'

मैंने अपनी सारी कहानी कह सुनाई जो उन्होंने बड़े ही ध्यान से सुनी। बोले—'कोई बात नहीं है। मैं अभी इसे दवा देता हूँ। यदि आप शीशी लाए हो तो दो दिन के लिए दो खुराक दवा और दे दूँ जो रोज सवेरे दे दिया करें।'

मैंने शीशी के लिए रामदीन को भेजा और मैं डाक्टर साहब से वे बातें सुनने लगा जो भी वे मेरी तारीफ में कह रहे थे फिर भी मेरा चंचल मन इतना बड़ा प्रलोभन छोड़कर उनके पास नहीं रम रहा था। डॉक्टर खूब सहृदय व्यक्ति थे। कुमार उन्हें बड़ा प्यारा बच्चा लगा। जब रामदीन को देर हुई तब उन्होंने ही एक शीशी धोकर दो खुराक दवा भर दी और एक खुराक मीठी दवा कहकर कुमार को दे दी।

रामदीन आ गया। डॉक्टर साहब को शीशी और पैसे देकर

मैंने आज्ञा चाही। डॉक्टर साहब किसी गीत को गुनगुना रहे थे। हाथ मिलाकर मुझे विदा दी, रास्ते में रामदीन को मैंने कुमार के डूबने-मिलने की बात सुनाई सो भी इसलिए कि उसकी आकुलता जरा भी कम न थी। पर मेरा मन फिर भी वहाँ न था



# दोपहरी

कुमार को डाक्टर की राय के अनुसार समझा बुझा कर खटिया पर सुला दिया और रामदीन को उसके पास बैठाकर मैं उनके पास पहुँचा।

वे मेरी ओर स-प्रश्न नेत्रों से देखती हुई बोली—'पिलादी कुमार को दवाई ?

'हाँ, दवा दिलवा दी और भी दो दिन की दो खुराक ले आया। उसे लिटा कर रामदीन को उसके पास बैठा कर आया हूँ।'

मैं जब उनके पास बैठने लगा तब उन्होंने अपने नीचे का पाटा निकालकर मेरी तरफ धीरे से सरका दिया।'

'आप बैठिए ! अरे फिर मैं भूल गया देखिये न आपको आप कह दिया। राम राम, क्या हो रहा है मुझे। वाणी से जैसे संयम उठता जा रहा है शरीर मे सुस्ती होनी चाहिये सो पुलकन है—मानो कुछ मिल-सा गया है।' वे बोली—'आज आपको कुछ क्यो बेटा मिल गया है और इससे बडी चीज क्या मिलती ! यश, कीर्ति, धर्म सभी तो मिला।'

हँसकर मैंने कहा—'बेटा, बेटे वालों का है, परन्तु आज तो वह डाक्टर के रजिस्टर तक मे मेरा ही है। मुझे उसके पिता का नाम ही न मालूम फिर क्या करता आपही बतलाइए ?'

उन्होने फिर जरा मुँह बनाया। मैं समझ गया कि मेरे मुँह से फिर आप निकल गया है।'

'अब आप नाराज न हो, अब मैं आप नहीं कहूँगा इसी कानपुरी भाषा का कोई प्यारा-सा शब्द कहा करूँगा।' और मैं उनके चेहरे पर उतरने वाले भावो को देखने लगा; वे विरोधी भाव ही थे।

वे बोली—'आपके आने के पहले मैं यही सोच रही थी कि आप तैरना न जानते होते तो क्या होता।

'जानता कैसे नही, बचपन मे तालाब मे कूद-कूद कर जो सी रखा है, मुझे डूबने की बात याद आ गई, वही मैं उनसे कह चला।

'बचपन की बात है, एक बार हमारे मास्टर साहब हम स छोटे-छोटे लडको को लेकर तालाब मे तैरना सिखलाने के लिये गये किसी के पास तूंबे, किसी के पास केरोसिन के खाली डिब्बे और कि के पास मोटर का खाली ट्यूब था। हमारे ड्राइंग मास्टर को इन बा का बडा शौक था। मैं हिन्दी की पाँचवी कक्षा का विद्यार्थी था। मे पास कुछ भी नही था। किन्तु मास्टर साहब की कृपा जरूर थी इसलिये वे कभी किसी लडके से कुछ दिलवा देते और कभी स्वय मे लगोट पकड कर घंटो पानी मे खडे-खडे तैरना सिखलाते। इस प्रक सारी गर्मी की छुट्टियो मे उनका यही कार्यक्रम चलता रहता था कुछ दिनो मे हम लोग सीख गये थे और आपस मे होड बांध-बाधक आधे तालाब तक जहाँ शंकरजी का मंदिर था उसकी परिक्रमा ल आते थे, यही मेरा अभ्यास था।

'एक वर्ष के बाद टूर्नामेंट हुआ। हम लोग दौडने और तैर मे अपना नाम लिखा चुके थे। मेरा साथी भी मेरी ही तरह था। ह लोगो की एक टंगी दौड जब होती थी तब मेरे पैर से उसका पैर जगह बाध दिया जाता था और फिर हम दो लड़के तीन पैर से भाग थे। बड़ा मजा आता था।'

मैं देख रहा था वे मेरी बात सुनती हुई अपने कार्य मे ज भी ला परवाह न थी, न मैं ही।

हमारी क्लास में एक रायसाहब का लडका था, जिसका ना सन्तराम था। स्वभाव भी उसका सन्त की तरह था, किन्तु शरी

इतना मोटा था कि चार लडके मिलकर भी उसकी मुटाई का मुकाबला नही कर सकते थे। बे-अकली का धुरन्धर पण्डित, हरएक शौक का अडिग पक्षपाती।

'एक रोज गणित पढाते हुए मास्टर साहब उसे गोबर गणेश कह गए। बस फिर क्या था? सन्तू इसी नाम से लडको के द्वारा पुकारा जाने लगा और वह इस नाम से इतना चिढता था कि पत्थर लेकर मारने दौड पडता था पर मजबूर था मुटाई के कारण। उस समय वह ऐसा लगता था, मानो हाथी का बच्चा लडको के पीछे दौड रहा हो।

'मेरे गॉव से दस-पन्द्रह मील की दूरी पर दो नदियॉ मिलती है। उस संगम पर प्रति वर्ष कात्तिक की पूर्णिमा को मेला लगता है। दूर-दूर के हजारों व्यक्ति उस मेले मे एकत्रित होते है। हम लोग भी गए और भाग्य से गोबरगणेश भी हम लोगो के साथ हो गया। हमारे साथ थे भी वही मास्टर साहब। मैं उसे गणित पढाता था और एवज मे उससे कोरी कापियॉ ले लिया करता था क्योकि मैं कक्षा मे सबसे गरीब और सन्तू महाशय सबसे धनवान थे। इसीलिए उनकी मुझसे अच्छी मैत्री थी।

'कभी-कभी उसका मोटा मन, हर किसी चीज के खाने को मचल जाता था। हर किसी समय कुछ-न-कुछ खेल-खेलने को मचल जाता और जाने किस वख्त किस काम के करने की सनक समा जाती थी। उस समय उसे एक साथी की निहायत जरूरत पड जाती थी। वह यह सोच लेता था कि—कौन ठीक तरह से उसके रूप, बुद्धि और पराक्रम को अधिक-से-अधिक जानता है और कौन बखान कर सकता है उसकी शक्ति और उदारता का!

'उस रोज उसे भाग्य से मैं ही मन भाया। बोला—अन्तू चल अपन नहाएँगे!'

'मैंने कहा—सन्तू ! यह कोई नहाने का समय है ? सब लोग मेला देख रहे हैं और इस समय तेरा मन नदी नहाने को मचल उठा है।

'सन्तू क्या मानने वाले जीव थे ? मुझे पकड़ने को अपने मोटे-मोटे हाथ आगे बढ़ाए। मैं पीछे हट गया तो आपने मुँह फुला लिया और अपनी कंजी आँखों को तरसाता हुआ बोला—नहीं चले तो तों को मेरी कसम है, विद्या की कसम है। जाने क्यों मैं इस कसम का बचपन से ही खूब कायल हूँ। कोई मीठे मन से कसम दे दे तो मैं फिर टाल नहीं सकता। मैंने उसकी बात मान ली। मास्टर साहब टेण्ट में लेटे हुए थे और सब लड़के मेला देखने में लगे हुए थे।

'सन्तू तैरना तो जानता था मगर काया से लाचार था। कमर-कमर पानी में मैं खड़ा-खड़ा मैल छुड़ा रहा था। कभी वह दोनों हाथ पाँवों से पानी उछाल-उछालकर थोड़ी दूर तक तैरता हुआ जाता और लौट आता, कहता—सच कहना अन्तू मैं खूब तैर लेता हूँ न ?

'बहुत ही अच्छे तैर लेते हो आप तो भैया साहब।

'यह सुनकर उसे तो जैसे अब चौगुना बल मिल गया। वह थोड़ा और आगे जाकर पानी की थाह लेने लगा। मनुष्य-मनुष्यों में ही सदा रहता है और अपना जीवन खपा देता है। फिर भी वह मनुष्य की थाह नहीं ले पाता। लेकिन संतू जिस पानी की गहराई से कभी-कभी काम पड़ता रहता है—उसकी ही थाह लेने लगा। खड़े होते ही पैर अपने आप नीचे धँसने लगे। वहाँ थी चोर रेती, जो पैरों को पकड़कर गड़ाती ही जाती है। उसमें किए जाने वाले निकलने के प्रयत्न निष्फल होते हैं। वह और गहराई में उतरता है। उसकी मोटी काया बेकाबू हो गई और स्थूल बुद्धि भी कुण्ठित हो गई। वहाँ पानी गले-गले था और सन्तू भावनावादी कवि की तरह क्षण-प्रति-क्षण धँसा

ही जा रहा था। अन्त मे डूबते-डूबते बोला—अन्तू दौड, मैं डूबा ! थोडे फासले पर लोग नहा रहे थे। कुछ दूरी पर नौकाएँ थी। और मीलों की दूरी का रेतीला मैदान जनरव से गूँज रहा था।

'मैं उसे निकालने लपका। जब तक मैं लम्बे-लम्बे हाथों से उसके पास पहुँचता हूँ, तब तक उसका कोहनी से ऊपर केवल एक हाथ दिखलाई दे रहा था। मैंने उसी हाथ को पकड कर अपनी पूरी ताकत से उसे खींचा तो संतू महाशय ने जरा ऊपर आकर सिर हिलाया और साँस ली। उसी क्षण घबरा कर उसने दोनो हाथो से मेरी कमर पकड ली।

'यद्यपि पानी मे बोझ हलका हो जाता है, किन्तु वह बोझ जब बोझ की तरह हो तब ! उसके कमर पकडते ही मेरी गति रुक गई और मैं भी खडा होकर उसी की तरह बालू मे धँसने लगा। कभी वह आप निकलता और मुझे दबाता, कभी मैं निकलना चाहता और उसे दबाता। हम दोनो ही घबरा चुके थे, दम घुटा जा रहा था। वह मुझे इस प्रकार पकडे हुए था, मानो मेरी मृत्यु के पहले वह मेरा पीछा ही नही छोडेगा।'

मैं सुनाता जा रहा था, उधर उनके मुख पर जिज्ञासा प्रति-क्षण बढ रही थी।

'किनारे पर शोर मच गया। नाव वालो की दृष्टि भी हम लोगो पर पड गई थी। एक नाविक बडी तेजी से हमारे पास आया तो संतू महाशय मेरे कंधों को दबा कर, अपना सारा बोझ मुझ पर डाल कर आप नौका पर चढने का प्रयत्न करने लगे और मुझे ऐसा लगा जैसे मैं पाताल ही मे चला जा रहा हूँ। भगवान ही जानें उस समय मेरे प्राण कहाँ थे ?

'संतू को मल्लाह ने मुश्किल से हाथ पकड कर नाव मे पटका

और मुझे बल्ली से खोजने लगा। जब बल्ली मेरे शरीर को छू
निकली, जाने कैसे मैंने उसे पकड़ लिया। बल्ली के साथ ही
मैं इस तरह ऊपर आया, मानो वृक्ष के साथ जड़ें उखड़ आई
मेरे हाथों में नौका पर चढ़ने की शक्ति न थी। उस बेचारे मल्ल
ने मुझे भी उसी प्रकार ऊपर पटका। मुझे मूर्छा-सी आ गई
जोर-जोर से साँसें ले रहा था। मल्लाह और अन्य व्यक्ति मुझे
दे रहे थे और संतू को झिड़कियाँ मिल रही थीं।

'एक तो बेचारा तुझे निकालने आया और तू इसे ही खम
रहा था? नौका किनारे आई। हम लोग उतारे गए। एक
भीड़ इकट्ठी हो गई। नाविक ने सब कुछ कह सुनाया। अनेक
अनेक बातें हो रही थीं। कोई कह रहा था—धरम करते ही
फूटता है। कोई कहता—भाई जमाना ही ऐसा है—होम करते ह
जलता है। किसीने कहा भाई वाह—'आप डुबन्ते पाँड़े, ले डूब
जिजमान।' ऐसी बातें संतू को सुना-सुना कर कह रहे थे।
संतू को न खुशी थी बच जाने की, न डूब मरने का अफसोस। वह
तो अपने नाम के ही अनुसार सत वृत्ति में लीन था।

'वे आटे की पीढ़ में उँगलियों के निशान बनाती हुई बोलीं—
'मोटे आदमी को शर्म कम ही आती है।'

मैं उनकी इस समीक्षा से हँस दिया और तर्क की दाद
वे भी मुझे हँसाता हुआ देख कर हँस पड़ीं। वे बोलीं—'हमारे
भी एक मोटी लड़की थी और उसका नाम सुखिया था। लच्छन उसके
भी आपके संतू महाशय की ही तरह थे। वह भी हरएक काम
मन से आगे और शरीर से पीछे रहती थी।

'कमबख्त नहाने जाती तो रास्ते में ही बैठ पड़ती। तैरती
कम और हाँफती सबसे ज्यादा'। वे शायद और कुछ कहतीं कि

मेरी उत्सुकता बढ़ गई कि तैरती कन .. ..। मैंने पूछा—'आप भी तैरना जानती है न ?'

'थोड़ा-थोड़ा जानती तो थी परन्तु अब तो सब भूल-भाल गई हूं तैरना तारना।'

मैंने उन्हें छेड़ने की दृष्टि से कहा—'यदि मुझे यह मालूम होता कि आप तैरना जानती है तो नहीं कूदता और जब आप कूद कर तैरती तब आपके साथ ही साथ मैं भी तैरता। मुमकिन है हम दोनों मिलकर कुमार को जल्दी खोज निकालते।'

वे गर्दन हिला कर बोली—'मुझे तो अब बड़ा तैरना आता है न जो कूद कर तैरने लगती और कुमार को ढूंढने में मदद भी कर देती।'

मैंने उन्हें उकसाते हुए कहा—'जो वक्त पर काम न आए वह सीखा हुआ भी किस काम का।'

वे बोली—'स्त्रियों में साहस होता ही नहीं है। सुना नहीं क्या आपने, तांगेवाला क्या कह रहा था ?'

'हां, भाषा तो उसकी कठोर थी पर कह सते की ही रहा था।'

वे उत्सुकता से बोली—'फिर क्या हुआ ?'

फिर यही हुआ कि बड़ी मुश्किल से किनारे से चलकर तम्बू तक पहुंचे। किनारे की भीड़ हमारा स्वागत करती हुई तम्बू तक ले गई। यहां से वहां तक यही बात फैली हुई थी। मास्टर साहब ने जब उन्हें आड़े हाथों लिया तो लोगों ने ही मेरी ओर से सफाई पेश कर दी। वे फिर सन्तू पर टूट पड़े। सन्तू महाशय रोने लगे और अपने राम मन ही मन खैर मना रहे थे जो प्राण बच गए।

घर आने पर जब रायसाहब से मेरी तारीफ करते हुए मास्टर साहब ने यह सब बातें कहीं तो उन्होंने मेरी पीठ ठोंकी और [illegible]त

पचास ब्राह्मण-भोजन का संकल्प किया। सन्तू को सख्त हिदायत
कि 'अब आयन्दा कभी कहीं नहीं जाया करो !'

अब सन्तू अजहद मोटे हो गए है। रायसाहब की मृत्यु
बाद सन्तू ने अपने बडे भाई से पिता की सम्पत्ति का आधा हिस्सा
लिया है, जिससे एक स्टोर खोल लिया है और उसीमे सन्तराम
अजगर की तरह पडे रहते है—मानो—'अजगर करे न चाकरी, पं
करे न काम; दास मलूका यो कहे, सबके दाता राम' वाली कहावत
सत्य करके दिखला देना चाहते है,—सर्वथा नौकरो के आश्रित होक

उस घटना के बाद दूसरी आज की घटना हुई।

वे दाल का बर्तन उतारती हुई बोलीं—'आपको भी पानी
बचना चाहिये। लोग झूठ थोडे ही कहते है कि यह ठंडी आग है
क्षण भर मे मनुष्य के प्राण चले जाते है। बोलिए ! अब तो आ
इस तरह प्राण नही झोका करेंगे ?'

'यों आपके स्नेह का इस बात से सबूत मिलता है, किन्तु ह
तुमको यह नही भूलना चाहिये कि ईश्वर जिसे बचाता है उसे हर त
बचा लेता है और जिसे मारता है उसे हर तरह मार देता है। विधि
विधान हमारी सतर्कता से अलग वस्तु है, जिसे हम कभी नहीं सम
सकते। और यह तो कहो ! जान झोंकने के पूर्व भी कोई कुछ पाता
क्या ? विवेक का यह आदेश नही है, महज़ ममता की बाढ है।' य
कह कर मैंने उनकी कटीली आँखो की ओर देखा वे नीची निगा
करके सकुचा गईं, मानो उनका छिपा हुआ गुप्त मर्म पकडा गया हो
दोनो अधरों पर एकली ही मुसकान खेल रही थी।

मैंने अपने पैर लम्बे करके कहा—'कुछ मुझे भी तो सिखलाते
जाओ ! कैसे-कैसे क्या-क्या करके भोजन बना लिया जाता है।'

वे हँसती हुई बोलीं—'अब आपकी अवस्था हम सीखा

ने बाहर की हो गई।

इस प्रकार कुछ हास्य-विनोद की चर्चाएँ चला करीं। बीच-बीच मे वे मेरी प्रशंसा कर बैठती थी—'आपने एक वंश को डूबते हुए बचा लिया। यदि कुमार न मिलता तो मुझे भी गंगा की ही शरण लेनी पडती, और चारा ही क्या था।'

'आपको डूबने कौन देता ?'

'क्या आप बच्चे की ही तरह मुझे भी निकाल लेते ?'

'क्यो नही। बच्चे से माता का स्थान बडा है। आप अवश्य निकाल ली जातीं प्राणों की बाजी लगा कर भी। और सीखा ही किसलिए है ? रात का मेरा स्वप्न कितना सफल हुआ—मानो दिन मे मिलने वाली सफलता का रात्रि मे मिला हुआ वरदान हो।'

ऐसी ही मीठी-मीठी चर्चाएँ चल रही थी जिन्हे छोड कर उठने को जरा भी तबीयत न हो रही थी। फिर भी समय पर्याप्त हो गया था। कुमार और रामदीन का बार-बार खयाल हो आता था कि वे क्या कर रहे है। मैं मन ही मे इस इरादे को लेकर खड़ा हो गया और उनसे बोला—'मैं उन्हे देख आऊँ वे क्या कर रहे है, कुमार जाग रहा हो तो उसे ले आऊँ।'

'अब भोजन मे देर नहीं है, गरम-गरम भोजन मे जो स्वाद आता है वह ठंडे मे नहीं रहता।'

मैं मन ही मन भगवान से कह रहा था—'आज आपने ही यह सुअवसर दिया है प्रभु ! जो ये मुझे गरम भोजन कराने को लालायित है, वर्ना अपने भाग्य मे तो वही डड़ियल की होटल का शीतल भोजन बदा है।

उनसे कहा—'यह जीवन मे पहली बार गरम भोजन की आशा और यह सरकारी आज्ञा; भला मैं क्यों करूँगा देरी ? मेरी तबियत

तो यहाँ से जाने को भी नहीं हो रही है। चाहता हूँ कि आप
सम्मुख ही बैठा रहूँ—परन्तु बच्चे का मोह मजबूर कर रहा है,
उस गरीब को भी देखना है जिसकी जिज्ञासा आपके हाथ के भोज
मे मेरी लालसा को भी पीछे रख गई।'

'अच्छा है; बेचारा गरीब कहाँ अलग बनाता। दो रोटी
बनाने मे क्या बिगडता है।'

'कुछ भी हो पर है महनती और भला आदमी।'

'उन्होंने आँखो से मेरी बात का समर्थन करके कहा—'है
ईमानदार।'

'आप कैसे जान गई ?'

'पुरुषों की आँखों से ही पता लग जाता है।'

हँसकर मैंने कहा—'फिर बतलाइए, मेरी आँखों से आप
क्या पता लगा ?'

'आप तो कृपा कर जाइए और जल्दी ही उन लोगो को
लिवा लाइए ! यह फिर बतलाऊँगी।'

मैंने देखा कुमार सो रहा है। रामदीन उसके चेहरे पर
मक्खियाँ उडा रहा है। मेरे पहुँचते ही रामदीन ने कहा—'सरका
राजा भैया को तो थोडी देर बाद ही नींद आ गई थी, थक गये हैं

'रामदीन इसे तो सोने दो। तुम बाजार से दही, कु
अचार लेकर सीधे चौके मे आ जाओ, भोजन तैयार हो गया है

रामदीन सिर पर साफा बाँध कर बाजार चला गया और
दरवाजा बन्द करके उनके पास पहुँचा। वे अपने ही आप कुछ
गुना रही थीं। उनका प्रफुल्ल-आनन, सरस माधुरी का निर्झर
हुआ था। रोटियों में घी का मौन लग रहा था। मैं बैठ गया।

हाथ से ही चाँद की तरह गोल-गोल किन्तु कुछ मोटी रोटियाँ बनाने लगीं। सिक जाने पर उनमें खड्डे करके उन्हें घी पिला देती थी और मोड देतीं तो वे जगह-जगह से टूट कर खिल जाती थी।

थोडी देर बाद मुझ से बोली—'आपको ऐसी रोटियाँ पसंद आएंगी क्या ?' बिना बेलन के रोटियाँ आकार-प्रकार में तो ठीक नही बनतीं किंतु स्वाद और मिठास इनसे अधिक होती है।'

मुझे हँसी आ गई। उन्हे मेरे अतीत का क्या पता कि मैंने दो-दो दिन की ठंडी रोटियाँ सहज नमक-मिर्च मे पानी डालकर खाई हैं और कितनी ही बार दो-दो, तीन-तीन, दिन शुद्ध उपवास किया है। आज ये इतनी अच्छी रोटियो के लिये ही पूछ रही हैं 'आपको ऐसी रोटियाँ पसन्द आएंगी क्या ?'

मेरी हँसी का उनपर गलत असर पडा। वे समझी, मेरी किसी भूल के कारण ही इनको हँसी आई है। जीवन मे कितनी ही बार ऐसे प्रसंग आ जाते है जब एक हँसी के दो अर्थ निकलते है।'

वे कुछ व्यग्रता के से भावो को प्रदर्शित करती हुई बोली—'क्यों, क्या बात है ? आपको हँसी कैसे आई ?'

मैंने कहा—'योही, कोई खास बात नही है, आखिर हँसी ही तो है आ गई।'

वे सन्देह मे पड कर सजग नेत्रों से अपने आसपास अपनी भूल और असावधानी को खोजने लगीं। जब भूल थी ही नही तो मिलती क्या ?

नाक भौंह सिकोड कर बोलीं—'बतलाइए न, आपको कसम है।'

बडी आफत थी। महिलाओं के इस अस्त्र से पुरुष अक्सर परास्त हो जाते है। मुझे भी हँसी का कारण बतलाना अनिवार्य हो गया। मैंने वे ही बाते जो आपको बतला चुका हूँ उनके सन्तोष के

लिये उन्हें बतला दीं। वे मेरी थाली तैयार कर रही थीं।

मैंने जान-बूझ कर प्रश्न किया—'यह किसकी थाली तैयार हो रही है ?'

'आपकी।'

यह कहकर मैं जहाँ बैठा हुआ था थाली मेरे सामने सरका दी

'कीजिये भोजन।'

'और आपकी थाली ?'

'वे हैरा दीः ·।'

'क्यों ? रात को तो हम साथ-साथ भोजन कर रहे थे।'

वे मुस्करा कर बोलीं—'राड़े के भाव रात को ही निकल गये अब आप भोजन कीजिए और वह कहाँ है रामदीन ?'

'मैंने उसे अचार, मुरब्बा, दही आदि के लिये भेजा है।'

मैंने रामदीन की नतीक्षा न कर भोजन करना प्रारम्भ क दिया। भोजन सभी अच्छा बना था, किसी चीज में नमक तक की शिकायत न थी। मैं मन ही मन सोच रहा था—इतने अच्छे सु-स्वाद भोजन के साथ तो न अचार की आवश्यकता थी न मुरब्बे की और न दही की। मैंने बेचारे रामदीन को व्यर्थ ही भटकाया। अब यदि इनकी पाक-चातुरी की तारीफ करूंगा तो वे नाराज होंगी, कृत्रि नाराजी से। इसीलिये थोड़ी देर अपने संयम को साधे हुए बैठा रहा।

किन्तु दूसरे ही क्षण बरबस मेरे मुँह से निकल गया—'आप तो पाक शास्त्र में अन्नपूर्णा की तरह प्रवीण हैं। कितनी कम सुविधायें में कितना अच्छा भोजन' मन से कहा—जिन हाथों के दर्शन से मन हरा हो जाता है, उनके निर्मित व्यंजन से क्यों न तन हरा हो जाए।

मैं उन हाथों के सचालन को देख रहा था जो अपनी गुल्म में रोटियों को लज्जित कर रहे थे। कोहनी से कलाई तक की सुन्द

खनक और रुनुन-झुनुन करती हुई सी नीली चूड़ियाँ। लम्बी पैनी और लाल नाखून वाली उँगलियाँ जो आँखों पर चुम्बक-सा छन्कर कर रही थीं ।

वे प्रसन्न थीं और हर बनी हुई रोटी की अपेक्षा बन कर आने वाली रोटी अधिक अच्छी होती थी। मनुष्य-मनुष्य के अन्य उपकारों को भले ही भूल जाय, किंतु किसी की खिलाई हुई रोटियों को नहीं भूलता। मुझे आज भी सौके-बे-सौके उनकी वे रोटियाँ याद आ जाती हैं और अपने ही आप कलेजा ऊपर उठने लगता है।

वे बोलीं—'कुछ मनुष्यों की ऐसी आदत होती है कि चाहे उन्हें चीज भाए या न भाए परन्तु तारीफ तो कर ही डालते हैं।'

मैंने कहा—'मैं उन मनुष्यों में से नहीं हूं। देख नहीं रही हैं आप कि मैं ऐसे ओछे घराने का नहीं हूं।'

वे मेरी बात से विस्मित सी हो गईं।

मैंने कहा—'आप विस्मत न हों। बात ब्राह्मण देवताओं की ही है और उस शूर वीरता की है जिसका लोहा आज सब ब्राह्मण और समस्त हिंदू संस्कृति मानती है। चौबीस बार भगवान परशुराम के द्वारा मिला हुआ राज्य यदि ब्राह्मणों के हाथों से चला गया तो वह केवल ब्राह्मणः मोदक-प्रिय. के ही नाते। ऐसी अनेकों कहानियाँ आज समाज में इस नाम पर प्रचलित हैं।

वे बड़ी उत्सुकता से बोलीं—'सुनाइए !!

'जब ससुर महोदय निमन्त्रण में गये तब सास ने बहू को आज्ञा दी कि 'अब तेरे ससुर आने वाले हैं। उनकी खटिया बिछा देना और पानी का लोटा भर कर सिरहाने रख देना।'

यह सुनते ही बहू रानी ने रोना आरम्भ कर दिया। बहुत रोई, बहुत रोई। सास सन्नाटा-सा खा कर हैरान हो गई। 'क्यों बहू

क्या बात हुई ? मैंने तो तुझे कुछ कहा भी नहीं, ऐसा क्या अपराध हुआ, कुछ बतला तो सही।' रोना सुनकर आसपास की स्त्रियाँ भी इकट्ठी हो गईं। हरएक ने समझाने का प्रयत्न किया और बार-बार पूछा—'बहू कहो तो क्या बात हुई ?'

बड़ी मुश्किल से बहू रानी ने कहा—'मेरे बाप के साथ बड़ा धोखा हो गया। उन्होंने मुझे ओछे घराने में ब्याह दिया। मेरे बाप तो जब भोजन करने जाते थे तो वहीं से खटिया पर पड कर आते थे। वे चल कर कभी नहीं आये, उन्हें तो चार आदमी उठा कर लाते थे, अग्रहया गजब हो गया, अब क्या करूँ !'

स्त्रियों ने कारण जान लिया और बहू को अनेक प्रकार से समझाया। 'बहू ! घबराओ नहीं तुम्हारे ससुर भी जब लड्डू, तस्मई, पुए के निमंत्रण में जाते है तब ये भी खटिया साथ में ले जाते हैं और आते हैं तब उसी तरह आते हैं जैसे तुम्हारे पिता आते हैं। तुम ओछे घराने में नहीं ब्याही गई हो, घबराओ नहीं।'

उनकी हँसी रोके न रुकी। इतनी हँसी कि आँखें और कपोल सेब की तरह सुर्ख हो गये। अपने राम को भी कुछ कम आनन्द नहीं आया। मैंने कहा—'यही मैं अर्ज कर रहा हूँ कि मैं ओछे घराने का नहीं हूँ कि कहीं कोई कोर-कसर बाकी रह जाय और मैं बरदाश्त कर जाऊँ।'

उस समय हमारे चौके में आनन्द बरस रहा था। अभूतपूर्व प्राप्त भोजन में देव दुर्लभ आनंदानुभव करता हुआ मैं अपने कार्य में खूब संलग्न था।

मैंने इतना अधिक भोजन किस मनुहार के कारण किया, स्वाद के कारण किया अथवा बातों में तल्लीन होकर किया, यह कहना कठिन है, परन्तु अधिक भोजन किया यह कहना सरल बात है।

मैं उन्हे मना करता जाता था और वे परोसती ही जाती थी। इस अभागे अनन्त को इतने लाड-प्यार से कब किसने भोजन कराया जो ज्ञात होता। हजार प्रयत्न करके भी मैं थाली खाली न कर सका। मैं उठ खडा हुआ मानो कोई सिपाही रण-क्षेत्र छोड कर भाग खडा हुआ हो। मेरे उठते ही रामदीन सकोरो से लदा-लदाया आ गया।

मैंने कहा—'बडी जल्दी ही आ गये तुम तो रामदीन ?'

अपराधी की सूरत बना कर रामदीन ने कहा—'सरकार मुरब्बे, चटनी वाले की दूकान बन्द थी। वह रोटी खाने चला गया, जब आया तब लेकर आया। मुझे इतनी देर उसी की राह देखते-देखते हो गई।'

'आज तो भाग्य से भोजन ही इतना अच्छा बना है कि इन चीजो की जरूरत नहीं थी, मैंने तुम्हे व्यर्थ ही भेजा।'

वे बोली—'रामदीन तुम भी खा लो काम निमट जाए !'

'आप भोजन कर ले मलकिन, फिर मैं . . ।'

मैं बोला—'कह तो यह भी ठीक रहा है। आप भोजन करके चौका इसके सुपुर्द छोड दीजिए। यह अपने खाया करेगा और बर्तन वाली को बुलाकर चौका ठीक कराता रहेगा।'

रामदीन ने हां, हा, करके मेरी बात का समर्थन किया।

मैंने कहा—'अब आप बैठ जायँ, लाइए मैं परस दूँ !'

वे अपनी शालीन भाषा मे बोलीं—'आप कष्ट न कीजिए मैं परस लूँगी। आप तो कृपा कर खटिया सम्हालें अन्यथा ब्राह्मण परंपरा पर आक्षेप आयेगा।'

रामदीन की उपस्थिति में मुझे शाब्दिक संयम अनिवार्य था। इतने मे ही वे मुस्कुराकर बोलीं—'आप जाइए !'

मैं बिना ही कुछ बोले चल दिया। कमरा खोलकर देखा कुमार

धुत्त होकर नींद निकाल रहा है। मैं भी खटिया पर लेट गया। विचार करने लगा। 'परमात्मा यदि किसी को गृहणी दे तो ऐसी अन्यथा जीवन व्यर्थ है। यह जिस भाग्यवान खुशकिस्मत को मि होंगी वह कितना बड़भागी होगा। जिसका एक साधारण राही, बटोही प्रति इतना अच्छा व्यवहार है उसका अपने ही व्यक्ति के प्रति कि अच्छा होगा! यह हृदय जब अपने आराध्य भर्त्ता के सम्मुख खुलता हो तब क्या वह न्यौछावर न हो जाता होगा। काश ये विवाहित न होतीं, लेकिन अब क्या हो। अब तो इनकी दुनिया निर्मित हो चुकी, जो च हैं। मेरे इनको दृष्टिगोचर-रखकर किये जाने वाले सारे ही मनोरथ हैं। मेरा रंक मन इस महाराज्य का मनोरथ करे तो वह अपने आपके साथ बगावत होगी, और है भी क्या ?"

ऐसे ही आशा की धरती पर निराशा के बीज बोता हुआ थोड़ी देर पड़ा रहा। सच पूछिये तो मन बड़ा चंचल है। यदि क मनुष्य को विश्वास से विमुख रखता है तो यह शरीर के भीतर छुपकर रहने वाला क्रांतिकारी मन ही है जो क्षण-क्षण पर चौकड़ी भरता हु नजर आता है। इस मन ही की यह महिमा थी कि मैं थोड़ी ही दे एक अजीब बेचैनी अनुभव करता हुआ खटिया से उठ खड़ा हुआ। यह सोचकर कि देखूं वे क्या कर रही हैं, यदि खा रही होंगी तो उन्हें कहूँगा—'अब मैं आपको परोसकर खिलाना चाहता हूँ। 'हाँ, से यह भी भूल ही हो गई, मैं व्यर्थ ही चला आया। कदाचित रामदीन को कहीं भेज देता और अपने ही हाथों से इन्हें परोस खिलाता तो कितना अच्छा होता। खैर, 'बीती ताहि बिसार दे आ की सुधि लेहु' सोचकर मैं जब कमरे की सांकल लगा रहा था तब सम्भ्यता ने फिर एक धक्का दिया। अनन्त वे यदि ख्याल करेंगी क्या कहेंगी, 'तुम फिर आ गए।' मेरी सभ्यता के साथ ऐसे भी न

और न जाने किस उद्वेग से मैं चौके की ओर धीरे-धीरे बढ चला।

मैं देखता हूँ कि वे मेरी वाली थाली में ही बैठी हैं। मैंने अनुमान किया—रामदीन ने सौंज धो दी होगी। मेरे पहुंचते ही उन्होंने अपना हाथ बंद कर दिया।

मैंने कहा—'अपना काम चालू रखें, मैं तो केवल परसने ही आया हूं। कुमार सो रहा है। थोडी देर खटिया पर पडा तो विचारों ने घेर लिया, इसीलिए उठ आया हूँ।'

हाथ धोकर मैं उस जगह बैठ गया, जहां मुझे खिलाते समय वे बैठी थी। मानो मेरी बात का उनपर कोई असर ही न हुआ, वे ज्यों की त्यों ही बैठी रही। मैंने एक रोटी उनकी थाली में चुपके से डाल दी और ज्योंही भात की तरफ हाथ बढाया तो उन्होंने हाथ जोडकर कहा—'बस आप तो कृपा ही रखिये।' रामदीन ने परिस्थिति को स्पष्ट करते हुए कहा—'सरकार, आप रहेंगे तो मलकिन भोजन न करेंगी।' यह कहकर जैसे उसने मेरी चेतना की डोर मुझे सौंप दी हो। मुझे ही यह बात क्यों नहीं सूझी कि मैं चला जाऊं। रामदीन को ही यह मौका क्यों दिया? किसने दिया?

शायद वह मेरी लिप्सा थी, मोह था, आकर्षण था जो मुझे खटिया से उठा कर वहां फिर से ले गया। मैं उस समय वही पुरुष था जो नारी जाति के मोह और महान आकर्षण का घायल होता है। वह तरुणाई थी जो इस विषय में मनुष्य को विवेकहीन बना देती है। वह पागल-उन्माद था, जिसमें मान-मर्यादा का भान ही नहीं होता। रामदीन के कहते ही मैं अपनी व्यवहारिक भूल को भली भांति समझ गया। हंसी से दिल की चोट को टालते हुए बोला—'भाई मैं इसी लिए आ गया कि वे कहीं भूखी न रह जाएं।'

रामदीन हँस दिया और मैं चल दिया। मेरी समझ का भी वही परिणाम निकला जो मेरी बेसमझी का निकल सकता था। रामदीन कहता रहा—'सरकार मलकिन लोगन का ऐसा ही स्वभाव होता है।'

मैं आकर फिर अपने विचारो के आरण्य-प्रदेश मे भटकने लगा। स्त्रियो के स्नेह को प्राप्त कर लेना जितना आसान है, उसे सम्हाले रखना उतना ही कठिन भी है। मुझे स्वभाव के अनुसार उनका इतना मर्यादित रहना खल रहा था, किन्तु उनके स्वभाव के साथ मर्यादा उतनी ही भली मालूम हो रही थी जैसी सुन्दर अंगुलियो मे हीरे की अंगूठी। मुझे सीमा हीन न होना चाहिये। इस विषय पर बार वार मेरे विचारो का मंथन हो रहा था।

इतने में ही अपने लाल लाल अधरो मे मंद मुस्कान लपेटे वे पधारी। ललक लोचनो से एक वार कुमार की ओर देखकर मुझसे बोलीं—'मैं तो समझी थी, आप सो गये होगे।'

'नीद बेचारी तो आ जाय परन्तु आप आने दें जब न! जब से आपने मेरे मन में डेरा डाल दिया है, बिलकुल चैन ही नहीं मालूम पड़ती। जाने वह आपसे इस तरह क्यो काँपती है। हाँ, एक उपाय था जिससे नीद आ सकती थी। काश हम दोनों बचपन मे कही साथ साथ रहे और खेले होते तो उन बातो को सुनने में मजा आता और आनन्द से थककर मस्तिष्क जब चूर-चूर हो जाता, विचार अपने ही आप दूर भाग जाते। कितनी ही स्मृतियाँ ताजी हो जातीं। तब कहीं निद्रा रानी पधारतीं।' वे मेरी बात के अर्थ को समझकर बोलीं—'अच्छा हुआ जो ऐसा न हुआ यदि ऐसा होता तो हर्गिज नींद न आती।'

वे नीचे बैठती हुई बोली—'आप कभी-कभी अजीब बहकी बहकी बातें करने लगते हैं।'

मैंने बात पूरी होने के पहले ही कहा—'जो कहीं मेरा जैसा

अकेला और भटका हुआ मन तुम्हारा होता तो पता लगता कि बहकी बातें क्योंकर करने लगता हूँ। जिसे कभी किसी ने भूलकर भी ममता की आँखों से न देखा हो, जिसका कभी कोई न बना हो और न जिसे कभी किसी ने अपना कहकर अपनाया हो, यह उस भग्न हृदय की मर्मान्तक पीडा है जिसे तुम अपनी भाषा मे बहकी बहकी बातें कह कर टाल देना चाहती हो?

जाने कैसे, किस पुण्य के प्रभाव से ये स्वर्गीय घडियाँ मिल गई है जिसे देखकर हृदय सागर मे ज्वार आ रहा है। और मैं जीवन के आदि से उस समय तक के जीवन पर एक दृष्टि डाल गया तो जाने कहाँ से किस कोने से मेरी आँखो मे आँसू झलक आए। उन्होने जरा पास आकर मेरी आँखो की बरौनियाँ गिनते हुए कहा—'यह क्या? आप तो जरा सी बात मे जाने कहाँ से कहाँ पहुँच गए।' ममता के पल्ले से उन्होने मेरी डबराई हुई आँखे पोछीं तो वे और बरस पडीं।

'ऐसी जिन्दगी भी क्या जिन्दगी है जिसका कोई अस्तित्व नही। जिसका कोई आकर्षण नही। कोई आशा नही। कोई प्रोत्सा-हन नही। यदि जीवन उन्नति की दिशा मे बढ़े भी तो कैसे? मुझ जैसे जाने कितने ही अभागे अपने आत्मवेग के साथ-साथ अस्तित्व हीन होकर बह जाते है। जब वे अपने घर के बाहर खड़े होकर हँसते है सूने आकाश के चमकीले सितारो को, इस दुनिया की हरी भरी हरियाली को, तो भूलकर जीवन के राजमार्ग के अनेकानेक पथ बनाकर चलते है। कोई साधु, कोई फकीर, कोई आवारा और कोई खानाबदोश बनकर अपने जीवन का व्यय कर चलते हैं और इसी प्रकार चलते-चलते उनके जीवन का वह पाषाण विराम आ जाता है जहाँ मंजिल शून्य चिन्ह अंकित रहता है।'

मेरी इस बात को सुनकर उनके हृदय की कोमलता जैसे छिप

गई हो। वे बोलीं—'अभाव तो जीवन का सत्य है, इससे तो प्यार करना चाहिए।'

वे अपने इस वाक्य में क्या कह गईं, यह मैं उस समय कुछ न समझ सका था। केवल इतना ही समझ पाया था कि उनकी हमदर्दी और सहानुभूति मेरे जीवन की कठोरता के साथ अनन्य है। हृदय का जैसे बाँध ही टूट गया हो। जाने कितनी ही पीड़ाएँ साथ हृदय से उमड़ आईं और मैं आहत-सा खटिया पर लेट गया।

उन्होंने बार-बार मुझे परितोषा, समझाया, मेरे सिर पर हाथ फेरा, आँसू पोंछे और अन्त में जब मेरी हिचकियाँ बंध गईं तो वे बे-अख्तियार होकर मेरा सहयोग देने लगीं। उनकी आँखों के गरम आँसू मेरे मन की व्यथा पिघला रहे थे। वे धीरे-धीरे कह रही थीं।—'आप पुरुष हैं, आपको इस प्रकार कातर नहीं हो जाना चाहिए। देखिये तो संसार में कौन सुखी है? यह तो दुनिया ही दुखों की दीवारों से घिरी हुई है। परमात्मा ने आपको अच्छी जाति में जन्म दिया, सुन्दर-सी काया दी। विद्या, बुद्धि और सबसे श्रेष्ठ साहस दिया। भला आप क्या नहीं कर सकते। क्या नहीं हो सकता। ऐसी कौन समस्या है जिसके लिये आप दुखी होते हैं।'

आज जब मैं अपने जीवन के उन महत्त्वपूर्ण परिच्छेदों को धीरे-धीरे खोल पाता हूँ तो देखता हूँ, अवनिका के उन परितोषक शब्दों से मुझे जीवन में कितनी चेतना मिली है, सम्बल मिला। वे दरकती ही जा रही थीं।

'प्रत्येक व्यक्ति के साथ एक न एक अभाव रहता ही है। यदि मनुष्य में यह अभाव न रहे तो फिर मनुष्य और देवता में अन्तर क्या रहे। उठो! मुँह हाथ धो लो, यह सायंकाल काम से निबट

ागा, आता ही होगा। यदि वह हम लोगों को इस हालत मे देखेगा ो अच्छा नहीं कहेगा ! आप तो स्वयं ही इतने समझदार है कि पचासों यक्तियो को समझाकर उनके दुःख दूर कर सकते है। उठिये !'

वे इतना कहकर आहिस्ते से मेरा सिर सरका कर उठी। सुराही े गिलास भर कर लाई। मैं फिर भी न उठा तो उन्होंने अपने ही ाथ से मेरे मुँह पर पानी का हाथ फेर कर अपने आँचल से मेरा मुँह ोंछ दिया। अपना मुँह भी पोछा और फिर गिलास रख कर पान उठाए। मुझे दिया। मैंने भी अपने मुँह पर थोडी मुस्कान लाकर पान खाया। वे दरवाजे से जरा बाहर मुँह करके झाँकी और फिर आकर कुमार के पास बैठ गईं। गंभीर, शांत, विचार--निमग्न--सी मैं उसी प्रकार लेटा ही लेटा सो गया। पता नहीं कब रामदीन आया।



# दुनिया की हाट में

मास्टर साहब ने आकर दरवाजा थपथपाया। वे उठीं थे मेरे नाम की आवाज सुनते ही उन्होंने मुझे हिला कर जगा दिया धीरे से बोलीं—'उठिए ! आपको कोई आवाज दे रहे हैं।' नं ने उनकी अलसाई-सी सूरत बना रखी थी। मेरा भी वही हा था। क्षण भर तक हम दोनो एक दूसरे की सूरत देखते रहे। बाह से फिर आवाज आई—'अनंत ! अनंत !!' मैं बोली पहचान गः मास्टर साहब है। उनसे कहा—'मास्टर साहब है।' वे घूंघट छिपकर अपनी जगह बैठ गईं। मैंने कहा—'आता हूँ पण्डितजी।'

उठा। मुँह पोंछा। आँखे साफ की और कपडे सम्हाल हुए ढुलका हुआ दरवाजा खोला, पण्डितजी के चेहरे पर विष के चिन्ह स्पष्ट अंकित थे। वे आकर मेरी खटिया पर बैठ गये व बुरी तरह शिथिल हो गये हो। मुझे भी हाथ पकड कर उसी बैठा लिया। फिर बोले—'अनंत ! देखा उस नालायक को। उस अपना नाम बदल कर दिनेश रख लिया और यहाँ तक कि रजिस मे भी दिनेश ही लिखाया है। उसके साथ एक काली कलूटी औ है, जो कोलाभूतिनी सी मालूम होती है। वह उसी के साथ नी के अठारह नम्बर के कमरे मे ठहरा हुआ है। देखो ! इस देवद की अकल पर पत्थर पडे हे। मैंने उसे कितना समझाया परन्तु उस समझ में कुछ भी नही आ रहा है।'

वे हँसकर बोले—'कहता है, मैं इससे वायदा कर चुका हूँ अब इसे नहीं छोड सकता।'

मैंने पूछा—'यह है कौन ? कहाँ की है ?? किस जाति में

इसे पकड़ लाये हो ???

कहता है—'कोई भी हो, कही की भी हो, किसी भी जाति की हो—प्रेम मे ये बाते बाधक नहीं होतीं।' देखा उस निर्लज्ज का तर्क, जी चाहता है मारे चाटों के मुँह रायता कर दूँ।

मेरा हाथ पकड़ कर कहा—'अनंत ! जरा बाहर आओ ! कुलीन ललनाओ के सामने ऐसी बाते शोभा नहीं देती।'

मै उनके साथ उठ खडा हुआ। वे मुझे नीचे ले गये जहाँ रमेश महाशय दिनेश बनकर ठहरे हुए थे। रमेश मुझे तुरन्त ही पहचान गया। उसके चेहरे पर मगरूरी थी। मुझे हाथ जोडकर नमस्कार करते हुए बोला—'आओ भैया !' मै मास्टर साहब के साथ बिछी हुई दरी पर जाकर बैठ गया उसने एक बार फिर मास्टर साहब की ओर सहमी हुई दृष्टि से देखा।

ले गए जहाँ रमेश महाशय दिनेश बनकर ठहरे हुए थे। रमेश मुझे तुरन्त ही पहचान गया। उसके चेहरे पर मगरूरी थी। मुझे हाथजोड कर नमस्कार करते हुए बोला—'आओ भैया !' मैं मास्टर साहब के साथ बिछी हुई दरी पर जाकर बैठ गया। उसने एकबार फिर मास्टर साहब की ओर सहमी हुई दृष्टि से देखा।

एक तरफ एक पतली, ऊँची, काली, औरत खडी थी जो अपनी सफेद आँखो मे चाँचल्य और चेहरे पर रोप चढाकर भुजंगिनी-सी बनी हुई थी। उसके बालो की चमकती हुई पट्टियाँ कपाल और कानों को ढके हुए थीं। कानों मे नकली सोने के बडे-बडे लटकते हुए एयरिंग थे और आँखो मे काजल। गले मे जेवर। हाथो मे जेवर। कमर में जेवर और पैरो मे जेवर। काले चेहरे पर तेल चमक रहा था। बैंगनी रंग की बीता भर चौडी किनारी की साडी को देखकर मुझे पण्डित जी के कहे हुए शब्द बार-बार याद आ रहे थे। दूसरी

और चौबीस, पच्चीस वर्ष का सुन्दर गौरवर्ण ऊँचा-पूरा रमेश चुपचाप बैठा था।

सच तो यह है कि रमेश जैसे व्यक्ति को पाकर उसे निहाल हो जाना चाहिए था। पर जो रमेश की आँखों से पता लगता था वह, यह था कि—रमेश बाबू उसे पाकर निहाल हो गए थे—यही अनुमान होता था।

इस पागल मन की भी रिझवार बुरी होती है। पता नहीं तरुणाई मे कब, कहाँ, किस पर यह भला आदमी बेशर्म होकर रीझ जाए। उस समय यह न तो आगे पीछे का खयाल करता है और न अपने ही आपको संभालता है। परमात्मा की चित्रकारी की यह विलक्षणता है कि 'हरएक मनुष्य अपने आपको सुन्दर ही समझता है और इसीलिए वह शीशे मे अपनी सूरत बिना देखे ही चल पड़ता है दुनिया की हाट मे मोहब्बत का सौदा खरीदने के निमित्त। पण्डितजी ने मुझे उसकाते हुए कहा—'देखा अनन्त, तुमने इस भले आदमी का दृश्य, क्या इसे यह लाजिम था? यदि इसे यही करना था तो क्यो इसने उस बेचारी ब्राह्मण की लडकी की हत्या की? यह भूत इसे उस समय ही क्यो सवार नहीं हुआ? नालायक कहता है मैंने वायदा किया है। जब तू अपने वायदे को समझता है तब कल की की हुई ईश्वर को साक्षी करके उस प्रतिज्ञा को क्यो भूल रहा है जो सैकड़ों व्यक्तियो के सामने उस अबोध बालिका का हाथ पकड़कर की थी? अब बतला! उस अबला का क्या होगा?'

रमेश ने ढिठाई करते हुए कहा—'मैं क्या जानूँ क्या होगा?'

'सुन रहे हो अनन्त इसका उत्तर?' विनम्र होकर कहा—'देवी! यह विवाहित लड़का है, आप इसे ईश्वर के नाम पर उस अबला की दया खाकर छोड़ दे; मैं तुम्हारा आभार मानूँगा।'

देवीजी अपनी बडी-बडी आँखो से रोष उगलती हुई बोलीं—'आप लोगो को मुझसे बाते करने का कोई हक नही है। मैं इनके गले नहीं पडी हूँ। ये मेरे गले पडे है। पूछ लो इनसे ही, ये आपके सामने खडे है। आप एक स्त्री को अबला कहकर उसकी रक्षा करना चाहते है; और मैं क्या अबला नही हूँ? जब मैं इन्हे अपनी लाख रुपये की इज्जत दे चुकी तब मेरा क्या होगा? मैं अब किसके गले लगूँगी? यह बात तो इनके सोचने की थी कि मैं विवाहित हूँ या अविवाहित, क्यो किसी औरत की इज्जत लूँ! क्यो किसी को बेघरबार की बनाऊँ! अब मैं इनका पल्ला छोडकर और किसका पल्ला पकडूँ? आपही बतलाइए न।'

उसकी आँखें, नाक, मुँह सब एक साथ मशीन के कलपुर्जों की तरह काम कर रहे थे। मालूम होता था रमेश उसके जंगे-जौहर से भली प्रकार परिचित था। जब तक देवीजी कहती रहीं वह नीची निगाह किए सब सुनता रहा। फिर उत्तेजित स्वर में बोला—'आप इनसे कुछ न कहे जो कुछ कहना हो मुझे कहे।'

मास्टर साहब ने अपने शिक्षकी स्वभाव के अनुसार फिर कहना शुरू किया—'रमेश! मैं जो कुछ कहता हूँ तेरे ही कल्याण के लिए कहता हूँ।'

श्रीमती बीच ही मे बोल उठी—'आप होते कौन है इनका कलयान करने वाले? जरा कलयान करके तो देखो! हाथ तो लगा दो!! इसीलिए संग मे इन बाबूजी को मददगार बनाकर लाये होओगे कि चल कर दोनो कलयान करेगे। खून छिडक दूँगी। मुझे ऐसी वैसी औरत मत समझ लेना। मैं तो बोलती नही हूँ। चलो जाने दो भाई कौन मुँह लगे। जो मैं कलयान करने लगूँगी तो भागते ही नजर आओगे। मै नहीं समझती, बडे लाट साहब होओगे तो अपने घर के होओगे।'

रमेश का हाथ पकड कर पीछे खींचा और आप सामने आकर बैठ गई। फिर रोष को दूना करके बोली—'अब करो मेरा कलयान, कैसे करते हो। जब मेरी जान निकल जायगी तब इनको हाथ लगाने दूँगी।'

आँखें मटकाकर और हाथों को आगे बढाकर—'आए जी आए बडे कलयान करने वाले। किसी का आज तक किया भी था कलयान जो अब इनका ही कर देंगे। मुझे बेहूदी रॉंड मत समझ लेना। अभी तक इतने बरस कुछ ऐसे ही नहीं गमाए हैं, तीन सो छप्पन देखे हैं आप जैसे आदमी।'

मास्टर साहब अपनी इज्जत को सम्हाले चुप रहे और मैं भी वीभत्स नाटक को देख रहा था। फिर धीरे से जरा हिम्मत करके बोले—'क्यों नहीं, जरूर देखे होंगे देवी।'

भभक कर बोली—'आप मेरे कौन होते हैं जो देवी एवीं कहते हैं? मैंने कितने आदमियों की भक्क ले ली, कितनों से खप्पर भर लिया, जो लगे देवी कहने? वाह जी वाह, बडे आए देवी कहने वाले, देवी होगी तुम्हारे घर की।'

मैंने बढती हुई बात को रोकने के इरादे से रमेश की ओर देखकर कहा—'रमेश! यह क्या नाटक है? ये तो इन बातों को नहीं समझतीं, तुम तो समझते हो। मालूम होता है, तुम्हारे मौन रहने का ही यह अर्थ निकल रहा है।'

वह मेरी ओर भूखी बाघन की तरह टूट पडी—'बाबूजी! मैं नाचने वाली रॉंड नहीं हूँ जो नाटक कर रही हूँ। आप क्या समझते हैं? मैं सब कुछ समझती हूँ आदमियों के फरेबों को।'

रमेश ने गर्दन घुमा कर उसकी ओर देखा और धीरे से बोला—'तुम चुप रहो न! इन बातों को तुम नहीं समझतीं!'

ज्वाला की लपटें रमेश पर छा गईं।

'वाहजी वाह ! अब तुम भी बोलने लगे। मैं क्या दूध पीती बच्ची हूँ जो समझ नहीं रही हूँ। मैं ऐसी मूरख हो गई जो कुछ भी नहीं समझती ? सब कुछ आप ही समझते है ? मैं दोगली नहीं हूँ जो एक कहकर दो कहूँ, दो बाप का होये सो दो बातें करे।'

मास्टर साहब को थोड़ी हँसी आ गई।

'यह ही साला दो बाप का है, तुम क्यों होओ !'

'इनको, दो छोड़कर दस बाप का बनाओ। अगर मुझसे जो कहीं लाम-काम जबान निकाली है तो फिर आपही जानना !

मैंने मास्टर साहब से कहा—'अब इस बात को आगे न बढ़ाइए। ये जानें और इनकी बात जाने। इस जैसे आदमी को पाकर ये भी क्या सुखी होगी ? दूर के ही ढोल सुहावने मालूम होते है।'

मेरी बात का उत्तर देती हुई वह बोली—'ये मतरुमाऊ होंगे तो मैं तो नहीं हूँ। कहीं भी चार रुपये की पान की दूकान करके पेट तो भर ही दूँगी। कौन हमारे साथ बड़ी गिरहस्ती है, दो पेट का भरना ही क्या। न मिलेगी गेहूँ की, ज्वार की तो मिलेगी। साग रोटी न सही, चटनी रोटी तो मिलेगी। आप समझे होंगे ऐसा कहने से यह पीछा छोड़ देगी।'

मैंने कहा—'न छोड़ो इसका पीछा, हर्गिज न छोड़ो। मैंने रमेश से अंग्रेजी मे कहा—'तुम अपने जीवन का आदि अन्त सोचो और इस चण्डिका से किसी तरह अपना पीछा छुड़ा कर घर जाओ। ऐसी क्या बेवकूफी मे फँसे हो ? हम पण्डितजी को घर भेज देते हैं,

मेरे कहने की ही देर थी कि वह रमेश के पीछे पड़ गई—'बतला तो दो ये रंगरेजी मे क्या कहते हैं। मेरे आदमी को बहकाते है रे मेरे बाप ! अरे बताओ तो मैं अभी इनके दाँत खट्टे कर देती हूँ।'

मैं और पण्डितजी उठ कर चल दिये। रास्ते में मैंने पण्डित जी से कहा—'आप इसकी जरा भी चिन्ता न करिये, घर जाइए। यह हजरत तंग आकर खुद ही भाग पहुँचेंगे, न मालूम यह चुड़ैल इसे कहाँ से मिल गई।'

हम दोनों कमरे में आये। वे बोले—'फिर मैं जाऊं न?'

'जी हाँ आप जाइए। यह तो अपने ही आप रास्ते पर आ जाएँगे। बडी खूं-ख्वार औरत मालूम होती है। ऐसी बेहूदा औरतों से जान बचाना मुश्किल है।

आप मेरी बात को याद रखिए यदि यह थोड़े ही दिन में परांगमुख होकर न भाग जाए तो आप मुझ से कहियेगा। अभी तो वह एक दो रोज तक 'रगरेजी में क्या कहा', इस बात पर ही उसके प्राण खाएगी।'

मैंने देर से अपनी रुकी हुई हँसी को अवकाश देने के लिए पण्डितजी को कल्याण और देवी शब्द के अर्थ का स्मरण दिलाया। वे भी बहुत हँसे और मैं भी हँस-हँस कर लोट-पोट हो गया।

थोड़ी देर तक ऐसी ही चर्चा चलती रही। फिर बोले—'अनंत! मैं आज ही रात की गाड़ी से चला जाता हूं। कह दूंगा मिल गया। उसने नौकरी कर ली है, छुट्टी मिलेगी तब आ जाएगा।'

मैंने हँसते हुए कहा—'जी हाँ, यही कहना बहतर है। सच भी है और झूँठ भी.... .।'

मैं अपनी बात पूरी कह भी न पाया था कि वे बोले—'अनंत! जवानी एक तूफान है। जीवन सरिता का वेग है। उन्मत्त हवा है। इसमें कुछ वृक्ष तो हिल डुल कर रह जाते हैं। कुछ झुक कर आड़े-तिरछे हो जाते हैं। और कुछ जो कच्चे हैं टूट जाते हैं। कुछ ऐसी कमजोर जड़ों के होते हैं जो समूल उखड कर गिर जाते हैं। इस

अवस्था के तूफान को जब्त कर जाना बड़ा ही मुश्किल है।

'अब एक तुम्हारी जिन्दगी है कि बाल-बच्चों के साथ आये हो, कितना अच्छा लगता है, और एक यह नालायक है जो इस तरह पराये दरिद्र से अपना घर भर रहा है। यदि यह भी बहू के साथ आता तो कितना अच्छा लगता? मुझे इस कमीने की चिन्ता नही है। मुझे तो दुःख उस लड़की का है कि जिसके बाप ने मेरे कहते ही अपनी रानी सी लड़की इसके साथ कर दी। कल को कोई होनी अनहोनी हो जाए, तब मैं उस ब्राह्मण को क्या कहूंगा और वह लड़की जिन्दगी भर मुझे क्या-क्या बद्दुआएँ देगी!'

मैंने धैर्य बंधाते हुए कहा—'आप उस गई बात की चिन्ता न कीजिये। जो होना था, होगया। अब इस समय वह नही मानेगा। जब वह अपनी ही ठोकर से अपने दाँत तोड़ लेगा तब अपने ही आप मान जायगा। आप तो निश्चित होकर जाइये। मेरे अनुमान से इन शर्तं पर उनकी नहीं पटेगी। वह औरत काफी चलता पुर्जा और मूर्खा है। इसे एक न एक दिन उसका साथ छोड़ना ही पड़ेगा।'

'ठीक है। मै चलता हूँ, अनंत!'

मैंने प्रणाम किया और वे मुझे आशीर्वाद देते हुए चल दिये।

मास्टर साहब के जाते ही उन्होने उत्सुकता, से पूछा—'यह क्या बात है, मेरी समझ मे नहीं आई।'

'बात यह है कि ..।' मैंने देवोजी और रमेश का पूरा सम्वाद उन्हें सुना दिया। इसके बाद रमेश की भूत कालीन गाथा सुनाने लगा। रमेश का जन्म एक देहात मे गरीब ब्राह्मण के घर हुआ। चौथी अपने गाँव मे ही पास करके कस्बा बस्ती के मिडिल स्कूल में पढ़ने आया तब मेरी इससे पहचान हुई।

वर्षा के दिन थे। एक रोज आसमानी तूफान उमड़ा। इन्द्र

दैव की दृष्टि वक्र हो गई। बडी–बडी बूंदों की वर्षा हुई और चौबीस घण्टे तक पानी ने आँख न खोली। रमेश का गांव दुर्भाग्य से नदी के ही किनारे था। नदी मे बडे जोर की बाढ़ आई किनारे के अनेक गांव बह गये। उसी रात्रि मे अभागे रमेश का गांव, घर, परिवार सब कुछ बह गया। ओफ ओ! कैसा भयानक दृश्य था वह। लोग वृक्षो की डालियो पर टंगे थे, बडे–बडे मकान ढह जाते और उनकी लकडियॉ तिनकों की तरह बह जातीं। कोई किसी की रक्षा न करता। सारा ही गांव जलमग्न हो रहा था। केवल वृक्षो का ऊपरी भाग दिखलाई देता था। कुछ घण्टों मे ही अनेको गांवों का सर्वनाश हो गया।

'तब इसका कोई रक्षक और पोषक न रहा। और भी कुछ लडके इसके ही समान होगये थे। मैं भी इसका प्रतीक हूँ। उस बस्ती के भद्र पुरुषो ने अनाथ लडको की रक्षा और लालन–पालन का इन्तजाम किया। इन पण्डितजी के कोई सन्तान न थी। इसलिये इन्होने इस लडके को अपने पास रखकर लालन-पालन किया। बडा किया और पेट मे गांठ लगाकर इसे पढाया-लिखाया, शादी की और आज इसकी यह हालत है!'

वे बडी शालीनता से बोलीं—'कोई चाहे कुछ भी करे आखिर पराए तो पराए ही होते हैं, कभी अपने नहीं होते। पर लोगो की हवस होती है कि वे पराए धन को अपना मानकर सुखी हो जाना चाहते हैं।'

मैंने घडी मे देखा तो साढ़े पॉच बजे थे। मुझे खयाल हुआ कि रमेश की प्रेमिका के पास कितना जेवर है। यदि मेरा पाकिट मेरा साथ देता तो मैं भी इनका वह अलंकृत स्वरूप देखता। अधिक लोगों का मत है कि जेवरसे स्त्रियां अधिक सुन्दर मालूम होती हैं। मैंने मुँह हाथ

धोकर कपडे पहने और यह सोचकर कि जिन व्यापारियों से मेरी दूकान का सम्बन्ध है उनसे रुपया कर्ज लेकर इनके लिये जितने हो सकें जेवर खरीद लाऊँ।

इसी संकल्प के साथ मैंने उनसे कहा—'आप थोड़ी देर बाद कुमार को जगा देना और रामदीन से दूध मँगवाकर पिला देना। कुछ फल भी मँगवा देना। मैं शहर मे जा रहा हूँ, घँटे डेढ घण्टे मे लौट कर आऊँगा।'

'घडी के हिसाब का डेढ़ घण्टा या अन्दाज का?'

'क्यो अकेले डर लगता है?'

'नहीं वैसी कोई बात नही, यूँ ही पूछ लिया'—वे बोली।

'तो घड़ी का ही समय मैं बता रहा हूँ, अन्दाज का नहीं।'

'तब जाइए! आप कुछ भोजन करेंगे न?'

'जी नही, पहले ही इतना खिलाया है कि हजम करना मुश्किल हो गया है। मैं तो सिर्फ दूध पिऊँगा और आपके लिये जो कहिए मँगा लिया जायगा।'

'मुझे भी कुछ नहीं खाना है। आपके लिए सोच रही थी कि कहे तो कुछ बना रखूँ।'

'तृप्ति खाने मे नहीं है, खिलाने वाले की आत्म-प्रीति से है।'

वे हँसकर बोलीं—'फिर लगे चने के झाड पर चढ़ाने। क्योंकि कौड़ो को सेरो की मार मारते हो,मेरे पूरे हुए चौक पर चौका लगा देना तो आपके बाँए हाथ का खेल है।'

वे हँस दीं और मैं कोट के पाकिट मे मनीबेग को टटोलता हुआ कमरे से बाहर हो गया। रामदीन नीचे बेंच पर बैठा हुआ था। खड़ा होकर बोला—'मालिक घूमने जा रहे हैं?'

'हाँ मैं बाहर जा रहा हूँ। तुम थोड़ी देर बाद ऊपर जाना और

वे कुछ सामान मँगाएँ तो ला देना।'

उसने स्वीकारात्मक गर्दन हिला दी। सड़क पर चलते-चल मैं रमेश के जीवन की समीक्षा करता जाता था। इसी धुन में काफी दू निकल गया। यद्यपि मेरे साथ भी कुछ ऐसी समस्या थी, परन्तु मनु स्वभाव पराई समीक्षा का सदा से ही हिमायती रहता आया है। स तो यह है कि रमेश के जीवन की घृणित अवस्था ने मेरे सम्मुख अप आपके लिए आदर्शता का मार्ग सुझाया और मैं हर तरह सोचने लग कि मानवी निर्बलता से मुझे बच जाना चाहिये। किन्तु बचूँगा कै इतने क्षुधित मन को लेकर, यह मेरी आत्मा के संकल्प का साथ कै देगी? और मुझे अपने मन की वह बात याद आ गई जिसके कार मेरा स्वाभाविक आकर्षण उनके प्रति हुआ था। मैं शरीर और मन वे पवित्रता के साथ ही जीवन मे इनके स्नेह का अधिकारी होकर र सकता हूँ और उस अवस्था मे ही ये सुभद्रा बनी रह सकती हैं। उस और इनमें अद्भुत समानता है। यदि वह जीवित रहती तो अधि कारिणी हो सकती थी, क्योंकि वह अविवाहित थी। परन्तु ये पराई वस्तु कभी अपनी नहीं होती; फिर भी यह जो जीवन-नाटक रहा है इोने उा स्मृति दृढ होती जाती है। इन्हीं विचारों में मैं अधिक दूर पहुँच गया तब कहीं मेरी चेतना जागी। मैं आया किन लिए हूँ और जा कहाँ रहा हूँ!'

हां, मुझे जेवर ले जाना है? बार-बार यह प्रश्न मेरे मन गूँजने लगा। यदि आज मैं दरिद्र न होता तो मैं इतने बड़े उपकारी औ स्नेही के लिए क्या न करता। किसी सम्पन्न व्यक्ति के लिए यह प्र कितना सम्भव है। इस इतने बड़े विश्व में सम्पन्न व्यक्ति ऐसे अवसर पर क्या न करते होंगे। मैं सोच रहा था,-दरिद्रता और उपभोगों में कितनी बड़ी दुश्मनी है। इसीलिए निर्धन अपनी हसरतों को दरिद्रता

की कब्र में रोज-रोज दफनाता रहता है और सम्पन्न अपनी हसरतों में डूबकर स्वयं हसरत बन जाता है।

अब मुझे रुपया कौन देगा? किससे कहूँगा और क्या कहूँगा? यदि किसी ने दे भी दिया तो परिणाम क्या होगा? तब आज का आनन्द-आनन्द न रहकर क्षोभ और सन्ताप बन जायगा जो मेरे जैसे व्यक्ति के लिये सबसे बड़ी आत्म-ग्लानि और आत्म-परिताप का विषय होगा। मैं थक कर एक चौराहे के बीच बने हुए तिकोन पर बैठ गया और सुलझाने लगा अपनी ही पैदा की हुई परिस्थिति को जो उलझन की तरह उलझकर रह गई थी।

थोड़ी ही देर बाद सूझ आई। मानो किसी देव ने मुझे उलझन से बचने के लिये अपनी आकाशवाणी की हो। मैं उछल उठा मानों अपनी सूझ पर आपही फिदा हो गया हूँ। मैं तेजी से फूल बाजार की ओर बढ चला। उससे मुझे क्या-क्या कहना है? वह क्या-क्या बना सकेगा? पवित्र-प्रणय का अछूता उपहार कौन बना सकेगा? कौन मेरे जीवन की अनुपम, अलौकिक और अवर्णनीय स्मृति को सजाने का श्रेय ले सकेगा? मैंने सोचा मेरे संकल्प की इससे अधिक सफल, सिद्ध और सांगोपांग पूर्त्ति और क्या हो सकती है? मेरी सूझ से मुझे वही आनन्द आ रहा था जो जन्म जात दरिद्री को सहसा प्राप्त धन राशि से आ सकता है। मैं तेजी से बढ़ता हुआ पहुँचा।

कानपुर की रौनक और चहल-पहल में तो कोई सन्देह कर ही नहीं सकता। यदि सन्देह कर सकते हैं तो इसीमें कि मुझे वह आकर्षित क्यों नहीं कर सकी। लेकिन मैं यह कहूँगा कि मैं जिन विचारों में था उनमें वे चहल-पहल मचाने वाले न थे। उन दूकानों में से सबसे अच्छी और बड़ी दूकान का चुनाव किया। फिर उस जल्दी जल्दी कलियों के बेधने वाले व्यक्ति से बोला—'आप माला, हार, गजरा और वनमाला

ही बना सकते हैं या और कुछ भी बनाना जानते हैं?'

वह मेरे अटपटे से प्रश्न से विस्मित-सा होकर बोला—'बाबूजी आप चाहते क्या हैं? यदि आप बतला सकें तो शायद मैं आपको ठीक उत्तर दे सकूं।

मै बोला—'मैं कलियों के जेवर चाहता हूँ।'

उसने एक नजर मुझे ऊपर से नीचे तक देखकर कहा—'बन सकते हैं, किन्तु रुपये पांच लगेंगे और सोलह शृंगार के सोलह जेवर बन जाएंगे।'

उसका खयाल था कि बाबूजी केवल भाव--ताव पूछकर ही रास्ता नाप लेंगे।

वह क्या जाने कि मैं उस समय कौन था, कहाँ था और किस लोक का प्राणी बना हुआ था। मुझे उन चीजों की कितनी जरूरत थी। मैंने अपना मनीबेग खोला और उसे पांच रुपये का नोट पकड़ा दिया। तब वह अपने सच्चे ग्राहक को पहचानकर बोला—'कब चाहिए बाबूजी?'

'जितनी जल्दी दे सको।'

'आधा-पौन घण्टे का समय तो देना पड़ेगा। सब कारीगर लग जाएंगे।'

'मंजूर है। हम अभी बाजार घूम कर आते हैं।'

दूकान के सब कार्यकर्ता मेरी सूरत देख रहे थे। उसने वह नोट एक दूसरे व्यक्ति को दिया जो सूरत से ईमानदार और तिलक छापे से कर्म-काण्डी प्रतीत होता था। देकर बोला—'दादा! एक रुपया बाबू साहब को लौटा दो।'

मैंने कहा—'लौटाने की जरूरत नहीं है। यह तुम इसलिये रखो कि चीजें अच्छी बनाओ।'

'आप खातिरी रखिए बाबूजी, चीजें सब अच्छी होंगी। यदि

ाप पानी का छींटा देते जाएंगे तो दो दिन काम देंगे। हम को
ईमानी नहीं करनी है। आप लोगों से तो कमाते ही है। यदि एक
ज एक रुपया जादे लेलेंगे तो कौन हमारा काल कट जायगा।'

और उसने एक रुपया झेल कर मुझे लौटा दिया। मैं वहाँ से
ला और एक गंधी के यहाँ पहुंचा, खश, गुलाब, केवडा और रातरानी
चार इत्र मुझे पसन्द आए। चारो की छः छः माशे की शीशियाँ
ीर वहीं से सुगन्धित अगरबत्ती का पुडा खरीदा। उन सबको
व के हवाले करके मैं बजाज की दूकान पर गया। उन सब साड़ियों
नीली जार्जेट की साडी ही मुझे पसन्द आई, वह भी खरीदी गई।

इन सब के लेने में मुझे उतना वक्त लग गया जितना कि
लवाले ने मुझसे कहा था। मैं जब उसकी दूकान पर आया तो
सने केल के पत्ते में उन सब चीजों को बाँध कर रख छोडा था।
ने खुला पुडा लाना ठीक न समझ कर एक झोला भी खरीदा और
समें रखकर फूलवाले से अच्छी सी रसाई करके लौटा।

जाते समय मेरे साथ जो मानसिक भग्नता थी वह लौटती बार
मूल नष्ट हो गई थी। उसकी जगह आनन्द भवन बन चुका था।
ेरी दूरी की मंजिल हर्षोल्लास में आसानी से कट गई। जिस समय
ैंने कमरे में प्रवेश किया उस समय सात सवा सात बज गए होंगे।

बत्ती जल रही थी और वे कुमार को दूध पिलाकर उसका मुँह
ोंछ रही थीं। मुझे देखते ही बोलीं—'घूम आए आप?' और मेरे
ोले को भरा हुआ देखकर बोली—'ये क्या ले आए?'

मैंने झोला उन्हें सौंप दिया और अपनी खटिया पर बैठकर
हा—'आप देख लें जो भी कुछ हो इसमें।' उन्होंने ज्योंही हाथ
ाला तो हाथ में साड़ी आ गई। उसे उलट-पुलट कर देखा और
छा—'कितने की है यह?'

मैंने कहा—'यदि मंजूर हो गई तो लाख की है वर्ना ख़ाक की'

उन्होंने उसको रखकर फिर हाथ डाला और धागों से बंधा हुआ फूलों का बड़ा सा पुलिंदा निकाला—'यह क्या है ?'

'यह भी कुछ है। यदि अपना लिए गए तो हजार-हजार के वर्ना इनकी भी वही हालत है जो कल के गुलाब की है।'

मैंने अपनी जेबसे गुलाबके सूखे हुए फूलको जो रात में तोड़ने के अपमान से मुरझा गया था निकालकर उन्हें दिखलाया और कहा 'देखिए इस गरीब ने अपने अस्तित्व को आपसे अपमानित होकर किस तरह नष्ट कर दिया है। अपमान तो पाषाण भी नहीं सह सकता फिर तो यह बेचारा जाति का फूल, स्वभाव का फूल और रूप का फूल कैसे बरदाश्त करता।'

वे पुड़ा खोल चुकी थीं और उसकी उन सब छोटी बड़ी चीजों को देखकर बोलीं—'आपने इनमें क्यों पैसे बर्बाद किए होंगे, यह कोई शौक है ? वे नकली नाराजी के स्वभाव से बोली—'आपसे भगवान भी हार मानते हैं।'

मैंने कहा—'अभी रख दीजिए ! कुमार की तबीयत कैसी है ?'

'तबीयत तो ठीक-सी ही मालूम होती है। कुछ सुस्त सा है शायद सोकर उठा है इससे,या दवाके कारण हो। अभी दूध पिलाया है।'

कुमार मेरी तरफ देख रहा था। मैंने बुलाकर गोद में ले लिया और ममतापूर्वक अपने सीने से चिपटाकर पूछा—'क्यों बेटे कैसी तबीयत है तुम्हारी ?'

कुमार ने कहा—'अच्छी है।'

और मैंने मन ही में एक भूल महसूस की। मैं इसे कोई खिलौना न लाया, भाग्य से रामदीन सुराही भरकर कमरे में आया।

मैंने उससे पूछा—'रामदीन ! तुम्हें कोई जरूरी काम है ?

'नहीं तो सरकार ! कहिए !'

'मैं चाहता हूँ, थोड़ी देर कुमार को घुमा-फिरा लाओ। बाहर चहल-पहल देखेगा तो इसका मन बहल जायगा और प्रफुल्लित जायगा।'

'ले जाता हूँ सरकार !' कुमार से बोला—'आओ राजाबाबू हवा खिला लावे।'

कुमार उठ खड़ा हुआ। रामदीन ने उसे अपनी उँगली पकड़ा। बाहर गेलरी में जाकर मैंने उसे एक नोट दिया और कहा—'इसे तीन रुपये के अच्छे-अच्छे खिलौने जो पसन्द करे दिला लाना।'

रामदीन झिझका। पर दूसरे ही क्षण उसे मेरे मनकी विश्वासता का खयाल हो आया, उसने नोट लेकर अपनी जेब में रख लिया।

मेरे कमरे में आते ही वे बोलीं—'गया कुमार ?'

'हाँ, गया थोड़ी देर घूम-फिर आएगा तो उसकी उदासी भाग गी। आज ईश्वर ने ही उसे नई जिन्दगी दी है, उसके माता-के भाग्य अच्छे थे। और असली से नकली माता-पिता के ज़्यादे थे।'

हम दोनों आँखों ही आँखों में हँस दिए।

'मैं एक निवेदन करना चाहता हूँ।'

'कहिए।'

'किसी भी नए कपड़े को पहनने के लिए हम लोगों में बुध दिन अधिक अच्छा माना जाता है, आप इसलिए इस धोती को लीजिए।'

'यह क्या मेरे लिए लाए हैं आप ?'

'नहीं तो और किसके लिए ? यह जनानी कपड़े की मेरे हाथ पहली खरीद है, इस धोती की यह एक और भी विशेषता है।'

'मैं समझी थी कि किसी और की होंगी।'

'मेरा प्रिय कोई ऐसा नहीं है जो जनानी धोती धारण करता हो। जो था वह सदा के लिए गया।'

'वे विस्मित होकर बोलीं—'इसीलिए आप मुझे पहनाना चाहते हैं? मैं सोच रही थी यह सब जो हो रहा है, क्यों हो रहा है।'

'जी यह मेरे मन का गोपनीय विषय है और इसकी इसी रूप में सुन्दरता है।'

'यह क्या सूझा है आपको, कपड़े-लत्ते तो मेरे पास नहीं हैं, आपको यह न लाना चाहिए था। मैं आपके गोपनीय का अनुमान कर चुकी—अच्छा है।'

उनके 'अच्छा है' कहने मे एक गम्भीर रहस्य था।

'काश मैं धन का धनी होता! और है ही क्या मेरे पास सिवा इस मन के जो आपको भेंट करूँ?'

'भेंट तो उसे की जाती है जो भूलना जानता हो और उस भेंट को देखकर उसे याद आ जाए।'

'मैं इस भेद को नहीं जानता। मैं तो यह जानता हूँ कि मनुष्य हृदय से किसी को अपना न माने और यदि मान ले तो फिर उससे किसी प्रकार का दुराव न रखे, द्वैत न रखे; अन्यथा वह दूसरे से नहीं बल्कि अपनी ही आत्मा से बे-ईमानी करता है।'

'अच्छा मैं इसे पहन लूँगी।'

'पहन लूँगी तो लम्बी बात है, आप तो कृपाकर अभी पहनिए।'

'अभी, क्या ऐसा कोई मुहूर्त ही टल रहा है?'

'मुहूर्त क्या है मैं यह तो नहीं जानता, मैं तो यह जानता हूँ कि मन चंगा तो कठौती में गंगा'।'

'अच्छा! अभी पहन लेती हूँ, आप बाहर हो जाइए!'

अच्छा; जो हुकुम। कहकर उनकी मुस्कान अपने अधरों में समेटता हुआ मैं उसी चिरपरिचित वाटिका में चला गया। थोड़ी देर बाद जब लौटा तो देखता हूँ कि वर्षा की नीली घटाओं के बीच बैठकर मुस्कुराने वाले पूर्णिमा के चाँद की तरह पृथ्वी का चाँद मुस्कुरा रहा है।

मैं बोला—'चाँद के पास तारे भी होने चाहिए; इसलिए आप इन कलियों के भूषणों का भी उपयोग कीजिए।'

एक मोहक चितवन मुझपर डालकर वे बोलीं—'यह क्या तमाशा है? कोई देखेगा तो क्या कहेगा?'

'कहेगा क्या, गाली तो देगा ही नहीं। बहुत करेगा तो वह भी ऐसा ही करेगा।'

'रामदीन और कुमार भी तो आते ही होंगे?'

'मैं नीचे ही रामदीन से कुमार को लेलूँगा, उसे ऊपर न आने दूँगा—बस!'

हे भगवान! कहकर वे मौन हो गईं। मैंने सोच लिया इनका विरोध अब विदा हो गया। मैंने कहा—'यह तो मालूम हो गया होगा कौन-कौनसी चीज़ कहाँ-कहाँ की है।'

'आपको तो मालूम ही होगा, आप बतला दीजिएगा।'

'मैं जब दूकानदार के यहाँ आया तब वह सब चीजें बाँध चुका था। मुझे उससे कुछ पूछ लेने का भान ही न रहा। उसने दिया और मैं लेकर चला आया। यदि मैं आपको देता जाऊं और आप पहनती जाएं तो कैसा हो?'

'गनीमत है यही कहा, मैं तो समझी थी आप कहेंगे कि ...।'

'यदि समाज अनुदार न होता। संस्कृति अनुमति देती और इन दोनों के बाद भी यदि आपकी आत्मा में ग्लानि उत्पन्न होने की सम्भावना न होती तो यह भी होता और इस कार्य का होना भी

इसी प्रकार चाहिए किन्तु...... ।'

'आप एक बार और घूम आइए फिर यदि जरूरत पड़ी तो आपकी सहायता ले लूँगी ।'

'अच्छा, कहकर मैं फिर बाहर चला गया और उस समय तक उस बेंचपर बैठा रहा, जो बैठते ही अपनी भाषा में स्वागत गान गाती थी । जब रामदीन कुमार को ले आया तो मैंने उसे वहीं बुला लिया। रामदीन के रूमाल में कुमार के खिलौने बंधे हुए और कुमार पहले से बहुत अधिक प्रसन्न था ।

और मैं उनकी श्रृंगारिक कल्पना करके फूला न समा रहा था, मेरा मन मुझे ही भूलता-सा जाता था । फिर भी मैं रामदीन से कह सका—'रामदीन ! कुमार और खिलौनों को हम ले जाते हैं अब तुम अपना काम कर लो । घण्टे भर बाद सेर भर दूध दो कुल्हड़ों मे ला देना और आधा सेर दूध तुम लेकर पी जाना ।'

मैं उसे पैसे देना चाहता था । वह बोला—'सरकार ! मेरे पास पैसे बचे हुए हैं ।'

'ठीक है कम पड जाएं तो और ले लेना । सुबह के सामान वाले को भी तो देने हैं ?'

नीची गर्दन करके बोला—'सामान वाले को तो मैं दे आया।'

'कितने का था सामान ?'

हाथ जोड़कर बोला—'सरकार, मैं उस सामान के पैसे नहीं लूँगा । आज तो आपको मेरी ही बात माननी पड़ेगी भगवान ने भी प्रेम मे भीलनी के बेर खा लिए थे । विदुर के यहाँ साग का भोजन किया था तो सरकार आपने एक रोज मेरी सेवा मंजूर करली तो क्या हो गया ?'

'यह ठीक है रामदीन, किन्तु तुम गरीब आदमी हो ।'

'गरीब के गरीब और क्या होंगे सरकार, गुलामी तो भाग्य से मिटेगी नहीं।'

रामदीन की स्नेह पूर्ण सरलता और सत्कार की भावना मुझे प्रभावित किए बिना न रह सकी। अब बात मेरी समझ में आई कि रामदीन ने हमारे साथ भोजन करना क्यों स्वीकार किया था। मैं उसके लिए क्या कर सकता हूँ थोडी देर यही सोचता रहा।

वह चला गया और निशा नवेली का वही कल वाला सजीला दृश्य मेरे आसपास छा गया। मैं पिछली रात की बातों को दोहराता हुआ एक हाथ में कुमार और दूसरे हाथ में कुमार के खिलौनों को लेकर बढ चला आराध्य मन्दिर की तरफ जहाँ मेरी आराधनामयी देवी स-शृंगार दर्शन देंगी। उनके आकर्षक अधरो पर मोहक मुस्कान होगी। हृदय मे अलौकिक आनन्द होगा और कमनीयता की गोद मे बैठकर रूप गुदगुदा रहा होगा।

कभी कभी मनुष्य का अनुमान ज्यों का त्यो सही उतर जाता है। मैंने धीरे से द्वार खोलकर जब भीतर झांका तो अपने अनुमान को एकदम सही पाया। मेरा हृदय श्रद्धा और अवर्णनीय आनन्द से आन्दोलित हो उठा।

मानो मैं बिहारी हूँ और अपने सुषमा-निधान से याचक होकर याचना कर रहा हूँ—'यहि बानिक सो मन बसहु सदा बिहारी लाल।'

मेरे मुहँ से यह लाइन निकलते ही वे बोलीं—'आपको भी बडे तमाशे आते है। मुझे तो बडी शर्म आती है, मैं तो नही पहनूँगी।'

कुमार अपनी मौसी की तरफ इस तरह देख रहा था, मानो लडती हुई चिडिया को आशातीत होकर उसका बच्चा देख रहा हो

मुहँ फाड़े, नन्हा-सा। मैं उन्हीं के समीप आकर बैठ गया। वे अपने केशों के श्याम-पिण्ड को हार पहना चुकी थी। और वह आभा मोती से छन-छन कर आ रही थी। मानो सुदर्शन चक्र घनश्याम की उंगली का शृंगार बन रहा हो। दोनो हाथो मे गजरे थे। बाजू के बाजूबंद मानो अपने अभाग्य पर कुंठित हों, इस प्रकार नीचे रखे हुए थे।

मैंने कहा—'ये देखो! अपमान से कैसे खिन्न प्रतीत होते हैं, मानो हाथ के गजरो ने इनकी जागीर ही छीन ली हो।' 'लाइए!' कहकर एक उठाया और उन्होने उनके सुडौल प्रलम्ब हाथोंकी भुजा पर बाँध लिया। फिर दूसरा दूसरे हाथ की भुजा पर। 'यह देखिए! गले का ही हार है, इसमें यह चन्द्र लगा हुआ है। इसे ही शायद चन्द्रहार कहते हैं, कैसा आभाहीन हो गया है जैसे इन चार सिपाहियो ने मिल कर इस गरीब का राज्य छीन लिया है। लीजिए, इसे भी निराश न कीजिए।' मैंने उठाया कि उन्होंने हाथ बढ़ा कर ले लिया और अपने ही हाथ से गले मे पहन लिया।

'यह तो कटि की ही किंकिणी मालूम होती है, इसकी तो दुनिया ही दूसरी है। न किसी से लड़ाई है न झगड़ा, इसे अवश्य सम्मान मिलना चाहिए। इसे तो कृपा कर आप ही, लें।'

'और यह क्या है? मेरी समझ में नहीं आता।'

वे बोलीं—'माथे का झूँगा मालूम होता है।'

'तब तो इसे भी धारण कीजिए क्योंकि यह तो सिर का सब से बड़ा सरदार मालूम होता है।'

वे नीचे से नयनों से नादान-सी होकर बोलीं—'यही आफत है यह तो।'

मैंने कहा—'लीजिए! लीजिए!! आपलोगों के लिए ही तो मनुष्य का जन्म होता है। पैदा होने से मृत्यु काल तक सब पैठी

आफत ही तो साथ रहती है।'

वे हाथ में लेती हुई बोली—'और नही तो क्या ?'

दीवार की ओर मुँह फेर कर उन्होने उसे भी धारण कर लिया। तब तक मैं बिन्दी उठा कर उसे हाथ मे लिये था। मैंने कहा—'इस गरीबनी को यों ही अफसोस हो रहा है कि मैं स्त्री जाति ठहरी, कुछ कह नही सकती, बोल नहीं सकती तो मेरी कोई सुनता भी नहीं, मेरी कोई इज्जत ही नही। मैं इसे समझा रहा हूँ : तुम घबराओ नहीं, तुम्हारी मालकिन बडी दयालु हैं। वे तुम्हारी बेइज्जती नहीं होने देंगी, कृपा कर इसे भी धारण कर लीजिए।'

वे 'अरे राम, कहकर मेरी ओर एक आफत की दृष्टि से देखकर बोली—'क्या इसे भी! ..' और फिर दीवार की तरफ मुँह करके उसे भी ...। मैं चन्द्रिका को उठा कर उसकी कलियों को सुलझाते हुए बोला—'यह तो इन सबकी महारानी है। जब चतुरंगिनी सेना आगे बढ़ जाती है तब कहीं ये चलती हैं। इनके मिज़ाज ही कुछ और हैं। शायद देर हो जाने से नाराज़ भी हो गई थीं। देखिए न! कलियाँ सब आपस में सलाह-मशविरा कर रही हैं। अब-जब आपकी कृपा का रुख पाया तो कुछ-कुछ खुश हुई हैं। महारानी के साथ इन्हें भी आप अपनी कृपा से आभारी कीजिये। ये आपकी कृपा की एकदम अधिकारिणी ही मालूम होती हैं। देखिए! बड़ी आशा और अभिलाषा लिए हुए हैं।'

उन्होंने भृकुटी-विलास करते हुए कहा—'इन्हें आप ही न बाँध लें! यदि इतनी वकालत करते हैं तो।'

मैंने कहा—यह अमर्यादित हो जायगी। प्रसन्न तो तभी होंगी जब आप इसे धारण करेंगी। देखिये न अभी से इठलाने लगी है।'

वे झुँझलाहट की सी भाषा मे बोलीं—'क्या अजीब परेशानी है, इन सबको कहाँ तक लादूँ।'

'अब तो बहुत ही थोडे रह गये है।' उन्होने उसी तरह आईने की सहायता से मुँह फेरकर उसे सर्वोच्च स्थान दिया।

मैंने कहा—'अब ये छोटे-छोटे शायद कर्णफूल होगे। इन गरीबों का भी सौभाग्य हो जाना चाहिए। इन्हे भी .'

'अरे प्रभु ! मैं तो पूरी मारवाडिन ही बन गई।'

'नही, वे बेचारी तो खनिज पदार्थों से लदना जानती है। सुमनो का शृंगार उन्हे मारवाड की मरु-भूमि मे नसीब ही कहाँ होता है। आप तो पहनिए ! इन्हे भी पहनिए !! ये शायद नूपुर है।'

'इन्हे तो रहने दीजिए जो पहने हूँ ये ही बहुत है।'

'नही, इन चाँदी की चीजों को खोल दीजिए, लाइए मैं मदद कर दूँ।'

'उन्होंने अपने पैर सरकाते हुए कहा—'आप तो बडे ही विचित्र और हठी है। यह भी कैसी आफत है, इन्हे खोलो, इन्हे पहनो।'

मैंने कहा—'कल कपडे बदलते समय मुझे भी तो ऐसा ही हो रहा था फिर भी सरकारी आज्ञा थी इसलिए खोलना पहनना आवश्यक हो गया था।'

वे मुस्करा कर बोली—'अब मैं समझी, यह उसका ही बदला है।'

'छोडिए भी आप, बदले की तो बात ही बुरी होती है। यह तो प्रेम का प्रतिदान है। जब सभी पहन लिये गये फिर बेचारे ये पैजन ही क्यो रह जाएँ, इन्हे भी कृतार्थ कीजिये।'

'आपने उसकी दूकान पर भी कुछ छोडा या सभी ले आए।'

'सब उठा कर तो नहीं लाया हूँ, पर हाँ, यह माना जा सकता है कि जो लाया हूँ उससे अच्छा उसकी दूकान पर कुछ भी नहीं था। और यदि था जो उसने नहीं दिया तो उसने मेरी भावनाओं के साथ बे-समझी की है।'

कुमार अपनी मौसी का यह अलौकिक रूप देख कर इस तरह मौन था मानो उसे किसीने बोलने को मना कर दिया है। अभी हाथ के हथफूल और बाकी ही थे मैंने उन्हे उठा कर कहा—'ये हाथ के हथफूल हैं।'

वे मानो बहुत नाराज़ हों इस तरह बोली—'लाओ इन्हे भी पहन लूँ।' उनका मुँह भी फूल-सा गया था। 'अब तो आप खुश हो गये होगे।'

'अभी तो यह वनमाला रह गई है जो भवन की सुन्दरता के लिये परकोट की तरह आवश्यक है। देखिए न! इसके बिना तो शोभा ही अधूरी है। आप इसे और धारण कर लीजिए। क्या करूँ जी चाहता है कि मैं ही पहना दूँ परन्तु ...।'

वे हँस कर बोलीं—'जब मैं स्वयँ पहनने को तैयार हूँ तब आप क्यों कष्ट करें?'

पहला वाक्य मेरे हृदय को ऊँचा उठा रहा था, परन्तु तत्-क्षण ही दूसरे वाक्य ने गिरा कर अपनी सीमा पर खड़ा कर दिया। दो छोटे-छोटे हार और थे जो मैंने कुमार के गले में पहना दिये। वह मानो मौन बैठा हुआ अपने इसी अपमान को बरदाश्त कर रहा था—तुरन्त ही खिल गया। उसकी उजली-उजली छोटे-छोटे दाँतो वाली कलियाँ खिल कर चमक उठी।

उसके बाद मैं उठकर अपनी खटिया पर जा बैठा, और इस-लिये मुझे झूँठ बोलना पड़ा कि मुझे उन्हें उठाना था। उसके बाद

वे भुँझलाहट की सी भाषा में बोलीं—'क्या अजीब परेशानी है, इन सबको कहाँ तक लादूँ।'

'अब तो बहुत ही थोड़े रह गये है।' उन्होंने उसी तरह आईने की सहायता से मुँह फेरकर उसे सर्वोच्च स्थान दिया।

मैंने कहा—'अब ये छोटे-छोटे शायद कर्णफूल होंगे। इन गरीबों का भी सौभाग्य हो जाना चाहिए। इन्हें भी .. ..।'

'अरे प्रभु ! मैं तो पूरी मारवाड़िन ही बन गई।'

'नही, वे बेचारी तो खनिज पदार्थों से लदना जानती है। सुमनो का शृंगार उन्हे मारवाड़ की मरु-भूमि मे नसीब ही कहाँ होता है। आप तो पहनिए ! इन्हे भी पहनिए !! ये शायद नूपुर है।'

'इन्हें तो रहने दीजिए जो पहने हूँ ये ही बहुत है।'

'नही, इन चाँदी की चीजों को खोल दीजिए, लाइए मैं मदद कर दूँ।'

'उन्होंने अपने पैर सरकाते हुए कहा—'आप तो बड़े ही विचित्र और हठी है। यह भी कैसी आफत है, इन्हे खोलो, इन्हें पहनो।'

मैंने कहा—'कल कपड़े बदलते समय मुझे भी तो ऐसा ही हो रहा था फिर भी सरकारी आज्ञा थी इसलिए खोलना पहनना आवश्यक हो गया था।'

वे मुस्करा कर बोलीं—'अब मैं समझी, यह उसका ही बदला है।'

'छोड़िए भी आप, बदले की तो बात ही बुरी होती है। यह तो प्रेम का प्रतिदान है। जब सभी पहन लिये गये फिर बेचारे ये पैजन ही क्यो रह जाएँ, इन्हे भी कृतार्थ कीजिये।'

'आपने उसकी दूकान पर भी कुछ छोड़ा या सभी ले आए।'

'सब उठा कर तो नहीं लाया हूँ, पर हाँ, यह माना जा सकता है कि जो लाया हूँ उससे अच्छा उसकी दूकान पर कुछ भी नहीं था। और यदि था जो उसने नहो दिया तो उसने मेरी भावनाओं के साथ बे-समझी की है।'

कुमार अपनी मौसी का यह अलौकिक रूप देख कर इस तरह मोन था मानो उसे किसीने बोलने को मना कर दिया है। अभी हाथ के हथफूल और बाकी ही थे मैंने उन्हे उठा कर कहा—'ये हाथ के हथफूल है।'

वे मानो वहुत नाराज हों इस तरह बोली—'लाओ इन्हे भी पहन लूँ।' उनका मुँह भी फूल-सा गया था। 'अब तो आप खुश हो गये होंगे।'

'अभी तो यह वनमाला रह गई है जो भवन की सुन्दरता के लिये परकोट की तरह आवश्यक है। देखिए न! इसके बिना तो शोभा ही अधूरी है। आप इसे और धारण कर लीजिए। क्या करूँ जी चाहता है कि मैं ही पहना दूँ परन्तु .।'

वे हँस कर बोलीं—'जब मैं स्वयं पहनने को तैयार हूँ तब आप क्यों कष्ट करें?'

पहला वाक्य मेरे हृदय को ऊँचा उठा रहा था, परन्तु तत-क्षण ही दूसरे वाक्य ने गिरा कर अपनी सीमा पर खड़ा कर दिया। दो छोटे-छोटे हार और थे जो मैंने कुमार के गले मे पहना दिये। वह मानो मौन बैठा हुआ अपने इसी अपमान को महसूस कर रहा था—तुरन्त ही खिल गया। उसकी उजली-उजली छोटे-छोटे दोनों बालों पलियाँ खिल कर चमक उठी।

उसके बाद मैं उठकर अपनी खटिया पर जा बैठा, और इस-लिये मुझे झूठ बोलना पड़ा कि मुझे उन्हे उठाना था। उसके बाद

उनकी इस रूप राशि के भी तो दर्शन करने थे।

मैं बोला—'आज मुझे प्यास कितनी देर से लग रही है, किन्तु पानी पीने की सुध ही न रही, क्या हो गया है मुझे ?'

वे अधरों मे मुस्कान और नेत्रों मे माधुर्य भरकर उँगली उठा कर बोली—'मैं समझती हूँ आपकी प्यास को।'

मैंने हँस कर कहा—'जो मन की अंतरयामिनी ही बनी हुई हो वह न समझे तो फिर कौन समझ सकता है ?'

वे बोलीं—'मैं कितनी बेशर्म हो गई हूँ आपसे ! भगवान ही जाने कि मुझे क्या हो गया है।'

'यदि मुझे आज्ञा दें तो मैं अर्ज करूँ, आपको क्या हो गया है।'

वे पानी का गिलास भरती हुई मेरी ओर मुँह करके बोलीं—'कहिए, मुझे क्या हो गया है ?'

गिलास भरकर सुराही फिर झलक उठी और उस झलकन ने उनकी नई साडी का अग्रिम भाग और पैरों का कुछ हिस्सा गीला कर दिया। तब उन्हे होश आया और झट सम्हली।

'यह देखिए ! हो गई हूँ न पागल ! पानी किधर भर रही हूँ और देख किधर रही हूँ।'

मैंने कहा—कोई हर्ज नही, सुराही तो आपकी सखी ही है। उसे आपसे मजाक सूझो है, वही थोडी-सी फाग खेल ली।'

वे हँसकर सुराही को चपत लगाती हुई बोलीं—'यह निगोड़ी भी पगली है, इसे भी क्या सूझा है ?'

मैं बोला—'जो स्वप्न कल मैंने सोकर देखा था वह आज आप जागते ही देख रही हैं—यह हो रहा है।'

मनो वे क्षण भर ही मे स्वप्न की सारी कहानी याद कर गई हों, तुरन्त बोली—'जी हाँ'।

न मालूम उसी समय वह तितली कहाँ से आ गई थी। आकर उनकी बाँह पर बैठी। वे उसकी ओर निहारकर बोलीं—'और यह मरी जाने कहाँ से आ गई।' मैंने पानी पीते हुए कहा—'मालूम होता है, यह आपकी दासी बनकर आई है। संभव है भ्रमर भी रास्ता चल रहे होंगे। उन्हें भी तो आपको अपनी मीठी तान सुनानी है। यह वसन्त ऋतु है और आप स्वयं इस समय वासन्ती बनी हुई हैं, इसलिए सारे साज सामान बासन्ती होना ही चाहिए। इन छोटे-छोटे पतिंगो को देखिए आपकी ज्योति छीन लेने वाले प्रकाश को क्या खरी-खरी सुना रहे हैं, जैसे कांग्रेसी नेता गवर्नमेंट को।'

'बस अब आप तिल का ताड़ बनाने लगे।'

'मैं सच कहता हूँ, आज आपसे आपको अवश्य नज़र लगेगी। यदि यकीन न करो तो मेरे धड़कते हुए दिल पर हाथ रखकर देख लो। पूछ लो।'

'आपका दिल धड़क रहा है, देखूँ तो?' और उन्होने अपना हाथ मेरे दिल पर रख दिया।

'धड़क क्यो रहा है?' जरा चिन्तित स्वर में कहा।

'या तो आज आपको नजर लगेगी या मेरा हार्ट फेल हो जायगा।'

'ऐसा क्यो हो, हार्ट फेल हो किसी देशद्रोही का।'

'यह ठीक है, किन्तु आपका असाधारण रूप देखकर तो शची भी लज्जित हो सकती है और मेरी जिन्दगी की तो यह ऐसी अनुपम छवि है कि—क्या कभी इसे भूल सकूँगा?

'बनाने लगे न अब फिर आप राई का पर्वत।'

और यह देखो तितली जो बार-बार इधर-उधर उड़-उड़कर बैठती है मानो मेरी ही बात का समर्थन करती है। मैंने उन्हें खटिया

पर बैठ जाने का अनुरोध किया। थोडी मिन्नत के बाद जब वे बैठ गईं तब मैं उठा और आँखें बचाकर आईना उठा लाया। वे अपने ही किसी विचार मे अधरों को उंगली लगाकर तल्लीन थीं। मैंने खाट की पाटी पर पैर रखकर आईना उनके सामने कर दिया। उनकी विचार धारा वहीं टूट गई और उन्मुक्त होकर खिल-खिलाकर हँस पडीं।

'आपको भी क्या-क्या सूझती है—बड़े नटखट मालूम होते हैं आप भी।'

'यह अमूल्य क्षण हैं! न सदा ऐसी सुहावनी घडियाँ ही आती हैं, न ऐसा लुभावना रूप ही दिखलाई देता है। आज न जाने क्यों मेरे हृदय मे बचपन-सा छा रहा है।'

'जो कहीं आज के युग मे मनुष्य की योग्यता और ज्ञान पैसे की हाट मे न बिका होता—तो हम अभागों का भी वही मूल्य होता जो आज लक्ष्मी-पुत्रो का होता है। इस हृदय के साथ यदि वैभव की सजावट भी होती तो आप में क्या कमी थी कि आप हीरो से न तोली जाती? किन्तु. .... !'

वे स-गाभीर्य बोली—'ऐसा आप क्यो सोचते हैं, क्या मेरा आपसे कोई दुराव है, भेदभाव है, अथवा आपकी किसी भावना को मैंने कुंठित किया है। स्त्रियाँ तो अधिकाश मन की ही प्यासी होती हैं, वैभव की नहीं। उन्होने मेरा दाहिना हाथ पकडकर कहा—'बैठिए।

मैं बैठ तो गया किन्तु मेरी दृष्टि नीची थी।

वे मेरी ठोडी को अपनी कमल की पंखुडियो सी अंगुलियों से छूकर बोलीं—'आपने नीची निगाह क्यों कर ली?'

यों ही कुछ सोच रहा था।'

'क्या?'

'यह भी बतलाना पडेगा?'

'बतलाना तो चाहिए, यदि कोई हर्ज मालूम न होता हो तो बतला दीजिए ?'

'सोच रहा था इस निर्मित क्षण के आदर्श जीवन के बाद आने वाली अँधेरी रातों की पंगु घड़ियों को।'

'आपतो बात की बात मे न जाने कहाँ से कहाँ पहुँच जाते है। मेरा भी तो हृदय देखिये। मैं जानती हूँ कि मेरे भविष्य के जीवन में आशा के प्रकाश की रेखा मात्र भी शेष नही—फिर भी मैं अपने उस पहाड से दु:ख को भूले हुए हूँ। स्त्री जाति पर इन बातो का अधिक असर मालूम होता... । आप तो पुरुष है।

मैं आपको यकीन दिलाती हूँ कि आज तक मेरी सचेत अवस्था में सुख की फुहारे भी नही आई हैं। सदा दुख की ही घटाओ ने झड़ी लगाई है। संताप के काले बादल ही घुमडे है। फिर भी मैंने हृदय पर मानों चट्टान सरका ली है।'

'मन चंचल है, यह हर्ष मे भी कभी-कभी विषाद के निकट पहुंच जाता है। भाग्य से यदि मेरे जीवन को आप की कृपा का योग दान मिल गया तो मैं फिर भी निहाल हो जाऊँगा और मुझे इस इतने बड़े विश्वतन्त्र से कुछ नहीं चाहिए।'

वे लजवन्ती लतिका-सी लजाकर बोलीं—'आप तो पुरुष हैं, सब कुछ जो कहना चाहते हैं, कह लेते है; मैं तो कह भी नहीं सकती।'

'अब आपने क्यों नीची निगाह कर ली ?'

वे मुस्कुराकर बोलीं—'जब स्त्रियों की नीची निगाह होती है तब नाक ऊँची रहती है और जब निगाह ऊपर उठ जाती है तब नाक अपने ही आप नीची हो जाती है।'

मैं बोला—'छोड़िए भी आप इन ज्ञान-विज्ञान की बातों को। आप तो कुछ गाइए !'

'लो मन चला तो अब गाना सुनने की........।'

बेचारा कुमार हम दोनो के सम्वाद सुन रहा था। पर समझ नही रहा था, इसलिए उसकी दृष्टि बार-बार खिलौनों की पोटली की ओर दौड रही थी। मैं उठा और उसके सारे खिलौने उठाकर उसके सामने रख दिए।

मुँह को हाथ लगाकर वे बोली 'बापरे ! इतने खिलौनो का क्या होगा कौन खेलेगा ?'

मैंने कहा—'उस परमेश्वर का यह सारा संसार ही खिलौना है। हर एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति का खिलौना है। आप मुझे, मैं आपको और कुमार हम दोनो को फिर उसे भी तो अपने कुछ खिलौने चाहिए।'

'आप तो बात को इतनी ऊँची उठा देते है कि मैं उसे छू भी नही पाती। खिलौने है तो बडे सुन्दर।'

मैंने उन्हे फिर छेडने के खयाल से कहा—'यह सुन्दरता ही मनुष्य का प्रथम आकर्षण है, जो रूप के नाम से भी पुकारी जाती है। इसके बाद प्रभाव की दूसरी चीज, गुण, जो ज्ञान के नाम से भी पुकारा जाता है। और तीसरा प्रभाव पराक्रम का है जो पुरुषार्थ के नाम से पुकारा जाता है।'

वे बीच ही मे मेरी ओर हाथ-बढा कर बोलीं—'और ये तीनो बाते ही हमारे हमराही मे हैं।'

'अब मालूम होता है, आप पुल बांधकर मुझे बनाने लगीं।'

रामदीन ने इतने ही मे आकर द्वार खटखटाए। वे घबरा सी गई—बोलीं—'रामदीन मुझे देखेगा तो क्या कहेगा ? आप उसे बाहर से ही वह जो भी कुछ कहे, सुन करके लौटा देना, वे उठकर वह खिड़की के पास कोने मे खड़ी हो गई। मैंने दरवाजा खोला।

रामदीन के दोनों हाथों मे दो सकोरे दूध के थे और उंगलियो 'पान की पुड़िया दवी हुई थी।

मैंने उसके हाथ से दूध के सकोरे और पान की पुड़िया लेकर ा—'बस अब जाओ आराम करो, मुझे जरूरत पड़ी तो मैं तुम्हे ला लूंगा।'

वह लौट गया। मैंने दूध ताक मे रखा और दरवाजा फिर बंद र लिया।

वे बोली—'अब मैं यह सब खोल देती हूँ।'

'क्यों, बहुत वजन मालूम होता है?'

'बस आपकी आज्ञा की पूर्ति करनी थी सो ''।'

'अभी तो हम लोग रामदीन का लाया हुआ दुग्धपान करेंगे। म्बूल चर्वण करेंगे। श्रीमुख से एक दो गीत सुनेंगे। फिर कुछ किस्से हानी कहेंगे-सुनेंगे और फिर जब आँखों मे खूब नींद छा जाएगी ा सो जाएंगे।'

कुमार अपने खिलौने के साथ खेलने मे मस्त था। मैं भी उन्हीं पास दरी पर बैठा हुआ था।

मैंने अपने इच्छित वरदान के लिये याचक की भाँति कहा—दि आप नाराज न हो और मेरी मानवी दुर्बलताओ को सुनकर भ न मानें तो कुछ निवेदन करू ?' 'यदि आप मानवी दुर्बलताओ ो प्रकट करेंगे तो मुझे कोई क्षोभ न होगा क्योकि दुर्बलता तो समस्त ानव जाति मे होती है। आप कहिए! मैं सहर्ष सुनूंगी।'

'जिन दो स्नेहियो मे प्रेम का इतना कठोर आकर्षण हो, वे धा एक दूसरे पर अवलंबित होकर रहे, जिए, मरे तब उनमे दूरी यों हो? कोई भी मनुष्य यह नहीं चाहता। अधिकांश व्यक्ति सलिए ही परेशान है।'

वे शालीन मुखाकृति से बोलीं—'मानव सामाजिक है। उसके जीवन की जंजीर की एक-एक कड़ी समाज और सामा प्राणियों से संगठित है। इसलिए वह चाहे समाज की सहायता जीवन मे भले ही न ले, किन्तु समाज उसके जीवन के प्रेम, मधुर सम्बन्ध आदि के विषय में अपने ही आप चौकन्ना रहता जहाँ तक उसका बस चलता है, वह इस पथ के पथि मजिल पूरी नहीं होने देता। इस व्यापार के व्यापारी को शान्ति तो नहीं रहने देता। यद्यपि वह स्वयं भी इस व्यापार से मुक्त है। कोई भी मनुष्य कहलाने वाला प्राणी अछूता नहीं परन्तु वह के लिए तो मानो अपनी सौगन्ध खाए हीं उधार बैठा आज ही की बात है—आप कह रहे थे कि वह औरत हैं। हम पान की दूकान करके जीवन निर्वाह कर लेंगे।' परन्तु शर्त पर भी कोई राजी नही। आप ही बतलाइए, आपने ही उसे दृष्टि से देखा और क्या कहा। जो बात एक बार बिगड़ जाती है विधि-विधान कहलाकर अमिट हो जाती है। किसी भी प्रकार फि सुधारे नही सुधरती। मनुष्य यहीं आकर हार खा गया है।'

हम दोनोंही इस बात के बाद थोड़ी देर के लिए शांत हो

'आप तो चुप हो गए बस यही कहना चाहते थे क्या?'

'चाहने की बात छोड़ो! जी तो न मालूम क्या-क्या चाहता है; किन्तु ये सब कामनाएं तो आकाश कुसुमवत हैं। एक होता। मोटर होती। अच्छा पद होता। खूब सम्पन्नता होती और अच्छी-सी मीठी-सी हमारी भी जिन्दगी होती—और भी बाद बहुत कुछ होता, परन्तु यह तो निरी शेखचिल्ली ही खिचड़ी है।'

'सुख तो उसी अवस्था मे है, जब मनुष्य मजबूरियों के

ों के बीच से होकर गुजर रहा हो और उसमे आत्म संतोप के जो
िं इने गिने क्षण आ जाएं। सम्पन्नता का सुख तो माना हुआ होता है,
न्तु मजबूरियों के बीच मिला हुआ सुख जाना हुआ होता है, पहचाना
आ होता है। वियोगकी पैनी पीडाओ से छिदा हुआ हृदय, कठोरताओं
पैने शूलो से वेधित मन, जब आँखो की राह बरस जाने को उतावला
जाता है, वह रुदन, रुदन नही है, सुख ही है। मनुष्य इस सुख की
रिभाषा नहीं बना सकता। जब बरस चुकता है तो बार-बार बरसने
तत्पर रहता है इसलिए कि उसे उसी मे सुख मिलता है।
जब अपने नैहर के परिवार से वियोग करके जाती है और
दि भाग्य से ससुराल भी सुयोग्य न मिले, उस समय हृदय फट जाने
ो चाहता है। तब बरबो आँसू बरसते है और उस वर्षा के बाद जो
ख मिलता है, वह कोई नारी हृदय ही स्वीकार कर सकता है, जो
र्भाग्य से ससुराल की कु-योगिनी होगी।'

'मेरे हक मे तो यह विपय और विवेचन गम्भीर हो गया। मुझे
ा यह समझाइए कि स्त्रियां पुरुपो के लिए इतनी महान आकर्षक क्यो
न गई है?'

वे हँसकर बोली—'आप उल्टी बात कह रहे है, पुरुपो मे
त्रियो से भी अधिक आकर्षण है। अन्तर केवल इतना ही है कि पुरुप
अपने स्वभाव का अविश्वासी है। इसलिए अपने आकर्षण को व्यक्त
र देता है। स्त्रियां कारण के पहले प्रगट नही करती और जब स्त्रियोंका
आकर्षण प्रगट होता है तब वह पुरुपो से सम्हाले भी नही सम्हलता।'

'मैं इस बात से सहमत नहीं, क्योंकि मैं आपसे प्रभावित हुआ
हूँ; न कि आप मुझसे।'

वे हँसकर बोलीं—'मैं क्या जानूं कौन किससे प्रभावित हुआ
है। क्या यह आवश्यक ही है कि आकर्षण प्रगट ही कर दिया जाय?'

मैंने अपना पल्ला झटकते हुए कहा—'मैं भी क्या ... किया जाय या नहीं। मुझे तो यह जो भी कुछ हुआ है, पहली ... हुआ है।'

वे बात को टालते हुए बोली—'हुआ होगा, आप तो दूध ... लीजिए। नहीं तो यह ठण्डा हो जायगा। आकर्षण की उष्णता भी ... ही की तरह है।'

मैंने उनके तर्क को समझते हुए कहा—'दूध पड़े-पड़े ठण्डा ... जाता है, और मानव का आकर्षण, सौंदर्य की उष्णता के बिना ... मेरी तबीयत दूध पीने को नहीं होती, जाने क्यों शरीर ... अभी टूटता-सा है और जी भारी-भारी सा मालूम होता है। ... लीजिए और कुमार को पिला दीजिए।'

'कदाचित आप सौन्दर्य की उष्णता से छूट गए हैं और ... होता है आप थक भी गए हैं—लाइए। मैं आपका सिर दबा दूँ।'

'मैं इस अनुग्रह का प्रतिदान कैसे दे सकूँगा?'

वे मचलती हुई बोली—'न जी! हठ न करें—लाइए—... भी तो आपका सिर दबाया था। यदि आज हाथ पैर भी दबा दूँ ... इसमें प्रतिदान की कौनसी बात है?'

'कोई अपने आराध्य से भी सेवा लेता है? इस महान ... का यह उपयोग! कोई सुनेगा तो क्या वह उसके बाद भी ... आदमी कहेगा?'

'वाहवा, क्या कहने हैं सौन्दर्य के! मैं इतने जेवर पहने हूँ ... भी उतनी सुन्दर नहीं लग रही हूँ जितने कि आप केवल कुर्ते ... धोती में जचते हैं। कुछ भी हो सेवा किसी भी धर्म में पाप नहीं ... सेवा ही है।

'फिर मैं इस मृत्युलोक का प्राणी तो नहीं रहूँगा!'

'न रहिए ! उठिए मैं जो आपके साथ चलती जाऊँगी।'

वे दूध उठा लाईं। मेरी जरा भी इच्छा न थी, बहुत मना किया, किंतु उनकी मनुहार ने मुझे हरा दिया। आधा सकोरा दूध गिलास मे कुमार के लिए निकाला जिसे कुमार पी गया। मैंने अनिच्छित रूपेण पिया तो इसलिए कि उनके हाथ से दूध पीने का मोह था। पान भी खाया। उन्हे भी बरजोरी पिला दिया। पान भी खिला दिया।

थोडी ही देर बाद मुझे वमन की इच्छा हुई, मैं बाहर गया। हवा की आवश्यकता मालूम होती थी पर बाहर हवा का नाम भी न था। अन्दर आया तो आते ही वमन हो गई। उनके चेहरे पर विस्मय और चिन्ता की रेखाएँ खिच गईं। वमन के बाद ही शरीर मे कपकपी लगी, उसे मैं जब तक सहन कर सका किए रहा और उनकी चिंता मिटाने को इधर-उधर की बातें करता रहा। परन्तु जब ठण्ड असह हो गई तो बोला—'मुझे सर्दी जाने क्यो लग रही है, सिर मे थोडा-थोड़ा दर्द भी है।'

'यह अभी-अभी क्या हो गया आपको ?

वे उठीं और कुमार का बिस्तर लगाकर उसे लिटा दिया। मैं अपनी खटिया पर लम्बा हो गया और चादर ओढ ली। वे मेरे पास बैठ गईं।

सिर पर हाथ रखकर बोलीं—'आपका सिर तो गरम है।'

मैं ठंड से थरथरा रहा था। मैंने उनसे कहा—'आप मुझे मेरा ब्लाकिट उठा दें।' उन्होंने ब्लांकिट उढ़ा कर मेरे सीने पर हाथ फेरा। उनका हाथ मुझे ठण्डा लग रहा था। और मेरा शरीर उन्हें गरम। वे चिन्तित होकर बोलीं—'आपको तो ज्वर हो गया है। हे भगवान ! यह क्या आपत्ति है।'

उन्होंने अपने सब जेवर खोल डाले और उन्हे ढकका र दिया। धोती बदली। मुझसे आकर पूछा—'रामदीन कहाँ होगा?'

'नीचे ही बैठा होगा मगर उसे क्या कहेंगी बुलाकर?'

'आपको ज्वर हो गया है, शायद वह डाक्टर से कोई दवा आए। अभी तो दस भी नहीं बजे हैं, डाक्टर होगा ही।'

'डाक्टर क्या करेगा। शायद कुछ खाने-पीने से, गर्मी से अथ गोता कई दिनो मे लगाया इससे ज्वर हो गया है। आप तो मुझे कुछ उढ़ा दीजिए।'

उन्होंने अपना दुशाला भी उढा दिया पर मेरे शरीर की थरथ बन्द न हुई तो वे स्वयं ही मेरे पैरों के ऊपर लेट गईं। मेरी आँखें ब हुई जा रही थीं। मैं खोलने की हिम्मत कर रहा था परन्तु स्वयं

वे उठी और रामदीन को बुला लाईं। रामदीन ने मेरा मुँ देखा और पैताने बैठ गया। वे सिर पर हाथ फेर रही थी औ रामदीन को मेरी दिनचर्या सुना रही थीं।



# वे गायक

मुझे यह पता नही रामदीन उनसे क्या-क्या कहता सुनता रहा। कितनी देर रहा और कब उठ कर गया। पाँच बजे जब मेरी बेहोशी मिटी तब मैने देखा वे अपने बिस्तर पर दाहिनी करवट से गहरी नींद मे सो रही थी।

मैं कंधे से नीचे अनेको वस्त्रों से ढका हुआ था।

यदि आज ये न होतीं तो मेरी क्या हालत होती। मैंने धीरे से करवट ली। यदि कही मनुष्य अपनी वृत्तियों के स्थिर करने में सफल हो गया होता तो इस दुनियाँ मे न इतनी खडबडाहट होती न यह शोर ही होता।

मैं अपनी ही चित्त वृत्तियोमे इस प्रकार उलझ गया जैसे किसी तालाब की तलछट मे पडे हुए सिंगाडे की बेल मे उलझ गया होऊँ। मैं चाहता था उन्हे जगाने का कोई माकूल उपाय दिमाग मे आये जिससे वे जाग जाएँ और हम कुछ बाते कह सुनकर शेष रात्रि व्यतीत कर दें।

उनकी वह चिन्ता जिसे साथ लेकर वे सो गईं थीं तस्वीर की तरह उनके चेहरे पर स्पष्ट थी। मैंने एक धीमी–सी कराहट ली और वे चौंक कर जागीं। घबराई हुई-सी, भयभीत–सी और मानो किसी गहरी–गहराई से क्षण भर मे ऊपर आ जाने की चेष्टा करती हुई सी।

मैंने कहा—'घबराइए नही!'

वे बैठी ही बैठी अपनी आँखों के मसल रही थीं। एक गहरी सी–वेदना उनके मुखड़े पर उभर आई थी। मैं अपनी ही आत्मा से

उनके मानसिक भावों का अनुमान कर रहा था। वे अधिक वेदनामयी प्रतीत हुईं तो मैंने आहिस्ते से कहा—'इधर तो देखिए।'

उन्होंने मुड़कर मेरी ओर कातर दृष्टि से देखा, देखते ही देखते उनकी आँखें आँसुओं से भर आईं और जरा देर बाद ही वे बरस पड़ीं।

मैं दुखी होकर बोला—'यह क्या हो रहा है?'

वे उत्तर न देकर और बिखर गईं। और अधिक करुणा में डूब गईं। तब तो मेरा हृदय भी एक अज्ञात प्रेरणा से खिचने लगा। मेरी वाणी कुंठित हो गई और तालू सूखने लगा। बड़ी कठिनाई से बोला—'यदि आप कुछ कहेंगी नहीं तो मैं क्या समझ सकूंगा, क्या बात है।'

वे एक टक दीवार की ओर देख रही थीं मानो अपना छाया-चित्र देख रही हों और अपनी गीली आँखों को सुखा कर जब मेरी ओर देखने लगीं तो मेरा नाजुक हृदय उनकी कारुणिक सूरत को देखकर उमड़ आया। प्रयत्न करके भी मैं उसे न रोक सका और वे तो अपने हृदय को बे-अख्तियार कर ही चुकी थीं। उधर हिचकियाँ थीं और इधर लम्बी-लम्बी साँसें। थोड़ी देर तक यही क्रम चलता रहा।

'आप यह क्या कर रहे हैं! पहले ही तो तबीयत खराब है और ज्यादा खराब हो जायगी न?'

मेरा स्वभाव रोने में आज भी बच्चा है और बिलख गया। वे पास आकर दोनों हाथों से दोनों आँखों की बाढ़ रोकने लगीं। 'आप चुप हो जाइए!'

'आप मुझे चुपकर रही हैं और आप यह क्या कर रही हैं!'

मैं अपने हाथों से उनके आँसू पोंछने लगा। प्रेमी के आँ

पोंछने का भगवान ने जिसे सौभाग्य दिया होगा वही उस आनन्द और परमानन्द की कल्पना कर सकता है। मैं उसी अनुपम सुख की शक्ति पाकर बैठा हो गया। उस समय उनकी आँखों मे मेरा सूक्ष्म रूप था और मेरी आँखो मे उनका। द्वैत जाने कितनी दूर था।

वे ममता और प्यार की भाषा मे बोलीं—'आपको मेरी शपथ है !'

'अच्छा किया आपने जो मेरी आँखों का खारा पानी निकलवा दिया। यदि आज आपकी इस करुण झाँकी के दर्शन न होते तो न जाने मुझे कब तक इसे सम्हाल कर रखना पडता। यह सब क्या हो रहा है। मेरी समझ मे नही आता कि परमात्मा क्या कर रहा है।'

'जो उसे अच्छा मालूम हो रहा है, वह कर रहा है।' हमारे जीवन-घट की रिक्तताओं को वह जिन-जिन अवस्थाओं से भरना चाहता है, भर रहा है।'

'जो जो होनी सम्मुख आ रही है, इन्हे आप भी नहीं जानती थीं न मैं ही जानता था। यही वह अगम अवस्था है जिसे वह स्वयं भी नहीं जानता।

इसलिए ही महात्माजी को यह भजन अत्यत प्यारा है—
'न जान्यो जानकी नाथे सवारे शूं थवानुं छे।'

'ठीक बात है !'

'मैंने स-सावधान होकर पूछा—'बतलाइए तो आप क्यों रो रहीं ?'

'मैं तो असमर्थ हूँ, मेरी वाणी मे कारण बतलाने का सामर्थ्य नहीं है।'

'आपको क्या हो गया ?'

'मैं स्वयं नहीं जानता मुझे क्या हो गया। शायद मुझे यह

लड़कपन हो गया जो रोतों को देखकर रो देता है।'

'अब कैसी तबीयत है आपकी ?'

'जो है सो आपके सम्मुख है। डाक्टर से रोगी क्या कहे कैसी तबीयत है। यह तो डाक्टर को स्वयं ही समझ लेना चाहिये।'

'मुझे डाक्टर न कहिए !'

'मैं तो बुखार में भूल ही गया। कई बार आपको आप कह गया। अब आप जो कह देंगी वही कहा करूंगा।'

'मैं क्या बतलाऊं, क्या कहूं। मैं तो ज्यादा पढ़ी-लिखी भी नहीं। न पल्ले इतनी योग्यता ही है। पर मैं समझती हूं कि जिस प्रकार मनुष्य को दुनिया नहीं समझती उसी प्रकार कोई ऐसा नाम हो जिसे दुनिया न समझे वही लिया करे।'

'बात सच है, मनुष्य की वास्तविकता को समझ लेना कठिन ही नहीं असाध्य भी है।'

'हम अपनी आत्माओं के व्यवहारों में क्या है पर यह दुनिया क्या समझ रही है। अभी तक कोई व्यक्ति सही न समझ सका, यहाँ तक कि मास्टर साहब भी कितना गलत समझे और सब तो गलत समझते ही हैं। एक प्रभु जो सर्वत्र है वही सब समझता है कि हम सही-सही क्या हैं। या हम अपनी-अपनी आत्मा में समझते हैं। गंगा के किनारे जब हम खड़े थे तब हमारी आत्माओं के ईमान का सबूत परमात्मा था और इस समय भी मेरी आत्माके भावोंको परमात्मा ही जानता है। परन्तु जब मैं यह सोचती हूँ कि इस निकटता का अर्थ आप क्या समझते होंगे, तो एक आत्म-वेधक आशंका मन में घर कर जाती है। मैं केवल भगवान के भरोसे ही अपनी मर्यादा और सीमा से असीम हो गई, जिसका प्रेम रूप ईश्वर ही साक्षी है जो एक क्षण को भी कोई कु-भावना मेरे मन में आई हो।'

'मैं आपके आशय को समझ गया हूँ। मेरा मन भी बार-बार विचलित होकर दृढ़ हो गया है। अब मैं विश्वास पूर्वक कह सकता हूँ कि मैं आपके प्रेम, आपके ईमान और आपके विश्वास के प्रति बे-ईमान न होऊँगा, आपको ज़रा भी स-शंकित न होना चाहिये।'

वे मेरी इस बात को सुनते ही गले लग गईं और प्रेम के शीतल आँसू झरने लगे। मेरे लिए गले मिलने की अवस्था नहीं थी। मैं उनके मस्तक पर बार-बार हाथ फेर रहा था और नन्हें बच्चे की तरह पुचकार-पुचकार कर समझा रहा था। मेरे स्नेह का बाँध-सा टूट पडा। मेरी आँखों में भी वही धारा बह रही थी। मेरी ममता न्योछावर थी। वे सुख-प्रद क्षण कहे नहीं जा सकते, क्या कहूँ! कैसे कहूँ!!

थोडी देर बाद हम लोग अपनी-अपनी धैर्यावस्था में आये। आँसू ही नहीं निकले हृदय भी भली-भाँति धुल गये।

'मैंने स-धीर कहा—'अब मैं अच्छा हूँ ममता।'

उनके मुख पर प्रसन्नता थी—'यह कितना अच्छा नाम बन गया।'

'ममता!'

'हाँ, मुझे अच्छा लगा आप तो यही कहा करें। सोचने पर भी इतना अच्छा नाम न मिलता।'

मैंने उनकी ठोडी छूकर कहा—'ममता! सचमुच ही मेरे हक में अब तुम ममता का स्वरूप हो! देखना ममता, अब मुझे ज्वर नहीं है?'

उन्होंने मेरी कलाई को मुट्ठी में बाँध कर कहा—'अब आग जैसा नहीं है। बहुत पसीना आया था। जाने कहाँ से आपको ज्वर आ गया। रामदीन रात को डाक्टर के यहाँ गया; भाग्य से वह भी न मिला।

मेरे तो होश ही उड गए थे। आप जाने क्या-क्या बडबडा रहे थे। यह अच्छा था कि बेचारा रामदीन था, नही तो मैं घबरा ही गई थी।

'मुझे तो उसका पता नहीं कब आया, कब तक रहा। अच्छा किया जो उसे बुला लिया।'

'बेचारा आपके पैर चाँपता रहा। इतना जोर का ज्वर था कि शरीर तवे की तरह जल रहा था और पसीना भी इतना आया कि दोनों पोछते-पोंछते हैरान हो गए।'

'कई वर्षों के बाद आया था इसलिए गुस्सा खाकर चढा था।'

'क्यो आ गया होगा, ऐसा कोई कारण तो नहीं मालूम होता?'

'मेरे अनुमान से तो शायद गंगा के गोते लगाने का प्रभाव होगा। या फिर यह कारण हो कि उसे आपके स्वरूप देखने की इच्छा हो गई हो और सोचा हो चलो फिर यह सुयोग जाने कब प्राप्त हो।'

'मैंने भी क्या पागलपन कर डाला। हमारे घर चम्पे का पेड है। गाँव भर की लडकियाँ फूल बीनने आती हैं और मैं उन्हे बीन-बीन कर दे देती हूँ, पर कभी एक फूल लगाने की भी इच्छा नहीं होती। लडकियाँ कानों मे लगाती है। बालो मे लगाती है। माला बनाकर पहनती हैं। मुझ से भी कितनी ही बार कहती हैं पर मेरी इच्छा ही नही होती। आज ही जाने क्या पागलपन सवार हुआ कि डले भर फूल लाद लिए। मैं तो यही समझती हूँ कि मेरी ही दीठ आपको लगी है, इसलिए आपको ज्वर हो आया है।'

'ममता! उल्टी बात कह रही हो! नजर तो मेरी तुम्हे लग सकती है क्योकि मैंने कभी कोई स्त्री तो क्या चित्र भी इतना सुन्दर नहीं देखा। यदि आपकी तबीयत खराब होती तो मैं कभी कोई इलाज न करता, किसी बुढ़िया को बुलवाकर राई नोंन करवाता। रामदीन या ही, किसी भी बुढ़िया को तुरन्त बुला लाता। और रामदीन की एक

मजेदार बात बतलाऊँ। वह आज के भोजन के सामान का पैसा नही ले रहा है। कहता है, आजकी सेवा तो आपको मेरी ही ओर से स्वीकार करनी पडेगी।'

वे मुस्कुराई और बोली—'आप तो सुन ही रहे होगे रामदीन की रामकहानी।'

'मुझे कुछ पता नही।'

'मैंने समय काटने को रामदीन से उसका पारिवारिक परिचय पूछा।'

कहता था—'मैं गाँव पर कुछ काम धन्धा नहीं करता था, इसलिए माँ, बाप ने लड झगड कर मुझे घर से बाहर निकाल दिया। कुछ दिनों तक इधर-उधर मारा-मारा फिरा तब कहीं यहाँ मुश्किल से नौकरी लगी। बाप को पता लगा तो वह औरत को लाकर छोड़ गया। फिर मकान लिया। गृहस्थी जमाई। कुछ तनख्वाह और कुछ इनाम-इकराम मिल जाती है, इससे काम काज चल जाता है।

आप कहते है कि औरत देखने भालने में तो अच्छी है, मगर उसमे अकल नही है। इसलिए ही आप उस बेचारी से नाराज रहते हैं। अब आपकी इच्छा है कि कोई जाति की होशयार औरत मिल जाय तो उसे घर मे बैठा लें। इसी फिकर में आप दिन रात हैरान रहते हैं।

आपने कुछ जाति के लोगों से कह भी रखा है। कहीं-कहीं बातें भी चल रही हैं। और इस पुण्य कार्य मे आप पच्चीस-पचास रुपया खर्च भी कर सकते हैं। याने मनसूबे आपके बहुत ही ऊंचे हैं।

मैंने यों ही कह दिया—'अच्छा है कोई बेचारी आएगी तो सुख पाएगी।'

आप कहते हैं—'मलकिन ! राजा की रानी को दुख हो

मेरे तो होश ही उड गए थे। आप जाने क्या-क्या बडबडा रहे थे। यह अच्छा था कि बेचारा रामदीन था, नही तो मैं घबरा ही गई थी।

'मुझे तो उसका पता नहीं कब आया, कब तक रहा। अच्छा किया जो उसे बुला लिया।'

'बेचारा आपके पैर चॉपता रहा। इतना जोर का ज्वर था कि शरीर तवे की तरह जल रहा था और पसीना भी इतना आया कि दोनो पोछते-पोंछते हैरान हो गए।'

'कई वर्षों के बाद आया था इसलिए गुस्सा खाकर चढ़ा था।'

'क्यो आ गया होगा, ऐसा कोई कारण तो नहीं मालूम होता?'

'मेरे अनुमान से तो शायद गंगा के गोते लगाने का प्रभाव होगा। या फिर यह कारण हो कि उसे आपके स्वरूप देखने की इच्छा हो गई हो और सोचा हो चलो फिर यह सुयोग जाने कब प्राप्त हो।'

'मैंने भी क्या पागलपन कर डाला। हमारे घर चम्पे का पेड़ है। गॉव भर की लडकियाँ फूल बीनने आती हैं और मैं उन्हे बीन बीन कर दे देती हूँ, पर कभी एक फूल लगाने की भी इच्छा नहीं होती। लडकियाँ कानों मे लगाती हैं। बालो मे लगाती हैं। माला बनाकर पहनती हैं। मुझ से भी कितनी ही बार कहती है पर मेरी इच्छा ही नही होती। आज ही जाने क्या पागलपन सवार हुआ कि डले भर फूल लाद लिए। मैं तो यही समझती हूँ कि मेरी ही दीठ आपको लगी है, इसलिए आपको ज्वर हो आया है।'

'ममता! उल्टी बात कह रही हो! नजर तो मेरी तुम्हे लग सकती है क्योकि मैंने कभी कोई स्त्री तो क्या चित्र भी इतना सुन्दर नहीं देखा। यदि आपकी तबीयत खराब होती तो मैं कभी कोई इलाज न करता, किसी बुढ़िया को बुलवाकर राई नोन करवाता। रामदीन था ही, किसी भी बुढ़िया को तुरन्त बुला लाता। और रामदीन की एक

मैंने कहा—'यह नाराज होगी तब !'

बोला—'जो अपने मन मे ही नहीं बसी उसका क्या ? रहेगी तो खाएगी और पहनेगी, नहो रहेगी तो उसके बाप के यहां चली जाएगी। फिर चाहे महनत करो, मजदूरी करो, चाहे जो भी करो अपने को इससे क्या ? मॉथे का बास जब टूट गया तो फिर कहीं भी गिरो।'

मैंने कहा—'यदि यह बाप के यहां नहीं गई यहीं रही और लड़ाई झगड़ा हुआ तो फिर क्या करोगे ?'

उसने कहा कि 'एक तो डॉट-डपट के रखने से कब लड़पैहैं। इतने पै लड़िहैं तो कुटिहै-पिटिहै और जादे करिहै तो हाथ पकड़कर घर से बाहर... ..। 'जैसे देव की वैसी पूजा। इस तरह की अनेकों बातें कहने लगा।'

'कल जो चर्चा हम लोग देहातों के सम्बन्ध में कर रहे थे, उन देहातों की मनोवृत्तियां मानो सदेह होकर ही आ गई हों। कितने ही दिन रामदीन को शहर मे रहते हो गये, किन्तु उसके देहाती विचारों मे कोई फेरफार नहीं हुआ। मैं तो याद भी नहीं रख सका। दस ग्यारह बजे से तीन, चार बजे तक का समय उसकी बातों ने ही काटा।'

'वाह ! रामदीन के ऐसे विचारो के सम्बन्ध में मैं तो स्वप्न में ऐसी कल्पना नहीं करता था। भोली सूरत के दिल मे भी इतनी बांक छिपी रहती है। रामदीन जैसा व्यक्ति भी एक स्त्री के बाद एक और औरत चाहता है। भगवान ! कितने दिनों के बाद हमारी शिक्षा और संस्कृति लौटेगी, कुछ पता नहीं ?'

'मेरे अनुमान से तो हिंदू राज्य के पुन. स्थापित होने के बाद भी चार और पांच पीढ़ियाँ चाहिए तब कहीं हिन्दू संस्कृति सुधरे तो

जाय मुदा……।'

'वाह रामदीन, ये बातें ! तभी पुण्य लूटने को हम लोगों को खिलाया होगा। एक के होते हुए एक औरत की और सन्न जरूर। सूरत शक्ल में—सीधा साधा साधू-संत की तरह और दिल में तमन्ना। विधाता ने सृष्टि की रचना ही इस ढंग से की है कि इसका अनोखापन समझ मे ही नहीं आता। आप डील-डौल में भी कि मर्कट की तरह हैं किंतु दो स्त्रियों के खर्च को चलाने का हौसला। कुली का काम करें और औरत एक दम चतुर चाहिए।

यदि पुरुष स्त्रियो के प्रेम पथ पर चलने के पूर्व जो कहीं में अपनी शक्ल का मुलाहिजा फरमा ले तो शायद उसे पता लग कि मैं जिससे प्रेम करने जा रहा हूँ, संभव है वह मुझे पसन्द न कहीं ऐसा न हो कि मुझे अपनी ही जगह आ जाना पड़े। मगर क्या करें उन्हें आदत होगयी है, यौंही उठकर चल देते हैं महरबान लोग

'सुनिए तो ! मैंने कहा—'भगवान करें तुम्हारी इच्छा पूरी जाय। तो बारबार पैर छूकर हाथ आँखो से लगाए और हाथ जोड़ बोला—'आप तो ऐसा आशीर्वाद दो कि देव सोएं उसके पहले कोई ठिकाना लग जाए।'

मैंने कहा—'कितने रुपये जोड़ रखे हैं रामदीन? तो कहते क्या हैं—'रुपये हम गरीब आदमी कैसे जोड़ें' पर हाँ, साख है। अटक भीट पड़ने पर दस, पचास रुपये उधार सकते हैं।'

मैंने पूछा—'उसके लिए जेवर वगैरह बना लिए?'

कहता था—'इसके पास दो चार चांदी के जेवर हैं। ये उसे दे और कुछ कांसे के खरीद लेंगे फिर जैसे-जैसे मन मिलता जायगा बनाता जाऊंगा।'

से समाज पेट भर कर रोने भी नहीं देना चाहता।'

और उधर आरम्भ हुआ—'गाइए गणपति जगवन्दन, शंकर सुवन भवानी नन्दन।'

वे बोलीं—'आज वह कल का स्वर नहीं है। ये कोई महाशय जो गा रहे हैं।'

मुझे भी ऐसा ही लग रहा था। मैंने तत्क्षण ही उनकी बात का समर्थन किया। दूसरा गाना भी उसी व्यक्ति ने गाया। गाना क्या था मानो उस समय के मेरे ही दिल की भीतरी आवाज थी जो शायद मेरी असमर्थता के कारण उस व्यक्ति के मुँह से निकल रही थी :

*"बलाएँ लूँ मै उस दिल की जो दुनियाँ के लिए रो दे!*
*जहाँ वालों के रंजोगम को अपने खून से धो दे।"*

मेरा हृदय गीत के साथ-साथ उछल रहा था। मैं खटिया पर लेटा ही बैठा गुनगुनाने लगा। गजल पूरी हो गई किन्तु मेरा मन यही चाहता था, अच्छा हो यदि इसी गायक को फिर से किसी गाने की सूझ आ जाय। परन्तु ऐसा नहीं हुआ, थोड़ी देर के लिये सारे वाद्य शान्त हो गए। फिर एक मीठी सी और पैनी सी आवाज आई। वे बोलीं—'यह वह कल वाला ही स्त्री का कण्ठ है।' मैंने समर्थन किया। वह गा रही थी—

*'तूफान है दर्या मे और दूर किनारा है*
*इस डूबती नैया का भगवान सहारा है,*

वे बोलीं—'अब समझ लीजिए इसे ममता ही गा रही है।'

'आपकी आत्मा के भावों का इस गाने से सम्बन्ध है क्या?'

'बहुत कुछ, एक दम ज्यों का त्यों।'

'मैं समझ नहीं पाया कि आपके हृदय में दर्द ऐसा घर क्यों

सुधरे !'

इस प्रकार हम लोग रामदीन, समाज और भरत की विवेचना करने लगे। इतने में ही सामने सड़क के उसपार वही कल वाली खिड़की खुली। वायु के साथ-साथ स्वर की मिठास चारों ओर छा गई। मैंने कहा—'शायद कल के गायक का समय आ गया। वाद्य सजग हो गए, ऊपर चला गया होता तो बड़ा सुख मिलता।'

वे विरोध करके बोलीं—'नहीं, ज्वर से अभी एकदम खुली हुई हवा में जाना अच्छा नहीं। मैं यहीं खिड़की खोले देती हूँ यहां भी आवाज आएगी, आप यहीं उस आनन्द को उठा सकते हैं।'

उन्होंने खिड़की खोली। उधर स्वर मिल रहे थे और इधर वे मुझसे कह रही थीं—'आप तो संगीत के बड़े ही शौकीन मालूम होते हैं।'

'जिस तरह शराबी शराब पीकर अपना गम गलत कर लेता है। उसी प्रकार मुझ जैसे कुछ लोग हैं जो किसी से गाना सुनकर अपना रोना भूल जाना चाहते हैं ?'

मेरी बात पर वे हँसकर बोलीं—'आपका नशा भी बड़ा अजीब है। कोई गला फाड़े और आप इत्मिनान से सुनकर आनन्द उठाएँ। मालूम होता है आप भी गाना जानते हैं ?'

'भला, उस गाने में क्या मज़ा जो बेदर्द होकर गाए। हां, यदि भविष्य में मैं किसी मीठी चोट से दर्दमन्द हो जाऊँगा और उसके बाद गाना सीख जाऊँ तो कह नहीं सकता।'

वे चुप रहीं मानो मेरी बात का मौन समर्थन कर रही हों।

'मेरी इच्छा तो ममता के गाने सुनने की है यदि ममता सुना सके तो।'

वे निराश भाषा में बोलीं—'ममता बेचारी क्या गाना गाए

सी की न सुनी। मेरी बडी बहन की शादी एक स-हृदय परिवार में ई थी, किंतु वे बेचारी तो अपनी बहुत ही थोड़ी सी जिंदगी लेकर ड़ी थीं। विवाह के दो वर्ष बाद ही ईश्वर ने उन्हें इस ससार से उठा लिया। उनकी शादी और दहेज की रकम के कर्ज से पिताजी क्त भी न हो पाए थे कि मँझली बहन की शादी करनी पड़ी। हनोई दफ्तर मे क्लर्क है। चालीस-पचास रुपये पा जाते हैं। धारणतया वे सुखी हैं। दु ख इसी बात का है कि उनके घर मे कोई ही बूढ़ी नहीं है।'

'क्या कुमार साहब उन्ही के चिरंजीव है?'

'जी हाँ, आप उन्ही के शाहजादे साहब हैं। और तीसरी भागिन मैं हूँ। आपके सामने हूँ। लीजिए! बात पूरी हुई।'

'जैसे आप अनन्त से बात नहीं कह रही है, बल्कि कुमार को हला रही है। जो सामने बैठी है उन्ही की बात तो मालूम करनी है वे अभागिन क्यों?'

'अपने अभाग्य को व्यक्त करने की शक्ति तो मुझमें नहीं है पर हाँ तक शब्द मेरा साथ दे सकेंगे, कह दूँगी। सबसे छोटी होने के रण बचपन में माता-पिता और सब बहनो का लाड-प्यार मुझे बहुत मिला। मँझली बहन की शादी के बाद मेरा नम्बर आया। पिताजी ा बहनो की शादी मे अपना करीब-करीब सभी कुछ बर्बाद कर चुके। इसलिए उन्हें मेरे दहेज और विवाह की चिन्ता सुख की नींद सोने भी नहीं देती थी। यही हालत बेचारी अम्मा की भी थी। फिर भी वे मेरे भविष्य को सुखी और उज्ज्वल देखना चाहते थे। दोनों ने अपने प्रयत्नो में कोई कसर बाकी न रखी। अनेकों स्थानों से उन्हें सलिए निराश होकर लौटना पड़ा कि रुपयों की संख्या जो दहेज के ाम पर उनके ससुर आई कि वे रुपये तो क्या उतने बाल भी उनके

बना पाया ?'

'यह तो फिर कल का ही विषय आ गया।'

'कल आप ममता नहीं थीं, इसलिए कल आपने नहीं सुन आज तो आप ममता बन गई हैं, आज तो सुनाइए। एक क्षण के ही मनुष्य में बहुत कुछ परिवर्त्तन हो जाता है, इसमें तो हम एक का पूरा परिवर्त्तन कर चुके हैं। मैं सुनना चाहता हूँ वह कौनसी थी जिसे आपने कल टाल दी थी।'

वे बोलीं—'आप मानते ही नहीं तो आज सुना दूँगी, आप गाना तो सुन लें !

उस रोज वे गायक एक दो और चीजें गाकर बन्द हो मैंने कहा—'लीजिए ! अब तो गाना भी बन्द हो गया अ सुनाइए !'

वे जिस दीवार के सहारे खडी थीं वहीं खडे-खडे उनका विवर्ण हो गया।

'मैं इस प्रकार नहीं सुनना चाहता—पहले आप बैठ जाइए सुनाइए।'

अब वे मेरी खटिया पर बैठने मे संकोचहीन हो चुकी थीं। ही पास थोडी दूरी पर आकर बैठ गईं।

'मैं नहीं समझ पा रही हूँ कि आप मेरी जीवन-गाथा सुनने लिए इतने अधिक उत्सुक क्यों हैं ? जिस का परिणाम ही कुछ न उसका कहना ही मुझे तो व्यर्थ-सा प्रतीत होता है।'

'भले ही परिणाम कुछ न हो आप बात तो कह जाइए !'

'सुनिए ! भाग्य से हम अपने पिता के तीन लडकियाँ ही हुईं माता पिता और सबकी यही इच्छा थी कि हमारा एक भाई होता कि दुर्दैव की कठोरता के कारण यह अभिलाषा पूर्ण न हो सकी। ईश्वर

सी की न सुनी । मेरी बड़ी बहन की शादी एक स-हृदय परिवार में ई थी, किंतु वे बेचारी तो अपनी बहुत ही थोड़ी सी जिंदगी लेकर ड़ें थीं । विवाह के दो वर्ष बाद ही ईश्वर ने उन्हें इस संसार से ठा लिया । उनकी शादी और दहेज की रकम के कर्ज से पिताजी क्त भी न हो पाए थे कि मँझली बहन की शादी करनी पड़ी । ह्नोई दफ्तर में क्लर्क हैं । चालीस-पचास रुपये पा जाते हैं । धारणतया वे सुखी हैं । दु:ख इसी बात का है कि उनके घर में कोई ई बूढ़ी नहीं है ।'

'क्या कुमार साहब उन्हीं के चिरंजीव हैं ?'

'जी हाँ, आप उन्हीं के शाहजादे साहब हैं । और तीसरी भागिन मैं हूँ । आपके सामने हूँ । लीजिए ! बात पूरी हुई ।'

'जैसे आप अनन्त से बात नहीं कह रही हैं, बल्कि कुमार को हला रही हैं । जो सामने बैठी हैं उन्हीं की बात तो मालूम करनी है कि वे अभागिन क्यों ?'

'अपने अभाग्य को व्यक्त करने की शक्ति तो मुझमें नहीं है पर हाँ तक शब्द मेरा साथ दे सकेंगे, कह दूँगी । सबसे छोटी होने के ारण बचपन में माता-पिता और सब बहनों का लाड़-प्यार मुझे बहुत मिला । मँझली बहन की शादी के बाद मेरा नम्बर आया । पिताजी ो बहनों की शादी में अपना करीब-करीब सभी कुछ बर्बाद कर चुके थे । इसलिए उन्हें मेरे दहेज और विवाह की चिन्ता-सुख की नींद सोने भी नहीं देती थी । यही हालत बेचारी अम्मा की भी थी । फिर भी वे मेरे भविष्य को सुखी और उज्ज्वल देखना चाहते थे । दोनों ने अपने प्रयत्नों में कोई कसर बाकी न रखी । अनेकों स्थानों से उन्हें इसलिए निराश होकर लौटना पड़ा कि रुपयों की संख्या जो दहेज के नाम पर उनके सम्मुख आई कि वे रुपये तो क्या उतने बाल भी उनके

सिर में नहीं थे। अन्त में पिताजी और बहनोईजी ने मिलकर
शादी एक जगह निश्चित की। यद्यपि उन दोनों की इच्छा न
लेकिन मजबूरी का नाम सब्र है। इसी प्रकार उन दोनों को सब्र
पड़ा। शादी के दिन भी निश्चित हुए। मैं विशेष वि
द्वारा विशेष रूपा भी बनाई गई। यदि आप मुझे बे-श
समझें तो मैं आपसे यहाँ यह भी कहूँ कि लड़की अपने
के दिनों में जितनी ऊँची कल्पना करती है, वह एक लड़
दिल ही समझ सकता है, पुरुष इस बात को भली भाँति नहीं
सकते। संसार चाहे जो भी कल्पना करता हो पर मेरी तो कल्पन
उनके प्रति बहुत ही ऊँची, भिन्न और अवर्णनीय थी। बरात आई
नेग दस्तूर होने लगे। और वे महाशय जब द्वारे आए तो मे
सहेलियों ने मुझे घसीटकर उस जाली के पास खड़ी कर दी, जहाँ
उनके दर्शन हो सकते थे। दर्शन हुए। उनके चेहरे को देखकर मे
चेहरा उतर गया और इस बात को वे सब भी ताड़ गईं। इधर-उ
घुस-पुस होने लगी। माँ के कानों तक भी यह समाचार पहुँचा।
बेचारी क्या करती। उन्होंने पहले तो मैना की भाँति दुःख प्रकट कि
किंतु फिर भाग्य और विधि-विधान के नाम पर वे उस बात को भूल
अपने कार्यों में लग गईं। मेरी माँ बहुत ही भोली हैं और माँ से अ
पिताजी। जब कभी वे आपस में एक-दूसरे के भोलेपन का बखान क
लगते है तब हम लोग कह देते हैं, रहने दें आप लोग दोनों ही तो
से हैं। किसी बुढ़िया की झुर्रियों से घिरी हुई रसहीन आँखों ने,
देखकर उन्हें जैसा समझा दिया कि बेचारी वैसा ही समझ गईं
वह अवस्था भी ऐसी ही होती है कि उस समय का विरोध मर्याद
और बेकार होता है। मैं मूक पशु की भाँति थी। मेरा तो उन स
का एक शब्द भी हिंदू संस्कृति की मर्यादा का दुश्मन था।

शादी हो गई और मैं अपने नैहर के जीवन को बरबस छोड़कर जैसे सुख किसी ने छीन लिया हो, ससुराल चली गई। ससुराल ही लड़कियों की वह मंजिल है जहाँ सारे अंतर, सारी मंजिल और सारी गति वहाँ पहुँचते ही पूरी हो जाती है। ससुर तो भाग्य से मेरे पहुँचने के पूर्व ही अपनी जीवन-यात्रा समाप्त कर चुके थे। एक बहुत ही अच्छी सु-पात्र सास मिली और उन्हीं के पेट से पैदा हुई, उन्हीं के स्वभाव का तद्रूप और उन्हीं के गुणों से सम्पन्न ननद देवी मिली।'

मैंने कहा—'सास ननद की ही माँ होती है और ननद सास की ही बेटी। इसलिए स्वभाव तो एक होना ही चाहिए। अधिक संख्या यदि अच्छे स्वभाव के व्यक्तियों की हो तो एक बुरे स्वभाव का व्यक्ति भी निभ सकता है।'

मेरी इस बात से उन्हे धीमी सी हँसी आई जिसके अर्थ समझने मे मैं असमर्थ था।

'मेरी शादी शीतकाल में हुई थी और मेरी ससुराल में ओढ़ने-बिछाने के कपड़ो का भी अभाव था। खैर! मुझे कपड़ो से क्या करना था। चौके में बर्तनो की भी कमी होगी। हरएक घर मे कुछ-न-कुछ कमी होती ही है। दाल और शाक का भी घाटा, इसे भी जाने दीजिए, यह भी साधारण गृहस्थो मे होता ही है। यह मुझे कुछ भी न खला क्योंकि मैंने अपना ही तो घर मान लिया था। इन सब कमियो के बाद उन सबकी हृदय-हीनता का अभाव मुझे इन सब चीजों की कमी से अधिक खलता था। जहाँ गरीबी अपना आसन बिछा लेती है वहाँ लड़ाई, झगड़े और रात दिन की दाँती अवश्य ही विराजमान हो जाती है। मेरे जाने के आठ-पन्द्रह रोज बाद ही घर मे लंका काण्ड आरम्भ हो गया और वह तब कहीं खत्म हुआ होगा जब मैं निर्वासिता करके वहा से निकाल

दी गई और अपने बाप के यहां पहुँचा दी गई।'

उनके इस निर्वासित वाले कथन ने मेरे दिल में एक धक्का-सा मारा। यह क्यों? मैं इनके विषय में क्या सोचता था और यह क्या पहेली है। मैं जानता तो नहीं था परन्तु समझता अवश्य था कि किसी हिन्दू नारी का घर से निर्वासित होना कितनी बुरी चीज है।

मैंने उत्सुकता से पूछा—'आपके पतिदेव, आपकी सास-ननद की लड़ाई के समय आपकी सहायता नहीं करते थे?'

वे कारुणिक होकर बोलीं—'मेरे जीवन का कारण रूप तो वे ही हैं और उनके जीवन का कलह रूप मैं। एक बात यह भी इस सिलसिले की है कि मैंने यदि पति सुख और गृहस्थानन्द का अनुभव किया है तो वह गालियों के रूप में जो मेरे साथ-साथ मेरे माता-पिता को भी मुंह भर-भर कर दी जाती थीं और वे चाँटे, घूँसे और लातें थीं जिनके लिए उनका हृदय मुझे प्रदान करने के लिए सदैव ही उत्सुक और व्याकुल रहता था। मेरा देखना, चलना, और काम करना सभी ऐसा था कि ननंद और ननद नहीं तो सास को मानो महायुद्ध की खुली घोषणा कर देनी पड़ती थी। पुरे पड़ोस की तो क्या लेकिन पूरे गाँव की स्त्रियाँ और पुरुष उन तीनों की वीरता और जंगे जौहर का लोहा माना करते हैं। गाँव में उन तीनों को छोड़कर और कौन व्यक्ति ऐसा है जो उनकी समझ से अच्छा है और उसमें अनेकों दुर्गुण नहीं हैं।

'ननद रानी का कार्य है घर-घर जाकर नये संवादों का संग्रह करना। सास का काम है उन्हें प्रेम पूर्वक सुनकर उनपर टीका टिप्पणी करना। ननद साहिबा में दो गुण और विशेष हैं, चोरी और मुँह जोरी। उसी प्रकार सास साहिबा में भी दो विशेषताएँ हैं;किसी की भी सात पीढ़ी का बखान करना और यदि कोई सवा सेर प्राणी मिल गया तो घर में आकर रोना। सारी रात उँगलियाँ चिटकाना और पानी पी-पीकर

को।नना ।'

मैंने कहा—'तब तो लंका काण्ड करने वाले साक्षात लंका के ही प्राणी थे ।'

वे बोली—'और तो किसी ने लंका काण्ड लिखा ही नही। जो भाग्य से कही गोस्वामीजी को स्मरण हो जाता और वे लंका की सास, बहू और ननद का वर्णन करने लगते तो रामायण भी और बढ जाती और गालियाँ भी बहुत खाते। वे जब सृष्टि कर्त्ता भगवान को ही सैकडों सुनाती है तब गोस्वामीजी कहाँ बचते।'

'श्रीमतियो का तो संक्षिप्त सा परिचय मिला। अब श्रीमानजी का भी तो कुछ परिचय दीजिए।'

वे बोली—'पिताजी और जीजा जब बातें करते थे तब माँ कहती थी—डील-डौल मे लडका अच्छा है तो क्या है जब नौकरी-चाकरी करे कुछ कमाए तब न!'

जीजा कहते—'अभी गृहस्थी नहीं है तो अलमस्त बने फिरते हैं जब शादी हो जायगी तो अपने ही आप नौकरी करनी पडेगी अथवा और कुछ धन्धा करके कमाना पडेगा।' और बेचारी माँ ने समझ लिया कि ऐसा ही हो जायगा। परन्तु भाग्य? वे शादी के बाद भी मलूकदासजी के उस दोहे को नही भूले—

*'अजगर करै न चाकरी, पक्षी करै न काम,*
*दास मलूका यो कहे, सब के दाता राम।*

'वे बचपन के पहलवान है। उन्हे यदि कोई शौक है तो पहलवानी का, यदि कोई काम-काज है तो कसरत का और . ।'

'क्यो? क्यो? रुक क्यो गई' कहो ममता!'

वे लज्जित होकर नीचे गर्दन करके बोली—'यदि उनको कोई सबसे अधिक दुश्मन मालूम होती है तो स्त्री और वह स्त्री जिससे

उनके जीवन का निकट सम्बन्ध हो।'

'जीवन निर्वाह के साधन क्या है ममता?'

बाप दादों के जमाने की चार–छः बीघा जमीन है। दो-चार आम--जामुन के पेड है, बस उसी आमदनी पर जीवन और परिवार का निर्वाह है।'

'क्यो ममता, पहलवान है तब तो वे सुन्दर होंगे, फिर आपका चेहरा उनके चेहरे को देखते ही क्यों उतर गया था?'

'अब मैं क्या कहूँ। जो कुछ भी है ठीक ही है। अब मैं कौन हू जो सुन्दर असुन्दर का बखान करूँ। स्त्रियो का एक स्वभाव होता है। उन्हे वह असुन्दर व्यक्ति भी प्रिय हो जाता है, जो स्वभाव का सुन्दर हो। परन्तु स्वभाव का असुन्दर रूप का सुन्दर होकर भी किसी किसी को खलता है, जिसमे तो वे दोनो मे ही एक से हैं। तीसरी विशेषता यह है कि विद्या से उनका कभी कोई रिश्ता नहीं रहा। यदि विद्या ही पढते तो डंड बैठक कौन लगाता और उन्हें रास्ते चलते हुए पहलवान कौन कहता। इसीलिए पढना जहाँ से शुरू किया था वहीं से उसे खत्म कर दिया। सास साहिबा का आज भी यही खयाल है कि पढने से आँखे खराब हो जाती हैं और शरीर क्षीण हो जाता है। रहा बुद्धि का व्यापार, सो मस्तिष्क के ज्ञान तंतु इतने मोटे और बेडौल हो गये कि उनमे तीक्ष्णता का नाम भी नहीं रहा। रही बुद्धि विषयक कार्यों के काम चलाने की बात, सो उनकी माँ--बहन समय-समय पर उन्हे उधार देकर उनका काम चला देती है, क्योकि उन दोनो के पास सारे जमाने की बुद्धि गिरवे रखी हुई बहुत रहती है।'

उन्होंने एक लम्बी साँस ली और कहा—'ये दुख की कहानियाँ हैं इनका कभी अन्त नहीं होता। कहते जाओ और ये वामन के रूप की तरह बढती ही जाती हैं।'

मैंने कहा—'वह बात और सुना दीजिए कि आपका निर्वासन कैसे हुआ, फिर और कोई प्रश्न नहीं करूँगा।'

'विवाह का जो कलंक था वह तो मुझे लग गया परन्तु न तो कभी पति सेवा का सौभाग्य मिला, न मैं उस घर की एक भी रोज गृहिणी ही बन सकी और न कभी उन्होंने ही यह सोचा कि यह मेरी स्त्री है, मेरे किसी उपयोग की चीज है। मैंने अपनी जानिब से उनकी एक भी फरमाइश कभी नहीं टाली। न अधिकारिणी की हैसियत से मैं किसी बात का विरोध कर सकी। मेरी अभिलाषा, इच्छा और फरमाइशो के जाहिर करने का तो मुझे एक रोज भी अवसर नहीं मिला।

कुछ दिनों तक तो दहेज के रुपयों से दूध, मलाई, रबडी का काम चला, जब वे खत्म हो गये तो जेवरों का नम्बर आया। जो मुझे दहेज मे पीहर से मिले थे, वे बिकते रहे। रही सही जरूरते मेरे कपडों पर आकर उतरीं। भाई के हाथ लगे तो भाई बेच आए, बहन जी के हाथ लगे सो बहन ने चुरा कर धर लिए। इस प्रकार थोडे दिनो मे ही कपडों की पेटी का भी दिवाला निकल गया।

मैं एक से अधिक दूसरे से डरने लगी थी। कारण कि स्वभाव एक का दूसरे से अधिक तेज था। इसलिए जो भी कुछ होता था खून के घूँट की तरह सहन करके रह जाती थी। एक रोज ननद साहिबा ने कहा—'भौजी, भैया अंगूठी मंगा रहे है ?' मेरे शरीर पर जेवर के नाम पर केवल वह एक छल्ला ही शेष रह गया था जो मेरे बडे बहनोई ने मुझे दहेज मे दिया था।

उसे देते हुए मैंने कहा—'लो ! ये ले जाओ, अब और क्या है, अब तो मैं पूरी हीं बाबाजन हो गई। बस केवल इतने ही शब्द मेरे मुँह से निकले थे। ननद ने भगवान जाने क्या कहा क्या नहीं।

पर परिणाम जो हुआ वह यह था कि पहले तो सास ने वेलन, झाड़ू, चिमटा जो भी हाथ में आता गया, मेरी भली प्रकार पूजा की और जब श्रीमान् जी उसे बेच बाच कर आए तब तो कहना ही क्या था। उनकी सारी पहलवानी एक मूक, असहाय अबला पर बरस पड़ी। ईश्वर ही जाने उन रोज मेरे पापी-प्राण कहाँ अटके थे। मरी क्यों नहीं, जाने किन अपराधों के लिए ये प्राण रह गये। अच्छा होता यदि उस रोज मेरा इस शरीर से अंत ही हो गया होता और उस सत्कार के बाद मेरा निर्वासन प्रस्ताव सर्व सम्मति से पास हो गया। मैं हाथ पकड़ कर घर से बाहर निकाल दी गई। जन्म-जन्म के त्याग की करुणा—कसनी हुई। उस समय जो भी दृश्य हुआ होगा, उसकी आप ही कल्पना कर लीजिए। मैं वैसी की वैसी ही एक वृद्ध बटाईदार के साथ टिकिट कटवा कर अपने पिता के घर रवाना करवा दी गई।

रास्ते में उस बेचारे बूढ़े काछी को मेरी दया आई। उसने मुझे बरजोरी पूड़ी दिलवा कर सौगन्द दे देकर खिलवाई। रास्ते भर उनकी दो पीढ़ी पहले से कीर्तिबखान करता हुआ मुझे नैहर ले आया। इतना अच्छा हुआ कि वह मेरे माता-पिता और गांव वालों को मेरा निर्दोष होना सिद्ध कर गया और पिताजी से कह गया—'पंडित! समझ लेना बिटिया का विवाह ही नहीं हुआ। उन हत्यारे-पापियों के यहाँ अब न भेजना, चाहे वे हजार माथे के हो जाएँ।

बस तब से मेरी जिन्दगी यों ही पूरी हो रही है। कभी बहन आती है तो एक दो माह के लिए अपने यहा ले जाती है, नहीं तो अपना घर भला और अपन भले!'

उनकी इस जीवन-गाथा ने मेरा मन बुरी तरह दुखा दिया। मैं खिन्न हो गया। इस अनिश्चित संसार से और इसके इस अनहोने कृत्यों से। मुझे तुरंत ही उस गायक की वे लाइनें याद आ गईं।

'बलाएँ लूँ मैं उस दिल की जो दुनियाँ के लिए रो दे।
जहाँ वालो के रंजोगम को अपने खून से धो दे।'

वे तो कहकर चुप हो गईं, लेकिन मेरे मन मे तो मानो विचारों का उदधि उमडने लगा। अनेक विचारों ने मेरे मन को पुनः चोर की भाँति घेर लिया। मैं अपने ही आपमे बेचैन-सा होकर उठ खडा हुआ और जाने किन-किन विचारो मे दरवाजा खोल कर बाहर हो गया। बाहर की दुनिया अशांत हो रही थी। कल ही की तरह तारे विलीन हो रहे थे। पक्षियो की प्रभाती वृक्षो की प्रभात वायु मे गूंज रही थी, मुसाफिरों की पद-ध्वनि के अनेकों शब्द। भगवान के नामो का जहाँ-तहाँ स्मरण और पूर्व मे सलोनी अरुणिमा का वही सुहावना अंचल फैलता जा रहा था।

फिर सोचा समय हो गया है नित्य-कार्य से निश्चिन्त हो लें। इसी इरादे से अन्दर आया और उनसे बोला—'ममते! दिन तो निकल आया है, हाथ मुँह धो लेना चाहिये।'

'जी'

'बिना नहाए तो जी नहीं मानेगा, बहुत पसीना निकला है।'

'थोडी देर बाद धूप निकल आएगी तब गरम पानी कर दूंगी, उस समय चाहो तो नहा लेना, अभी नल के ठंडे पानी से न नहाइए!'

'गंगा नहाने नहीं चलना है क्या?'

'आज तो यहीं से गंगा मैया के हाथ जोड लेंगे।'

मैं ममता की ममता पर हँसता हुआ जब लोटा लेकर नीचे जाने लगा तब वे बोलीं 'ठहरिए! मैं भी चलती हूँ'—और ठीक पहले दिन की ही तरह हम लोग नीचे उतरे।



## मानसिक द्वंद्व

ममता की जीवन–गाथा ने मेरे मन को भारी कर दिया था। मेरी मानवी और दैवी बुद्धि मे द्वंद्व–सा चलने लगा। 'मानवी बुद्धि कहती थी ममता पति--परित्यक्ता है। पुरुष जाति की क्रूरता से इसका यौवन–तरु झुलसा जा रहा है। इसकी आत्मिक मरुभूमि मे यदि कोई आज भी उपवन लगा सके तो वह उर्वरा होकर जीवन-प्रसून खिला सकती है और जीवन सौरभ से सुरभित और सुगन्धित हो सकता है।' किन्तु । बस किन्तु जहाँ पैदा होता कि मै बच्चों के खिलवाड की तरह अपने विचारो को तोड-मरोड कर पुनः वहाँ पहुँच जाता जहाँ से चलकर मैंने जीवन को सुगन्धित बनाने तक की कल्पना कर डाली थी।

मुझे किन्तु के साथ ही समाज का सुरसा–सदृश्य भयानक रूप दिखलाई देने लगता। अपने कुल की मर्यादा सिन्धु की गुप्त निशिचरी की तरह मुझे ग्रस लेना चाहती थी और रहा सहा भारतीय–संस्कृति लंकनी की क्रूरता लिये मानो सामने ही खडी हो। इन सबसे मुकाबिला करने के लिए न तो मुझमे हनुमानजी की तरह पराक्रम ही था और न कोई पवित्र कार्य ही था, जिसके लिये मुझे येन–केन प्रकारेण प्रयत्न करके पूरा करना ही श्रेयस्कर होता। मैं तो उत्थान के शिखर पर बैठकर पतन की कल्पना कर रहा था, जो मेरे कुविचारो के रो पर ही तुषारावात करके खत्म कर देती थी।

किस व्यक्ति को पाप की कुकल्पना दहला नही देती? सोचता—'आज जबभी मैं अपने गाँव में जाता हूँ तो गाँव के बच्चे से लेकर बूढे तक मेरी प्रशंसा करते नही अघाते। जाति वालों

लेकर हरिजन जातियाँ तक मेरी सराहना करती है और वह केवल इसीलिए कि मैं उनकी दृष्टि मे चरित्रवान लडका हूँ। भले ही मुझ मे हजारहों गुण हो और चरित्र की साधना न हो तो गॉव वालो की शुद्ध तराजू की तौल मे बॉट ही ऑका जाऊँगा। मुझ जैसे और भी कितने ही लडके है जिनके चरित्र पर उन्हे सन्देह है, आज इसीलिए वे उनके उदाहरण बने हुए है। वे मुझे जानते है गरीबी से पढा-लिखा है। मॉ-बाप के सुख से वंचित है। परिवार और सम्बन्धियो ने कभी भी इस आशंका से अपना हाथ नही फेरा कि कही कुछ मॉग न बैठे। फिर भी दो लक्षण सीख लिये तो बडे-बूढो का नाम तो है।'

कभी-कभी कोई कह बैठता है। 'अनन्त भैया, अब तो तुम पढ-लिख भी लिए हो। पैरो पर भी खडे हो गये हो और कमाने-खाने भी लगे हो, अब तो ब्याह कर लो।' और उन भोले प्राणियो को मैं संक्षेप मे उत्तर दे देता हूँ—'अभी और थोडे दिन सब्र से काम लो।' कितनी ही बडी बूढियॉ मेरी शादी मे नाचने-गाने की आशा मे हैं। कितनी ही चाची भाभियॉ मेरी ऑखो मे काजल और हाथ मे महदी लगाने को उत्सुक है। कितने बचपन के साथी बरात मे जाने को तैयार हैं और कितने ही प्रियजन खाने-पीने के मौज-मजे को अपने दिल मे छिपाए हुए है। वे सब क्या कहेगे, मैं उन सब को मुँह कैसे दिखलाऊँगा?

मेरे कुल मे आज तक तो किसी ने ऐसा नही किया। यहाँ तक कि सगाई तक भी नाई और भाट ही पक्की कर आते थे और वे लडकी के विषय मे जो भी कुछ बखान करते थे, वही बात सब परिवार मान लेता था। पुरुष तो दूर रहे पर स्त्रियों तक ने भी कभी लडकी को देखने की इच्छा प्रगट नही की। केवल कुल और कुलीनता

के नाम पर ही उनके जीवन का आदान-प्रदान हुआ और जो जिसे मिली उसने उसे ही अपने घर की लक्ष्मी करके माना। कभी अपने जीवन में तूफान तो क्या लहर भी पैदा न होने दी।

धर्म पुण्य किए, तीर्थ-व्रत किये। पर अपनी पत्नी मानने में उन्हें तनिक भी संकोच न हुआ। माना कि ये बातें बहुत पिछले जमाने की है। उस समय पाश्चात्य सभ्यता का इतना प्रसार न था न इतना बोल-वाला ही था। किंतु हमारी अपनी शिक्षा की भी कमी न थी न वे किसी भी तरह अशिक्षित ही कहे जा सकते हैं। उनमें आज सी सौन्दर्य-परस्ती भले ही न थी, किंतु जीवन की पवित्रता मे भी कोई सन्देह न था। आज यदि उनमे से कोई एक भी होता तो परंपरा के निर्वाह मे और कुल की मर्यादा मे मुझे तनिक भी हस्तक्षेप करने का अधिकार न था। आज मैं उनके अभाव में अपनी इच्छित लड़की का चुनाव तो कर सकता हूँ, उस अवस्था मे तो निरन्तर मौन ही धारण करके रहना पड़ता।

काश यदि उनकी आत्मा स्वर्ग मे होगी तो मेरे इस कृत्य पर क्या कल्पना करेगी जिसकी मेरे मन मे अज्ञात लहर उठ खड़ी होती है, क्या कहेगी अपने इस वंशज को ?

संस्कृति मे तो एक पग भी रखने की गुंजाइश नहीं। एक असहाय स्त्री की रक्षा का उत्तरदायित्व अपने ऊपर मान कर उसका भक्षक बन जाना। किसी विवशता मे पड़ी हुई नारी को विश्वास के नाम पर विष दे देना। एक पर पुरुष की स्त्री को महज़ अपनी दुर्बलता के कारण भ्रष्ट कर देना और फिर जीवन के लम्बे-निर्वाह के लिये उससे मुँह मोड़ लेना। उदासीन हो जाना अथवा उसे दोषों से ढक कर आप दूर खड़े हो जाना। यह तो अपने ही हाथ अपनी प्यारी संस्कृति जिसके कि हम एक प्रतिनिधि हैं, सदस्य हैं, गला

घोंटना है। पूज्य जनों के उपदेशों के खिलाफ। ऋषि-मुनियों की आज्ञा के विपरीत और धर्म ग्रन्थों के मतों से भिन्न सा समझकर बेसमझ बनना, संस्कृति के साथ कुठाराघात करना है।

इन सब विचारों और विवेचनाओं के बाद भी तारुण्य का वेग इतना बलवान होता है कि वह आदि-अन्त के विषय मे तरुण को निरा अन्धा बना देताहै और इन उपरोक्त समस्याओं को बहा ले जाने के लिए उसे कटिबद्ध कर देता है। संसार की हजारो फलती फूलती वाटिकाओं को ध्वंस करदेने का श्रेय इसी तरुणाई को है। रूप-दर्शन के साथ तरुण हृदय बाँसों उछलने लगता है। लोक लाज और कुल-कान जिससे भयभीत रहती हैं। धर्म और ईमान जिससे काँपा करता है। आचार और विचार जिससे दूर-दूर भागते रहते हैं। वह तरुणाई ही है और मेरे साथ भी वही थी। वह मुझे बार-बार अपने सिद्धातो से गिरा लेने के लिए झकझोरती थी।

रूप, सो भी असाधारण जो मनुष्य तो क्या मुनि और देवताओ को भी जिसने समय-समय पर परास्त कर दिया है। महान तपस्वियों को भी जिसने अपनी मोहकता से तपहीन कर दिया है। महान व्रतियों के व्रत को बात की बात मे भंग कर दिया है और महान योगियो के योग को जिसने अपने एक ही निशाने में भ्रष्ट कर दिया है। वही रूप, वैसा ही स्वरूप मेरे सम्मुख था और उस रूप की स्वामिनी के हृदय की निकटता मे तो कोई अन्तर ही न था।

मैं नीचे से ऊपर आ गया। थोड़ी देर यों ही टहलता रहा। फिर लेट गया और चुपके-चुपके मनन भी करता रहा किन्तु मेरा मस्तिष्क विचारो से मुक्त न हो सका। वे स्नान कर आई थीं और मेरे अनुरोध से उन्होंने वही नीली साड़ी पहन लीथी। जाने क्यो वे मुझे काली साड़ी की अपेक्षा नीली मे अधिक अच्छी लगती थीं। वे कुमार को जगाने

लगीं और मैं उनसे बिना ही बोले चाले, बिना ही कुछ कहे सुने, टहलने के इरादे से उसी वाटिका मे चला गया।

रामदीन ने मुझे सबेरे ही टहलते देखा तो उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। मेरे पास आया और मुझे अपनी रात की दौड़ धूप और सेवा की बाते सुनाने लगा। मुझे उस समय रामदीन को टहलने और उनसे बाते करने मे जो विशेष दिलचस्पी थी उसका कारण था ममता के मुँह से रामदीन को सुनी हुई रामकहानी। रामदीन यह बात न सोचकर यही सोच रहा था कि आज मालिक मुझसे अत्यन्त प्रसन्न है, तभी इस प्रकार मेरी बाते सुनने मे मशगूल है।

मैंने ममता की सुनाई हुई बात को ही जरा दूरी से छेडी, जिससे वह यह न समझ ले कि रामदीन की कहानी मलकिन मालिक को कह चुकी हैं। रामदीन थोडा-थोडा खुलने लगा और उसकी चाह भरी मुँह को अनेक बनके मेरा विनोद करने लगी। इसके बाद मैंने उसे कमरे मे जाने को कहा और कुमार की सेवा का भार उसे सौंपकर पुन टहलने लगा।

थोडी ही देर मे सूर्य की रश्मियों से धर्मशाला चमकने लगी और चहलपहल से गूंजने लगी। मैंने कुछ देर और कई बातें सोच कर यह निश्चय किया कि ममता के भाव इस विषय मे क्या हैं, इसका और ठीक-ठीक पता लगा लेना चाहिए। उसकी निकटता तो उसके आत्म-समर्पण का ही सबूत है। फिर भी नारी हृदय सहज ही समझ मे नही आ जाता। कही दुख से प्रताडित होकर सहानुभूति चाहती हो तो किसे पता?

यदि ममता की आत्मा मे केवल शुद्ध-प्रेम का ही निश्चय है तो मेरी तनिक सी भी कुचेष्टा यहाँ तक कि एक भी शब्द की ऊँच नीच उसके हृदय मे मेरे प्रति घृणा पैदा कर सकती है और उसे खिन्न बना

सकती है। यदि ऐसा न होकर जैसा कि उसका व्यवहार है वैसे ही वह मुझे अपना शरीर भी अर्पण करना चाहती है तो उसके बाद मेरी यह उदासीनता उसे यों भी अखरेगी और वह मुझे जाने किस ढंग का व्यक्ति समझ सकती है।

यद्यपि उसकी अभी तक की बातों मे साधना ही प्रतीत होती है किन्तु इतनी अधिक निकटता मे उसके हृदय की कोई छिपी हुई चाह भी भरी हो तो क्या पता। मैं मन ही मन उस तरीके की तलाश करता हुआ कि—जिसके द्वारा मुझे ममता के हृदय की थाह लग जाए कि वह क्या चाहती है, वाटिका से कमरे में आया।

वही नीली साडी। भाल पर लाल बिन्दी। माग मे सिन्दूर और आँखो मे बारीक काजल की रेखाएँ। अधरो मे हलकी सी मुस्कान लिये खडी थी। पास मे मोटा-मोटा काजल लगाए कुमार महाशय भी खडे थे। मैं अपनी खटिया पर बैठ गया कि रामदीन हाथ मे गरम जलेबियों का दोना लेकर आया। कुमार उठा खडा हुआ। मैं भी उठा और कुमार की उत्सुकता पर मुग्ध होकर मैंने उसे गोद मे उठाकर चूम लिया।

वह मुस्कुराकर मेरे गाल पर हाथ फेर कर बोला—'आप कहाँ गए थे अभी ?'

'मैं घूमने गया था बच्चू, तुम चलोगे ?'

वह अपनी मौसी की ओर देखने लगा। मैंने कहा—'कुमार ! गंगा नहाने चलोगे न ?'

कुमार ने हाथ झटकाकर कहा—'नही' !

मैंने छाती से चिपका कर कहा—'डर गये हो बेटेजी, इसी लिए नहीं जा रहे हो।'

रामदीन तो दोना रखकर चला ही गया था। मैंने कुमार को

गोद से उतारकर कहा—'अब तुम नाश्ता करो!' और ममता से कहा—'ममता! आज हम शहर घूम आवें। अगर हो सके तो यहाँ मेरे एक दो व्यक्ति परिचित हैं, उनसे मिल ले। मेरा भी यही विचार हो रहा है कि मैं भी यहीं से इलाहाबाद चला जाऊँ।'

'यह तो बहुत ही अच्छी बात है। हम लोगों का पूरा ही साथ हो जायगा। आप हमारे घर भी चलेंगे न?'

'मुझे तो कोई एतराज नहीं है ममता, पर एक बात तो यह है कि वहाँ जाने मे एक दिन तो अवश्य ही लग जायगा और दूसरी बात यह है कि यदि वहाँ के लोग भी यहाँ वालों की तरह गलत समझ ले तो अच्छा नही लगेगा!'

'इस बात को आप क्यो चिन्ता करते है? वहाँ कोई पूछे तो मुझसे पूछेगा और मैं पूछने वाले को उत्तर दे लूँगी। आपसे कोई कुछ पूछे तो आप उसे कोई जवाब न देना। हमारे गाँव के मनुष्य ऐसे नही है जो बुरी बात सोच ले। आप जब मेरे पिताजी और अम्मा को देखेंगे तो आपको बहुत प्रसन्नता होगी। पर हाँ! देहात मे खपरैल और फूस के टूटे-फूटे मकान है। सेवा-सत्कार के लिए दाल दलियाँ ही मिलेगा, जाने आपको रुचेगा या नहीं?'

मुझे अपने देहात का स्मरण हो आया और निश्चित स्वर में बोला—'ममता, मैं अवश्य चलूँगा। मैं तो तुम्हारे ही कारण सोच रहा था कि मेरे कारण तुम्हारे विषय मे यदि कोई ऐसी-वैसी बात पैदा हो जो तुम्हे दुखप्रद हो सो मैं नहीं चाहता। बाकी तुम्हारे पिता जी के दर्शन की तो मुझे हार्दिक इच्छा है ही और घर तथा उस देहात को देखने से मुझे कुछ कम आनन्द नहीं आएगा।'

'तब आपका इरादा पक्का है न?'

'हाँ, हाँ, पक्का है ममता।' मेरे मन की पूछो तो मैं य

चाहता था, किन्तु मैंने अपने संकोच का स्पष्टीकरण तुमसे करा लिया। मैं मालूम करना चाहता था कि ममता का इस विषय में क्या मत है।'

ममता हँस कर बोली—'अच्छा यह बात है!'

रामदीन को बुला कर मैंने उससे भोजन की व्यवस्था तैयार रखने को कहा। अब मेरा हृदय ममता से अधिक खुल चुका था। मुझे उससे कोई भी बात करने में संकोच प्रतीत नहीं होता था।

मैंने कहा—'ममता! मेरे कपड़े निकाल दो जो तुम्हें पसन्द आएँ।' ममता ने धुली हुई धोती, गंजी और खादी का कुरता निकाल कर कहा—'लीजिए!'

कुमार को शर्ट और नेकर पहनाया। आपने केवल चादर ही ओढ़ कर कहा—'चलिए! पर जल्दी ही लौट आना होगा। धूप में आपको अधिक नहीं रहना चाहिये। आपके रात के हाल देख कर मेरा तो दिल दहल गया। कितने जोर का ज्वर और क्षण-क्षण पर पसीना आ रहा था। सारे कपड़े और बिस्तर गीला हो गया था।'

'नहीं ममता, आज मैं ज़िद नहीं करूँगा। तुम कहोगी उसी समय लौट आएंगे। अब मेरा हृदय तुम्हारे प्रति इतना श्रद्धालु हो गया है कि तुमसे जरा भी ज़िद नहीं करना चाहता। मुझे अपनी मौज पर चलने की अपेक्षा तुम्हारी इच्छा पर चलना ज्यादे अच्छा मालूम होता है।'

हम लोग कमरे का ताला बन्द करके नीचे आए तो रमेश महाशय अपनी प्रेमिका के साथ बाहर से धर्मशाला में आते हुए नजर आए। मैंने ममता से कहा—'यही रमेश महाशय है और आपकी प्रेमिका के भी दर्शन कर लेना जरा।' रमेश ने तो मुझे देखकर अपनी नजर नीची कर ली पर श्रीमती जी ने तो मुझे ऐसा देखा मानो

निहिनी अपने बच्चे के शिकार करने वाले शिकारी को देख रही हो। उसके बाद उसने अपनी दृष्टि को और गहरी करके ममता को सिर से पैर तक देख कर एक अजीब ढंग का मुँह बना लिया, मानो ममता उसकी दृष्टि में ममता नहीं घृणा की वस्तु है। ममता ने भी एक सरसरी नजर से दोनों को देखकर अपनी दृष्टि सामने फेर ली। थोड़ा दूर आगे जाकर मैंने कहा—'देखा ममता, प्रेम व्यापार के कैसे-कैसे सौदे हो जाते हैं।'

भावों की स्वच्छन्दता से ममता ने कहा—'कुछ पुरुष तो बड़े ही निलज्ज होते हैं। और कुछ नहीं तो मनुष्य को अपनी समानता का तो ख्याल करना चाहिये। उसका रंग, उचाई और उम्र भी रमेश से कितनी ज्यादा मालूम होती है। यह रमेश भी बड़ा बेअकल और हैवान मिजाज आदमी मालूम होता है।'

इसी प्रकार की बातें करते हुए हम लोग सड़क पर पहुँच गये और वहाँ से एक ताँगा करके वैकुण्ठ बाजार पहुँचे। देव-दर्शन किये और हृदय से भगवान से अनुरोध किया कि प्रभु मेरी मानसिक डॉवाडोल स्थिति को दृढ़ करके मुझे आत्म बल तथा बुद्धि दो। ममता ने नेत्र बंद करके भगवान से क्या प्रार्थना की, कुछ पता नहीं। बाहर आकर मैंने पूछा—'ममता, तुमने भगवान से क्या-क्या माँगा?'

ममता ने मेरी आँखों में अपनी तेज रोशनी डालकर कहा—'कुछ भी माँगा हो आपको क्या करना है?'

मैंने सीढ़ी से उतरते उतरते कहा—'मैंने तो भगवान से तुम्हें ही माँगा है!'

ममता ने गर्दन हिलाकर कहा—'वाह! बड़ी अच्छी चीज माँगी आपने।' मैंने अपने विचारों का निष्कर्ष जो यह तय किया था कि मैं ममता की तलछट का पता लगा लूँ। ये बातें मैंने इसी

उद्देश्य से आरम्भ की थीं।

मैंने कहा—'ममता से अच्छी चीज़ इस संसार में और क्या हो सकती है!'

'मैं नहीं समझी ममता से आपका तात्पर्य क्या है?'

'ममता से मेरा तात्पर्य है ममता के हृदय में जो भी मेरे लिए स्थान हो उसे ज्ञात कर लेना और उसी पर अवलंबित हो जाना।'

वे मुस्कुराकर बोलीं—'ममता के हृदय में आपके लिए बहुत ऊँचा स्थान है, जिससे ऊँचा कोई स्थान ही नही हो सकता।'

आखिर ममता कब स्पष्ट हुई जो अभी हो जाती-और मुझे मेरे अर्थ में कह देती कि आपके लिए अमुक स्थानहै। उसने मेरी बातो पर से मेरी संदेहावस्था को बढाने के सिवा कुछ भी कम न की। मैंने भी सोच लिया कि रास्ते चलते हुए ऐसी बाते करना अच्छा नही। दोनों सामने की एक दूकान पर गये। मैंने अनेको चीजे उठाकर ममता से पसन्द करने का प्रस्ताव किया, परन्तु ममता के पास तो एक ही उत्तर था—'मेरे पास तो है, क्या करना हे लेकर।' फिर भी मैंने ममता की बिना अनुमति लिए ही कुछ ऐसी चीजें जिनका सम्बन्ध ममता के शृंगार आदि से था, खरीद ली। ममता मुझे धीरे-धीरे अपनी नाराजीसी दिखलाती रही किन्तु मैंने उस नाराजी की कोई परवाह न की।

थोड़ी ही दूरी पर एक तैयार कपडो की दूकान थी। दूकानदार एक नई उम्र का व्यक्ति था। उसने सीढी पर चढते ही—आइए, पधारिए, बिराजिए! की आवभगत आरम्भ कर दी।

मैंने कहा—'इस बच्चे के नाप के कपडे दिखलाइए?' उसने बढ़िया कपडो का ढेर लगा दिया।

मैंने ममता से कहा—'ममता! पसन्द करो?' ममता मुझ से मानो नाराज़ थी। बडी कठिनाई से बोली—'मैं नही जानती,

आप ही पसन्द कर लीजिए। मैं आपसे कहती हूं तो आप मानते भी तो नहीं।'

मैंने ममता की बातों का कोई उत्तर नहीं दिया, मानो अवहेलना की और कुमार के लिए शर्ट, कोट, नेकर, पैंट जो कुछ मुझे पसन्द आया छाँट कर कहा—'आप इनका बिल बना दीजिए।'

दूकानदार ने इसी बीच कई बार ममता की ओर देख कर ममता की रुख देखने की कोशिश की। फिर बोला—'कुछ बहन जी के लिए नई डिजाइन की चीजे दिखलाऊँ ?'

मैंने एक दृष्टि ममता की ओर डालकर देखा। ममता खूब गंभीर थी। एक बात यह भी थी कि मुझे ममता की नाराजी और चिढ मे मजा आने लगा था। मैंने कहा—'दिखलाइए ! अगर पसन्द आए तो ... !'

उसने शायद जो उसकी समझ मे अच्छे से अच्छे कपडे थे वही दिखलाए। ममता से पूछने पर उसका फिर वही उत्तर मिला—'मैं नही जानती, आपही पसन्द कर लीजिए।'

दो धोती जोडे मुझे पसन्द आए। मैंने उससे कहा 'इन्हे भी इन कपडो के साथ बाँध दीजिए।' दूकानदार ने मीठी तानेकशी करते हुए कहा—'मालूम होता है बहनजी नाराज है, तभी कोई कपडा पसन्द नही किया। कई एक बहन तो ऐसी आती हैं कि नाक मे दम कर देती हैं और कभी कभी तो ऐसा होता है साहब, कि बिक्री कौडी की भी नही होती और घण्टो तक यो ही सिरपच्ची करनी पडती है। दुकानदारी है।'

मैंने मुस्कुराकर कहा—'हाँ आज ये नाराज ही है।' दूकानदार ने मुझे प्रभावित करने और ममता की नाराजी मिटाने के खयाल मे

अपने नौकर से कहा—'जाओ जगन्नाथ, आठ-दस ठो पान के बीड़ा बनवा लाओ।'

मैं बोला—'साहब! इस खातिर की जरूरत नहीं है, आप पान वान की तकलीफ न कीजिएगा।'

दूकानदार नहीं माना। मैंने ममता से आँखो ही आँखों में कहा—'ये सब खातिर आपही के कारण है।' दूकानदारने कपड़े बाँधे। मैंने बिल चुकाया और पान खाकर हम लोग बिदा हुए। रास्ते में संजीदगी के साथ ममता ने मुझसे कहा—'आप तो कह रहे थे न कि, अब मैं जिद नहीं करूँगा। कल से कितने रुपये खर्च कर दिये आपने? मैं कहती हूँ तो मानते नहीं। अभी इन कपड़ों के बिना ऐसी क्या अटक रही थी?'

'तुम पगली हो ममता! यदि मेरे परिवार में पाँच, चार व्यक्ति होते तो मैं उनके लिए कुछ खर्च करता या नहीं? मनुष्य रुपये और किसलिए कमाता है? मैं बनिए का सा स्वभाव तो बना ही नहीं सकता कि येन-केन प्रकारेण रुपया ही कमाना। न खाना न खर्च ही करना। उन्हें तिजोरी में गिन-गिन कर रखना और आप ईमानदार चौकीदार की तरह उनकी रक्षा करना। इतने में ही जो कहीं भगवान के यहाँ पुकार हो गई तो ज्यों का त्यों ही छोड़ कर चल बसना। यह तरीका मुझे पसन्द नहीं। मैं सोचता हूँ मनुष्य जितना खर्च करेगा उतना ही कमाएगा। एक देहाती मसल है—'खर्च के भाग का भगवान देता है।'

मेरी इस बात पर ममता झुंझला कर बोली—'मेरी तो क्या, आपके सामने तो बेचारे भगवान की भी नहीं चलती। आप अपनी धुन के आगे किसी की मानते थोड़े ही हैं।'

मैं हँसकर बोला—'यों समझ लेना जाद अच्छा है। यदि

नाराज न होओ ममता, तो एक बात बड़े ही विनम्र भावों से अर्ज करना चाहता हूँ।' ममता चुप थी।

'जब मैं तुम्हारे गाँव चलूँगा तब तुम्हारे पिताजी मिलेंगे, अम्मा मिलेंगी और भी लोग मिलेंगे। यह तो सिद्ध है कि जैसे तुम्हारे पिता वैसे ही मेरे पिता और जैसी तुम्हारी अम्मा वैसी ही मेरी अम्मा। यदि इस बात के समझने में तुम्हें कोई आपत्ति न हो तो मेरी एक इच्छा है।'

'ममता ने भृकुटी बंक की और जरा तीखे स्वर में कहा—'समझने में मैं क्या नाराज होती हूँ ?'

'तब यह बात है ममता कि मैं कुछ कपड़े अम्मा और पिताजी के लिए खरीदना चाहता हूँ। और इस मामले में तुम्हारी मदद इस लिए चाहूँगा कि मैं उनसे परिचित नहीं हूँ। यदि परिचित होता तो कष्ट न देता।'

'मेरी तो अकल ही काम नहीं करती, यह सब क्या हो रहा है।'

'जो भी कुछ हो रहा है अच्छा ही हो रहा है। किसी भी ईश्वरवादी मनुष्य को यही मानना श्रेष्ठ है कि ईश्वर मनुष्य से जो भी कुछ कराते हैं अच्छा ही कराते है।'

ममता ने थोड़ी देर तक मेरी बात पर गंभीरता से विचार-सा किया, फिर बोली—'प्रीति तो लेन-देन से नहीं रीझती। वह तो हृदय से ही रीझती है और जब हृदय से रीझती है तब अपने प्राणों की भी पर्वाह नहीं करती।'

'यह प्रीति की बात नहीं है ममता ! यह तो बड़ों का सत्कार है और स्वजनो की इज्जत है। वह व्यवहारिकता एक अलग चीज है जो प्रतिध्वनि की तरह समानता से रीझती है और वह केवल समानता के व्यक्तियों के साथ ही लौकिकता के नाते होती है।'

'मैंने तो पहले ही कह दिया, आपसे भगवान भी ·· ·।'

'अच्छा तो फिर चलो मेरे साथ, कुछ कपड़े खरीद लें पिताजी और अम्मा के लिए। वर्ना मैं आपके साथ आपके गाँव नहीं जाने का, भले ही आप नाराज हो जाएँ या जो भी हो।'

मैंने एक बजाज की दूकान पर जाकर दो धोती जोड़े दोनों के खरीदे। ममता ने खुले दिल से राय न दी। केवल हाँ, हूँ करके ही काम चलाया। मुझे स्पष्टतया यह मालूम हो रहा था कि ममता मेरे इस खर्च से नाखुश है। इसके बाद पिताजी के कोट कमीज का प्रश्न था जो कपड़ा लेने पर इतने जल्दी सिल नही सकते और सिल सकते हैं तो अच्छे नहीं। इसलिये मैं मन ही मन यह सब सोच कर फिर उसी तैयार कपड़े की दूकान की तरफ बढ़ा।

ममता ने रिरिआ कर कहा— अब और इधर कहाँ बढ़े जा रहे हो?'

मैंने पागलों की तरह कहा—'हल्ला न करो तुम, तो इधर चली आओ मेरे पीछे जरा उस तैयार कपड़े वाले की दूकान पर कोट कमीज तैयार सिल जाएँ तो देख लें।'

'आप जाइए, मैं तो नहीं जाती बार-बार इधर से उधर, उधर से इधर।'

मैंने हाथ जोड़कर कहा—'ऐसा न कहो ममता, तुम यहाँ खड़ी रहोगी तो दुनियाँ क्या कहेगी और वह दूकानदार भी क्या कहेगा— बाबूजी बहनजी को कहाँ छोड़ आए?'

नाराज होकर ममता ने कहा—'अब मैं आपके साथ बाजार कभी न आऊँगी।'

'एकदम मंजूर है, पर आज जब आ ही गई हो तो आज तो पूरा बाजार करा दो।'

'कितनी देर हो रही है ?'

'अब तो तनिक भी देर नहीं लगने की। सब काम हो ही गया है।'

मैंने उस दूकानदार के यहाँ जाकर दो कमीजे और एक कोट खरीदा और वहीं से एक बडा-सा झोला लिया। उसमे ही सब सामान रक्खा। कुमार का मुँह कुम्हलाया हुआ-सा प्रतीत हो रहा था, बेचारा चल-चल कर थक भी गया था। रात भर और दिन भर का भूखा थक तो जाना ही चाहिए। किन्तु बाजार की चहल-पहल और रंग-बिरंगी दूकानो की सजावट ही उसका मन बहला रही थी।

मैंने ममता से कहा—'मेरा यहाँ एक व्यक्ति से परिचय है और बडा जरूरी काम भी है। जब भी मैं यहाँ आता हूँ उससे अवश्य मिल लेता हूँ। वैसे वह है मेरे बडे काम का आदमी। तुम्हे यदि आपत्ति न हो तो उससे केवल पाँच मिनिट के लिये मिल लूँ। ताँगा खडा रहेगा और उससे मिलकर सीधे धर्मशाला ही चले चलेंगे। यहाँ से उनका घर भी दूर नही है, तुम्हारी क्या आज्ञा है ?'

ममता ने पहले तो शायद कुछ भय सा खाया, किन्तु दूसरे ही क्षण उसे उसकी आत्मा ने साथ दे दिया।

'मिल लीजिए फिर अभी से ताँगा क्यो कर रहे हो, व्यर्थ ही पैसे लगेंगे न ?'

मैंने कुमार के कुम्हलाए हुए मुँह की तरफ हाथ बढा कर कहा—'देखती हो, कुमार का मुँह छुहारे की तरह सूख रहा है ?'

'फिर जैसा आप उचित समझें ?'

मैंने ताँगा बुलाया और कुमार को बीच मे बैठा कर हम दोनों दो तरफ बैठ गये।

—o—

## जगदीश

जगदीश एक अजीब प्रकृति का व्यक्ति है। रास्ते चलते मनुष्यों से येन केन प्रकारेण परिचय कर लेना और तुरन्त ही उस व्यक्ति की निकटता में आकर, उससे परिवारिकता पालने लगना, उसका सहज स्वभाव है।

सदैव ही पराए कार्यों की चिन्ता रखना। परहित-निरत रहना ही उसके जीवन का विशेष परिचय है। साधारण श्रेणी के लोगों में सम्मानित। उच्च श्रेणी से परिचित रहना मानो उसकी जन्म पत्री का ही योग है। जो काम किसीसे न हो उसे हमारे प्रोफेसर वॉसकाटे जगदीश को सौंप देते थे। एक दो नहीं हम सभी मित्र उसकी प्रतिभा का लोहा मानते थे और उसके कितने ही उपकारों से दबे हुए थे।

हर तरह हर श्रेणी के लोगों में उसकी चौमुहानी–प्रतिभा व्यापक थी और वह हरएक कार्य में प्राय. सफल ही होता था। जगदीश के परिवार में चार प्राणी थे। जगदीश, उसकी पत्नी, एक बच्ची और एक बूढ़ी अम्मा।

मैं जब कभी कानपुर आता हूँ अम्मा के चरण–स्पर्श करता हूँ। जगदीश के विनोदी स्वभाव की लच्छेदार बातें सुनता हूँ। भाभी भजिए बनाकर खिलाती है. और मुन्नी, पान, आदि लेकर नाचती हुई मेरे इर्द–गिर्द मंडराया करती है।

मैं जगदीश के घर जाने के इरादे से तांगे में तो बैठ गया किंतु मेरे मन में ममता और कुमार के परिचय के विषय में सन्देह लोट लगाने लगा—'उन लोगों से क्या कहकर परिचय दूँगा। जगदीश का परिवार किस बात से सन्तोष पाएगा।'

ज्योंही ताँगा पहुँचा कि जगदीश दरवाजे की कुंडी चढ़ाता हुआ नजर आया। मैंने कहा—'जगदीशबाबू हम महमान घर आ रहे हैं और आप बाहर जा रहे हैं? ताँगा रुक गया। जगदीश की मुझसे चौनजर हुई। मेरे ताँगे से उतरते ही जगदीश ने मुझे अपनी छाती से लगा लिया और कहा—'अनंत! सचमुच ही तुम्हारी बड़ी उम्र है। मै अभी तुम्हारी याद करके ही उठा हूँ। आज तुम न मिलते तो तुम्हे पत्र अवश्य लिखता।'

मेरे हाथ मे हाथ फँसा कर जगदीश मुझे अन्दर ले गया। ममता अवगुंठित होकर कुमार और सामान के साथ ताँगे मे ही बैठी रही। अपनी टेबिल के पास ले जाकर वह मुझे कुर्सी पर बैठाते हुए बोला—'तुम्हे इस पहली तारीख को एजूकेशन आफीसर यू० पी० के पास इन्टरव्यू को जाना चाहिये। मुझे उनसे एक रोज अचानक ही मिलने का योग मिल गया। तुम्हारे पत्र का स्मरण तो मुझे था ही। मैंने जब तुम्हारे विषय मे उनसे चर्चा की तब वे बोले—'हम अपने डिपार्टमेंट मे कुछ ऐसे व्यक्तियो की नई भर्ती करना चाहते है, जो कार्य कुशल और योग्य व्यक्ति हो। पहली जून मे हम कुछ विशेष व्यवस्था कर रहे है। एक सौ पच्चीस से भर्ती होगी और ढाई सौ तक की जगह रहेगी।' बहुत ही अच्छा हुआ जो तुम मुझे मिल गये। कहाँ से आ रहे हो? यहा से घर के लोग तो सब मामा के यहाँ गये है, मैं अभी भोजन करने ही जा रहा था।'

मैंने कहा— आपको आपकी कृपा और सुनाई हुई खुश खबरी के लिये बहुत-बहुत धन्यवाद। मैं केवल आपसे भेट करने ही आया हूँ। पहली को उनसे मिल लूँगा। यदि यह मौका मिल गया तो मेरी जिन्दगी का राग मधुर हो जायगा।'

'ये लोग कौन है?'

'मैं अभी जहाँ नौकर हूँ उन्ही के बच्चे वगैरह है।'

'उन्हे बुलाओ न यहाँ कुछ मंगा लेते है, यहीं खा पी लेंगे।'

'यदि भाभी, अम्मा कोई होती तो अच्छा होता, अब तो इजाजत दीजिए फिर आऊँगा।'

'मामा का बहुत दिनो से तकाजा था। मैंने उन सबको ही एक साथ भेज दिया। पर घर खाने को दौडता है। यहा जरा भी मन नहीं लगता।'

मैं उठ खडा हुआ। जगदीश ने कहा—'भाई, तुम तो अपने ही घर के आदमी हो तुम्हारा तो कुछ नही, परन्तु बिना जलपान किये जाओगे तो तुम्हारे साथी क्या कहेगे? मुझे तो यह अच्छा मालूम नही होता, खैर नीचे चलो।'

हम लोग नीचे आए। जगदीश मुझे आफीसर साहब का स्वभाव आदि समझाने लगे और एक हलवाई की दूकान पर खडे होकर सेर भर मीठा पाव भर दालमोट का आर्डर देकर कहने लगे—वहाँ तुम्हें यह सहूलियत रहेगी। यह मौका मिलेगा। इतने ही मे हलवाई ने छबडी तैयार कर दी।

हम दोनो ताँगे के पास आए। जगदीश ने छबडी सौंपते हुए कहा—'लो! मैं तो यह नही चाहता था परन्तु तुम्हारी मरजी, अनन्त! इस बार तो तुम्हारा आना नहीं आने के ही बराबर रहा। अच्छा इन्टरव्यू के बाद मुझे पत्र देना, क्या होता है?'

मैंने हाथ मे छबडी लेकर नमस्कार किया और इक्के पर बैठ गया। जगदीश जाते हुए इक्के को, धीरे-धीरे चलते हुए दृष्टि ओट न होने तक देखते रहे।

जब मनुष्य अपने आसपास के वातावरण को आनन्द-दायक

पाता है तो उसके हृदय में वह स्फुरण होता है, जो उसके समस्त शरीर में सञ्चार कर जाता है। जगदीश मेरे आनन्द दाताओं में से एक हैं। आज जो बात उन्होंने मुझे सुनाई वह बात मेरे जैसे व्यक्ति के लिये उतनी ही महत्व दायक है, जैसे मरीचिका के पीछे भागते हुए मृग को सहसा किसी सरोवर का मिल जाना।

ममता ने तुरन्त ही मेरी प्रसन्नता को ताड़ लिया; जो हृदय से आनन पर उतर कर अधरों और आँखों से प्रस्फुटित हो रही थी।

मुस्कुरा कर बोली—'ऐसा क्या मिल गया? बड़े खुश मालूम होने लगे आप तो।'

'मैं यदि यों कहूँ कि मेरी खुशी की जननी तुम हो तो किंचित भी अत्युक्ति न होगी।'

ममता चुप हो गई, मानो वह मन ही मन कह रही हो कि जब कोई बात पूछी तब एवज़ में लगे मेरी ही तारीफ करने। मानो मैं इतनी बेवकूफ हूँ कि किसी भी तरह कोई भी बात कहकर समझाई जा सकती हूँ। यही भाव उस समय ममता के मुख पर अंकित थे। प्रकट में बोली—'आपको तो अच्छा तरीका हाथ लग गया है।'

'मैं अपनी बात की सत्यता का सबूत तुम्हें धर्मशाला में चलने पर दूँगा। उस समय आप तुरन्त मान लेंगी कि मैं हृदय की किस सच्चाई को तुम्हारे सामने रखता हूँ और तुम उसपर कितनी भयकर तर्क-वितर्क कर बैठती हो।'

'मुझ जैसी लड़की के लिए समझा देना आपके लिए कब कठिन है?'

'ममता! जिस मनुष्य का जीवन पथ दुर्गम और दुस्तर हो, जो सदा ही अपने जीवन को निराशाओं के घने बादलों से ढंका हुआ पाता हो, कभी-कभी संकटों की घोर गर्जना हृदय कंपा

देती हो और वह ऐसी परिस्थिति के बाद भी केवल प्रभु की शक्ति पर भरोसा करके प्रयत्न पूर्वक बढ़ जाने की प्रबल-प्रेरणा अपने हृदय में रखता हो, ऐसे व्यक्ति को कोई देवदूत बनकर अपने बाहुबल का सहारा दे दे और जीवन प्रदीप की ज्योति का निर्देश करा दे तो क्या उसे प्रसन्नता न होगी ? तुम ही कहो।'

व्यंग-सा करते हुए ममता ने कहा—'मेरे मुंह को बन्द कर देना तो आपके बाँए हाथ का खेल हो गया है।'

'हृदय की निकटता का तो यही प्रमाण है।'

धर्मशाला आ गई। रामदीन बेंच पर बैठा-बैठा अपने दुपट्टे की सलें मिटा रहा था। मुझपर नजर पडते ही पास आया और मेरे हाथ से झोला ले लिया।

'बहुत देर कर ली सरकार ?'

मैंने घडी देखते हुए कहा—'साडे ग्यारह बजे हैं, ज़्यादा देर तो नहीं हुई है।'

'धूप की बखत में रोटी बनाने से मलकिन को तक्लीफ होगी सरकार ! सुकुमार मन इनको आँच के पास बैठे से पसीना नितरे लागत है।'

'यह तो तुम बहुत ही ठीक कहते हो रामदीन। कल भी धूप हो गई थी तो इनके चेहरे पर पसीने की धार बंध गई थी।'

'हाँ सरकार हम हूँक उहि बिरिया बडी दरेग आई।'

मैंने कमरे में पहुंचते ही कहा—'पहले तो जगदीश के प्रसाद का उपयोग किया जाय फिर यदि ढाबे में ठीक भोजन बना हो तो वहीं से दो, तीन थाली मंगा ली जाय।'

ममता ने मेरी बात के उत्तर में कहा—'अभी तो धूप भी ज़्यादे नहीं हुई है। थोडी सी रसोई बनाने में क्या देर लगती है ? अभी

बना लूँगी; सामान तैयार मिलना चाहिये।'

रामदीन ने कहा—'मलकिन सामान तो कब ही का तैयार है

ममता ने हम लोगों से बाहर जाने को कहा। रामदीन चौ की तरफ जाने लगा तो मैंने कहा—'रामदीन ! जरा ठहर जाओ कु खा लो फिर जाना। अभी कपड़े बदले लेती है।'

रामदीन ने समय का उपयोग करते हुए कहा—'सरकार नीचे से एक बाबू और उनकी बहुआइन को पुलीस पकड़ ले गई।'

कौन थे वे लोग ?'

'वही गोरे से बाबू जिनके साथ ऊंची सी काली कार जनानी थी।'

मुझे एकदम रमेश का सन्देह हो गया। 'वे तो नहीं जो नी के अठारह नम्बर में ठहरे हुए थे, हमारे शहर जाते समय दरवाजे पास मिले थे।'

'हाँ, सरकार वे ही थे। पुलिस कहती रही औरत माल लेक भाग आई है उन बाबूजी के साथ, इसीलिये वे पकड़ लिये गये।'

अपराधी को दण्ड मिलने पर जो सहज ही मनुष्य को प्रसन्न होती है, वही प्रसन्नता मुझे हुई। मैंने कमरे में घुसते ही कहा—'तुम सुना ममता ! रमेशबाबू और उन देवीजी दोनों को पुलिस पक कर ले गई। बहुत अच्छा हुआ। अब अपने आप दोनों ही ठिका लग जाएँगे।'

ममता ने हाँ में हाँ मिलाते हुए कहा—'जैसी करनी वैसी भरनी बोए पेड़ बबूल के, आम कहाँ से होय।'

हम सबने थोड़ा-थोड़ा जलपान किया और रमेश की कहानी पर टीका-टिप्पणी करते रहे। इसके बाद रामदीन चूल्हा सिलगाने चल दिया। मैं वह खुशी की बात जो जगदीश ने मुझे सुनाई थी

ममता को सुनाने लगा। ममता, ममता भरी दृष्टि से मेरी ओर देख कर भगवान से मेरी कल्याण-कामना करने लगी। उसके बाद ममता ने कहा—'आज चलना चाहिये। जीजा की चिट्ठी पिताजी को मिल जायगी और हम लोग नहीं पहुँचेगे तो वे चिन्ता करेंगे।'

ममता की बात की यथार्थता को समझते हुए मैंने कहा—'अब तो मेरा भी यहां कोई काम बाकी नहीं है। यदि भोजन आदि से निपट जाएँ तो दिन की गाडी से ही चल सकते है। आपके ही कारण हमेशा की अपेक्षा आज जगह-जगह विशेष सम्मान हुआ और आपके ही सु-योग के बाद अच्छी नौकरी का संदेश मिला।'

'मनुष्य का जब भाग्योदय होने लगता है तो हर तरफ से होता है और जब बुरे दिन आते है तो हर तरफ से आते है। यही है प्रभु का नियम।'

मुझे अपनी पिछली घटनाएँ याद आ गई और उसी स्मरण के साथ मै बोला—'जो आज की कठोरताएँ है वे ही कल की सफलता के पूर्वगामी संकेत है। कठिनाइयो पर एक-एक करके सफलता पाना चाहिए। हमारा जीवन-मार्ग अपने ही आप सुगम हो जायगा। सच तो यह है कि मैं तुम्हारे परिचय से निहाल-सा होता जा रहा हूँ।'

क्या पता। मैं तो यह समझती हूँ परिचय जैसा लोग समझते है, वैसा बच्चों का खेल नही है और खासकर मुझ जैसी नारी का। प्रारंभ तो बहुत ही सहज दीखता है किन्तु उसे निबाहने में बड़े ही कौशल की आवश्यकता होती है।'

ममता की यह बात मेरे दिल मे चुभ-सी गई। मैं मन ही मन सोचने लगा—'ममता! कालान्तर के बाद तुम्हे तुम्हारा ही हृदय इस बात का उत्तर दे देगा। मै तुम्हारे सम्मुख अपने व्यक्तित्व को

कभी झुकने न दूँगा।' ममता से मैंने केवल इतना ही कहा—'तुम ठीक ही कहती हो। परिचय और सम्बन्धियों के सिलसिले में मेरा मत भिन्न है। जब परिचित अपने ही आप अपरिचित हो जाता है और सम्बन्धी अपना सम्बन्ध विच्छेद कर लेता है तब बहुतेरे व्यक्ति अपने जीवन मे एक कमी अनुभव करने लगते हैं और दु ख मानते है। परन्तु मेरा यह हाल रहा है कि मैंने उसे हमेशा सुख माना है। यदि कोई किसी से अपना सम्बन्ध तोड लेता है तो वह अपनी किसी भी अवस्था मे उस व्यक्ति को अपने योग्य नहीं मानता। न अपनी किसी अवस्था की कठिनाई को उससे व्यक्त ही करता है। मतलब यह कि उसके सहायकों में से एक कम हो जाता है। अब बतलाइए! उसने अपना नुकसान स्वयं किया या अपने परिचित सम्बन्धी का किया।'

ममता ने मेरी बात का समर्थन करते हुए कहा—'ठीक म चलना चाहिए।'

ममता के साथ ही साथ कुमार और मैं रसोई घर में चल दिए। रामदीन चूल्हा सुलगा चुका था। ममता ने सब सामान देख भाल कर अपना कार्यारंभ कर दिया। रामदीन बाहर जाना चाहता था। मैंने उसे हमारे पास ही भोजन करने को कहा। उसने मालकिन को कष्ट होगा कहकर, व्यवहारिकता दिखलाई। पर ज्योंही मैंने कहा—'रामदीन आज और खा लो फिर जाने कब नसीब होगा इनके हाथ का भोजन।' रामदीन ने कहा—'जैसी सरकार की मरजी।' उसने समर्थन कर लिया और अन्य किसी कार्य के लिए नीचे चला गया।

मैं दीवार के सहारे बैठ गया उसी प्रकार लम्बे पैर करके, और पास में कुमार को बैठाकर उसके सिर पर हाथ फेरकर उसे प्यार करने लगा।

ममता ने पूछा—'ये कौन थे जिनके पास आप गए थे?'

मैंने जगदीश का परिचय कालेज से आरम्भ करके आज तक का सुना दिया। ममता बिना तर्क-वितर्क किए मेरी बात सुनती रही। मैंने जब जगदीश की विलक्षणताओं का चरित्र-चित्रण किया तो हँस-हँसकर हैरान हो गई। मैंने कहा—'एक बार आपकी पत्नी बीमार हो गई और अधिक दुर्बल हो गई तो आपने उनके पिताजी को पत्र लिखा 'आपकी पुत्री जो आपके यहाँ से रसगुल्ले की तरह आई थी क्रमवरत बीमारी ने उन्हें सुखाकर खारक बना दिया।'

एक समय आप स्टेशन से उतरकर देहात अपने घर जा रहे थे। रास्ते में एक परिचित जमींदार का मौजा आता था। आपके साथ आपकी पत्नी, बैल गाडी में बैठी हुई और आप एक मित्र से बातें करते जाते थे। मित्र ने कहा—'बादल उठ रहा है, न हो तो आज जमींदार साहब के यहाँ ही चलिए, वे आपको याद भी करते हैं। अगर सुनेंगे तो कहेंगे बडे निर्मोही है।' आपने उनकी बात न मानी। गाडी ही दूर जाने पर बदली ने बरसना आरम्भ किया और घंटा का पानी मिनटों में ही उंडेल दिया। आप एक आम की छाया में—गाडी बैल के सहित भीगा किए। मित्र ने जाकर जमींदार साहब से सब हाल कहे। उन्होंने दो, तीन नौकरों को काली कम्बल की बनी हुई घोघती लेकर भेजा और उन मित्र को भी भेजा कि अब पानी काफी गिर चुका है,कच्चे रास्ते में गाडी नही जायगी, इसलिए उन्हें ले आओ।'

आपने पानी से लथपथ हालत में मित्र का आग्रह मान लिया और नौकरों से घोघती लेकर एक आपने ओढ ली एक पत्नी को उढा दी। पानी गिर रहा था। गाड़ी के चाकों में धड़ियों मिट्टी लग रही थी। ज्यों त्यों करके आप जमींदार साहब के बडे से द्वार में दाखिल हुए। जमींदार साहब बडे हंसोडे स्वभाव के व्यक्ति हैं। आपको कोट,

पेट और नेकटाई पर हरवाहों की चुम्बलदार काली वाघती ओढ़े देखकर वहाँ जितने बैठे थे सब हँस दिए। आपने उन सबकी हँसो मे सहयोग देते हुए कहा—'भाई, भारतीय को इंग्लैंड जाकर भी तो आखिर यहीं लौटना पडता है।'

इस प्रकार जगदीश के जीवन की जितनी विनोदी घटनाएँ मुझे याद आईं मैंने ममता को सुना दी और उसके बाद जगदीश का जो मेरे प्रति निश्छल प्रेम है, उसकी विवेचना कर डाली। यों तो इस युग के मनुष्य का व्यवहारिक क्षेत्र अस्वाभाविकता, नकली और खोखले शिष्टाचार के ताने-बानों से बुना हुआ होता है। झूठी हसी, झूठी मुस्कान और बे-दिल की चिकनी चुपडी बातो की कला मे हरएक मनुष्य अपने आस-पास के मानव समाज को खरीद लेना चाहता है। उन ग्रामीणों को, जो अल्पज्ञ कहलाते है, छोड़िए,जो राग, द्वेष और अनुचित माया के बन्धन से मुक्त है। ईश्वर ही जिनकी हारी हुई अवस्था का हृदय-धन है। पर इन शहरातियोंको लीजिये,जो अपनेआपको सर्वज्ञ मानकर चलते है। बात इनकी है।यह इनके जीवन का नकली व्यापार तो यों ही सारे दिन और रात चलता है। इनकी आत्मा मे वह निनाद नहीं, वह स्वर लहरी नही जो हृदय के तारों से निकलती है। यदि कहीं है तो वह विरले प्राणियों मे जो अपने को और इस संसार को भली भाँति पहचानते है। यदि किसी को निहाल कर सकते है तो वही व्यक्ति और किसी के हित चिन्तक हो सकते है ना वही। बाकी तो मानवता की कसौटी पर उसी तरह फेल हो जाते है जैसे पंजाबी भाषा भाषी संस्कृत मे और बंगाली हिन्दी के व्याकरण में।'

—०—

ऐसी ही इधर उधर की बातों ही बातों मे भोजन तैयार हो गया। उन्होंने मुझे और कुमार को भोजन परोस दिया। हम लोग भोजन करने लगे। ममता मुझे कुछ बातों ही बातों मे दुनियादारी के अनुभव सुनाने लगी।

'दुनियाँ का यह हाल है कि बच्चों से स्नेह करना। तरुणों से सन्देह करना और अक्सर वृद्धो से घृणा करना। युवावस्था मे मनुष्य चाहे जितने सयम, साधना और सच्चरित्रतासे रहे,परन्तु उसका देखना, बोलना, चलना सभी अधेड और बूढों की दृष्टि मे सन्देह की चीज बन जाती है।' स्त्रियों का सुन्दर होना भी सामाजिक दृष्टि से बडा पाप है। ईमान और सुन्दरता मे बहुत बडी दुश्मनी है। सौन्दर्य पर, पुरुषों की दृष्टि उस तरह गड जाती है जैसे गीले गारे मे फेका हुआ ढला और फिर वे उस सौन्दर्य के प्रति बेईमान होकर अनेकों कुचेष्टाएँ करने लगते है। उस समय उन भले मानसों को यह नही सूझता कि स्त्री-हृदय मे भी तो धर्म और ईमान के सिद्धांत रहते हैं। नारी हृदय मे भी तो स्वाभिमान होता है। जब वह पुरुषो की चेष्टाओं से प्रभावित नही होती और वह अपने ही आप हैरान हो जाता है, तब वह उस नारी के प्रति द्वेष और ईर्षा की ज्वाला मे जलते हुए अनुचित रूप से बदनाम करने की चेष्टा और यत्न करता है, इस तरीके से वह नारी के सौन्दर्य से प्रति-दान वसूल करना चाहता है। कभी-कभी पुरुषों की इस अनीति से, स्त्री जाति की बहुत बडी क्षति हो जाती है, उस बेचारी का सहज सुखी जीवन दुख मय हो जाता है। फूलों की सेज पर काँटे बिछ जाते हैं। निर्दोष अबला

पेट और नेकटाई पर हरवाहो की झुब्बलदार काली घाघती आँखें देखकर वहाँ जितने बैठे थे सब हँस दिए। आपने उन सबकी हँसो में सहयोग देते हुए कहा—'भाई, भारतीय को इंग्लैंड जाकर भी तो आखिर यहीं लौटना पडता है।'

इस प्रकार जगदीश के जीवन की जितनी विनोदी घटनाएँ मुझे याद आई मैंने ममता को सुना दी और उसके बाद जगदीश का जो मेरे प्रति निश्छल प्रेम है, उसकी विवेचना कर डाली। यों तो इस युग के मनुष्य का व्यवहारिक क्षेत्र अस्वाभाविकता, नकली और खोखले शिष्टाचार के ताने-बानों से बुना हुआ होता है। झूठी हसी, झूठी मुस्कान और बे-दिल की चिकनी चुपडी बातो की कला से हरएक मनुष्य अपने आस-पास के मानव समाज को खरीद लेना चाहता है। उन ग्रामीणो को, जो अल्पज्ञ कहलाते है, छोडिए,जो राग, द्वेष और अनुचित माया के बन्धन से मुक्त है। ईश्वर ही जिनकी हारी हुई अवस्था का हृदय-धन है। पर इन शहरातियोको लीजिये,जो अपनेआपको सर्वज्ञ मानकर चलते है। बात इनकी है।यह इनके जीवन का नकली व्यापार तो यो ही सारे दिन और रात चलता है। इनकी आत्मा मे वह निनाद नहीं, वह स्वर लहरी नही जो हृदय के तारों से निकलती है। यदि कहीं है तो वह विरले प्राणियों मे जो अपने को और इस संसार को भली भाँति पहचानते है। यदि किसी को निहाल कर सकते है तो वही व्यक्ति और किसी के हित चितक हो सकते हैं तो वही। बाकी तो मानवता की कसौटी पर उसी तरह फेल हो जाते है जैसे पंजाबी भाषा भाषी संस्कृत में और बंगाली हिन्दी की व्याकरण मे।'

—०—

ऐसी ही इधर उधर की बातो ही बातो मे भोजन तैयार हो गया। उन्होंने मुझे और कुमार को भोजन परोस दिया। हम लोग भोजन करने लगे। ममता मुझे कुछ बातों ही बातों मे दुनियादारी के अनुभव सुनाने लगी।

'दुनियाँ का यह हाल है कि बच्चों से स्नेह करना। तरुणों से सन्देह करना और अक्सर वृद्धों से घृणा करना। युवावस्था मे मनुष्य चाहे जितने सयम, साधना और सच्चरित्रता से रहे, परन्तु उसका देखना, बोलना, चलना सभी अधेड और बूढो की दृष्टि मे सन्देह की चीज बन जाती है। स्त्रियों का सुन्दर होना भी सामाजिक दृष्टि से बडा पाप है। ईमान और सुन्दरता मे बहुत बडी दुश्मनी है। सौन्दर्य पर, पुरुषो की दृष्टि उस तरह गड जाती है जैसे गीले गारे मे फेका हुआ ढेला और फिर वे उस सौन्दर्य के प्रति बेईमान होकर अनेको कुचेष्टाएं करने लगते है। उस समय उन भले मानसों को यह नही सूझता कि स्त्री-हृदय मे भी तो धर्म और ईमान के सिद्धात रहते हैं। नारी हृदय मे भी तो स्वाभिमान होता है। जब वह पुरुषों की चेष्टाओ से प्रभावित नहीं होती और वह अपने ही आप हैरान हो जाता है, तब वह उस नारी के प्रति द्वेष और ईर्षा की ज्वाला से जलते हुए अनुचित रूप से बदनाम करने की चेष्टा और यत्न करता है, इस तरीके से वह नारी के सौन्दर्य से प्रति-दान वसूल करना चाहता है। कभी-कभी पुरुषों की इस अनीति से, स्त्री जाति की बहुत बडी क्षति हो जाती है, उस बेचारी का सहज सुखी जीवन दुख मय हो जाता है। फूलों की सेज पर कॉटे बिछ जाते हैं। निर्दोष अबला

का जीवन दु ख, शोक, और सन्तापो से घिर जाता है। उसका
संसार यम यातना के समान हो जाता
कुछ भद्र पुरुष भी होते है जो ऐसी अवस्था में नारी जाति
प्रति सहृदय होते है जो किसी विशेष अवस्था मे ज्ञान, विवेक
बुद्धि से बात की वास्तविकता को समझते
कुछ ही दिनो पहले एक सती, निर्दोष और भोली नारी
पुरुष जाति की इस चाण्डाल मनोवृत्ति के कारण जो दुर्गति हुई
उसका स्मरण करते ही आजभी मेरे रोगटे खडे हो जाते है। कि
चाण्डाल पुरुष ने उसके मूर्ख पति को कुछ कह दिया। उसने अप
माँ से कहा। दोनो मिलकर पहले तो उस बेचारी को सताते रहे
दो-दो दिन तक रोटी तो दूर पानी के भी दर्शन न होने दिए। ताले
बंद कर दी गई। उसने हर तरह अपनी सच्चरित्रता के प्रमाण दि
परन्तु उन पापियो ने एक भी न मानी, उस अबला की। वह क्या क
सकती थी। एक दिन उस हत्यारे ने उसके हाथ पॉव बाँध दिये। उस
मुँह मे कपड़ा ठूँस दिया गया। घरके सब दरवाजें बद। रातको दो ब
ओं ने कोचे, कलछी और चिमटे गरम किए और उन्हीं चीजो से उस
कपोल, स्तन और गुप्तागो को जलाया। बेचारी छटपटा छटपटा कर इस
तरह मरी कि जिस तरह मनुष्य तो क्या राक्षस भी नही मार सकते थे।
चार पांच बजे लडके ने उसकी गठरी बांधी, सिर पर रखी और नदी
में लाश को बहाने ले जा रहा था कि गश्त लगाते हुए सिपाही ने
चोर जानकर पकड लिया। जाच पडताल हुई। शहर भर में हंगामा
मच गया।'

मुझ से रहा नहीं गया और मैं बीच ही में पूछ बठा—
'उन दोनो का क्या हुआ?

उन्होने चूल्हे की लकडियों को बुझाते हुए कहा—सुना गया

है कि जज साहब ने फाँसी का हुक्म देते हुए अपने फैसले मे लिखाः—

'यद्यपि मैं इन दोनों को फांसी का हुक्म देता हूं, परन्तु जिन तरीको से इन लोगो ने उसकी हत्या की है, उसका खयाल करते हुए मुझे फाँसी की सजा भी बहुत छोटी सजा मालूम होती है।'

'और उसका क्या हुआ जिसने उसके पति से कहा था ?'

'मरता क्या नहीं करता ? उसने उसका नाम बतला दिया। कहने वाले व्यक्ति के पास प्रमाण तो कुछ था ही नहीं, जिसे वह पेश करता, वह तो ईर्षा से कह बैठा था। उसे भी उन्ही जज साहब ने आजन्म कालेपानी की सजा दे दी।'

'अपील नही हुई क्या ?'

'हुई थी, परन्तु अपील मे सजा ज्यो की त्यो ही रही।'

'अच्छा हुआ। यही दण्ड मिलना चाहिये था। प्रभु के घर मे कभी-कभी देर हो जाती है ममता, परन्तु अन्धेर कभी नही होता।'

'हजारहाँ घरो के यही हाल है। ऐसी नही तो इससे कुछ कम घटनाएँ, पर घटती अवश्य है।'

'ममता ! इस घटना ने तो मेरा मन ही मसोस दिया। मुझे तो यह भान ही न था कि आज के इस युग मे भी नारी जाति को ऐसी परिस्थितियो का सामना करना पडता है।'

ममता ने मुस्कुरा कर कहा—'आपको जो कहीं भगवान ने स्त्री बनाया होता तो पता चलता कि पुरुष अत्याचार का अवतार बन कर नारी जाति को कैसी-कैसी कुत्सित लीलाएँ दिखलाता है और बेचारी नारी को धर्म और समाज की आन पर किस तरह बेजबान होकर सहन करना पडता है। कहीं-कहीं इसके विपरीत भी होता है। कितने ही पुरुष अपनी स्त्री को प्राणों की नाई भी रखते है, किंतु भाग्यवान कम होते है।'

'विश्व की बनावट गुण और दोषों से परिपूर्ण है।'

मैं यह कह ही रहा था कि रामदीन आ गया। ममता उसकी थाली परसने लगी। मैंने कहा—'अब आप भी भोजन कर लें। थोड़ा विश्राम करने के बाद हम लोगों को चलने की तैयारी करनी चाहिये।' मैं रसोई घर से बाहर निकला।

मार्तण्ड मध्याह्न में आकर अपना सम्पूर्ण तेज फैला रहे थे। उनके रथ की गति धीमी थी और विश्व में विलक्षण उष्णता फैली हुई थी। रथ के घोड़ों की टापें चिनगारियों की वर्षा कर रही थीं कि जिनमें चलना तो दूर, देखा तक भी नहीं जाता था। प्राणी मात्र छाया का आश्रय लिये बैठे थे। मानो वे उन चिनगारियों से अपनी काया को बचा लेना चाहते हों।

ग्रीष्म की दोपहरी, शरद का प्रभात, और वर्षा की रात किसे नहीं व्यापती? मैं आकर अपनी खटिया पर लेट गया और सोचने लगा अपने भविष्य की बनावट को, जो नौकरी के लग जाने पर इलाहाबाद में बनना चाहती है। कैसा मकान होगा, कैसी सामग्री, कैसा वातावरण, कैसा रहन-सहन और कैसा खान-पान? मैं अपनी इस काल्पनिक रचना की सजावट कर ही रहा था कि ममता मस्तक पर श्रमकण और अधरों में मुस्कान लिये हुए कमरे में आई। उनके पीछे ही कुमार साहब भी तशरीफ लाए, अपनी किसी खिलौने वाली उधेड़-बुन में मशगूल हुए से।

ममता ने आते ही कहा—'आप तो जाग रहे हैं, मैं तो सोच रही थी कि आप सो भी गये होंगे।'

'नहीं ममता, मैं अपने भविष्य के उपवन को कामनाओं की क्यारी और विवेक के पौधों से सजा रहा था।'

तत्क्षण ही उत्सुकता से ममता ने कहा—'मैं भी तो सुनूं!'

मैं प्रेमी की उस मनोवृत्ति का कायल हूं जो कभी-कभी अपने प्रेमी के सम्मुख उसे हृदय उलीच देने को बाध्य कर देती है और मानसिक संकल्पों की शर्त पर कुछ भी न छिपा कर सब कुछ ही कह देना अपना फर्ज समझती है।

नवसिखिया कवि की रचना की तरह मैं ममता को अपने भविष्य का निर्माण सुना गया, जिसमे ममता का भी एक विशेष स्थान था। और देखिए! कार्य के पूर्व ही ममता से कृपा की इच्छा भी जाहिर कर दी—जैसे बूढ़े ब्राह्मण को श्राद्ध का पेशगी निमन्त्रण दिया जा रहा हो।

ममता मेरी इस निर्माण योजना को सुनकर कई बार हँसी। हँसना भी चाहिये, क्योंकि मेरी बात शेखचिल्ली की बहक से किसी भी प्रकार कम न थी। ममता का वह व्यंग हास्य मुझे जरा अच्छा न लगा। मैं बोला—'ममता! मैंने पढ़ा है कि मनुष्य सु-कल्पनाओं को अपने हृदय मे स्थान दे यह उसे अधिकार है। कभी-कभी वे सफल हो जाती हैं। जिन दिनों मैं बहुत छोटा था। हिंदी की तीसरी चौथी कक्षा मे पढ़ता था। तब मुझे भूगोल पढ़नी पड़ती और हिंदुस्तान का नक्शा सामने रहता और लड़कों के साथ रटाई शुरू होती:—

मुरादाबाद—यहाँ कलाई के बर्तन अच्छे बनते है।

मेरठ—टोपियों के लिए मशहूर है।

आगरा—यहाँ ताज बीबी का रोजा है और दरियाँ अच्छी बनती हैं—

'तब मेरे हृदय मे इन स्थानों के देखने का संकल्प होता था। जब कभी इम्तिहान के लिए उस छोटे से गाँव मे इन्सपेक्टर साइकिल पर आते उस समय मेरी इच्छा होती थी—यह बड़ी अच्छी चीज है। मैं भी इसपर बैठकर इसे दौड़ाऊँगा और मैं फुरसत के समय बड़े

इत्मिनान से उसकी बनावट को देखकर उसके भागने पर आश्चर्य करता था। कभी-कभी वे हमारे हिंदी पढ़े हुए मास्टर साहब को अंग्रेजी में कुछ कहते तो मेरा हृदय कहता था--मैं भी अंग्रेजी पढ़ कर इसी तरह बोलूँगा, जिसे कोई न समझेगा।

मैं अपनी उन बचपन की कल्पनाओं को आज सत्य पाता हूँ। तस्वीर की तरह जो अभिलाषा मनुष्य के मानस-पट पर अंकित हो जाती है, वे आज नहीं तो कल, कल नहीं तो परसों, पर एक न एक दिन सफल अवश्य होती है।'

ममता ने कुमार के गंगा से निकलने के समय से मुझसे कोई खास विरोध नहीं किया जैसा उसके पहले करती थी। इस समय भी उसने मुझसे-मेरी बातों के विषय में विरोध नहीं किया। मेरे उस कार्य से प्रभावित होकर या जैसा वह कहती थी कि 'आपसे विरोध करके कौन जीत सकता है—'यह सोच कर।

जरा शरमा कर बोली—'आप और कुछ न सोचें मुझे तो 'पानी के पहले पाल बाँधने वाली आपकी बात पर हँसी आई थी।' इसी बीच रामदीन महाशय आ गये।'

मैंने कहा—'रामदीन आज जिस-जिसका जो हिसाब हो ले-देकर साफ कर दो हम आज जाना चाहते हैं!'

फिर कब आएंगे सरकार?'

मैंने हँस कर कहा—'आने को क्या कभी भी आ जाएंगे।'

'आज कहाँ जाएंगे··?'

दिन वाली गाड़ी से इलाहाबाद!'

'इस बार तो आप बहुत दिनों में आए?'

'हाँ।'

ममता की तरफ देखकर बोला—'जब सरकार पधारें तब आ

भी पधार कर हम गरीबन को दर्शन दे दिया करें मलकिन।'

रामदीन का हृदय द्रवित-सा हो गया था। आँखें गीली हो गई थीं।

ममता चुप थीं परन्तु मैं बोला—'हाँ, हाँ, क्यों नहीं अब तो ये आया ही करेंगी, मैं तो एक बात यह भी सोच रहा हूँ कि तुम्हें अपने पास ही रख लूँ। यदि मैं चिट्ठी दूँ तो तुम मेरे पास चले आना।'

'जरूर सरकार! आप चिट्ठी दें मैं यहाँ का काम छोड कर उसी वक्त चला आऊँगा।

मैंने रामदीन को नोट देते हुए कहा—'जरा जल्दी ही सब हिसाब साफ कर आओ तो यहाँ की तैयारी की जाए।'

रामदीन चला गया और मैंने ममता से कहा—'ममता! आज हम लोगों का यहाँ का जीवन समाप्त होता है। अब फिर वही रेल जो आग पानी को जलाती है, फिर वही मुसाफिरी जो एक से दूसरे को मिलाती है; किन्तु हमारे हक मे तो यह विछोह करायगी। इस समय चलने पर हम लोग घर कब पहुँचेगे ?'

'रात को कोई नौ दस बजे।'

मैं मन ही मन सोचने लगा—'आज ही रात को हम सु-योगी वियोगी हो जायंगे। यह निकटता दूरी बन जायगी और मधुर मिलन कारुणिक विछोह बन जायगा। यह अपनत्व पराया कहलायगा और यह सयानी सूरत आँखो से ओझल हो जायगी। यह सजगता की बातें स्वप्नवत् हो जाएंगी। याने यह सारी की सारी दुनियाँ ही परिवर्तित हो जायगी। यह संसार अपने परिवर्तनकारी नियम से बाध्य हो जायगा।

ऐसी ही आत्मवेधक भावनाओ ने मेरे मन को चारों

तरफ से घेर लिया। मैं चिरकाल का एकाकी अपने आपको और अपने अपनत्व को बिसराकर आत्मग्लानि से ढके सा गया। मेरी आँखों मे करुणा छा गई।

जाने क्या बिगडता था उस प्रभू का यदि वह मनुष्य को इस भौतिक माया–ममता के बन्धन से मुक्त ही रखता तो? परन्तु वह लीलाधाम हम जीवों को अपने खिलौने बनाकर हमसे अनेको खेल खेलते है हम हँसते है, हम रोते है और उनका विनोद होता है। वे हमारे कुशल मदारी है और हम है उनके नर–मर्कट। मैं ईश्वर की इन सब बातों को भूलकर अपनी ही बातो मे तल्लीन था। अपनी अस्त-व्यस्त पेटी को जमाने का प्रयत्न कर रहा था। किन्तु वह जाने क्यों मुझ से जम नहीं रही थी।

ममता मेरे मस्तिष्क के विचारो को पकड़ने का यत्न करती हुई बोली—'ऐसे पेटी जमती होगी कहीं? 'चित्त चंदेरी मन मालवे हियो हाडोती माय।'

'यह क्या कहा ममता?'

'मैं ठीक कहती हूँ, इस समय आप यहाँ नहीं है। एक चीज रखते है, दूसरी निकालते है और फिर रखते है, इस प्रकार तो संध्या तक आपकी पेटी ही न जम सकेगी।'

'थोडी मदद तुमही करो न ममता! तुमही जमादो, मुझे थोडी देर अपने आप मे ही खोया हुआ रहने दो, यही अच्छा लगता है मुझे इस समय।'

ममता ने अपने आँचल के छोर से मुँह पर आए हुए श्रम–कणो को पोछकर कहा—'लाइए! मैं जमा दूँगी, किन्तु आपको यहीं बैठकर मुझसे बाते करनी होगी।'

ममता ने मेरे सामने से पेटी सरकाली और पास बैठकर

जमाने लगी ।

जरा तुनककर पहले अपनी भोंहों से कहा और फिर कहा—'कहो न कोई बात !'

मैं जानता था कि ममता मुझे मेरे विचारों में न बहने देगी। इसीलिए बोला 'जो तुम कहो वही करूँ। जी तो और ही कुछ चाहता है परन्तु यह शहंशाही हुक्म तो पहले मानना पड़ेगा।'

अत्यंत सहृदय भावसे ममता बोली—'जो आपका जी चाहे परन्तु होनी चाहिए बात मन से, नहीं तो यह पेटी भी टालाटूली के ढंग की ही जमेगी।'

'मैं सोच रहा था ममता अपने बचपन पर उतर आई है। यदि कोई समझदार होकर मचलता है तो उस मचलन में उसकी हार्दिक प्रसन्नता अवश्य है। या वह भोलापन है जो भूला हुआ है।

'समय प्रवास का है इसलिए एक प्रवास की ही बात सुना रहा हूँ। एक बार होस्टल में जगह न मिलने से मुझे होस्टल से बाहर रहना पड़ा। हर एक शहर में शहर के किसी न किसी हिस्से में कुछ विशेष शरीफ लोग रहते हैं। वहीं में मकानों के अभाव के कारण मुझे उन मनुष्यों में ही जाकर रहना पड़ा।

वे सबके सब इतने भले मानस थे कि मुझे जान बूझकर उनसे अपना सम्बन्ध पृथक रखना पड़ा। कुछ दिन तो उन्होंने मुझसे मिलने जुलने और अपनी श्रेणी में शामिल करने की कोशिश की. परन्तु मेरी दृढ़ता, उदासीनता ने उन्हें हताश कर दिया। वे समझने लगे कि यह अपने काम का व्यक्ति नहीं है। न किसी से बोलता है न चालता। न मेल न मुरौअत। और वे यह जानकर मुझसे चमकने लगे।

मनुष्य का स्वभाव है अपनी समानता की खोज कर लेना।

वहां मेरे ही जैसा भाग्य का भूला भटका एकाद ही व्यक्ति था, जिससे मेरी मैत्री थी। बाकी और सब ऐसे थे जिनके लिए मैं एक अनबूझ पहेली था। मेरी आदत है मैं अपने आपको कभी यह नहीं बतलाता कि मैं क्या हूँ। दुनियाँ की बुद्धि को अपने समझने का मैंने सदैव मौका दिया है। और जब दुनियाँ मेरे समझने में बेसमझी करती है तो मुझे उस समय एक अनोखा ही मजा आता है।

कुछ दिनों के बाद मैं उन लोगों की दृष्टि में एक पढ़ने लिखने वाले व्यक्ति के अतिरिक्त एक समस्या बन गया। वे सब मुझे अपने-अपने स्वभाव के ही अनुसार अपनी-अपनी दृष्टि से देखने लगे। हर मनुष्य यह चेष्टा करता है कि वह यह समझ ले कि उसके सामने वाला व्यक्ति कौन है? परन्तु जब वह उसे ठीक ठीक नहीं समझ पाता तब उसे अपनी ही बुद्धि पर क्षोभ होता है और उस व्यक्ति के तई अपने अनुमान के गलत-सही प्रयोग करना आरम्भ कर देता है।

बहुतेरों को मेरे सम्बन्ध में एक ही शिकायत थी—'बड़ा रूखा व्यक्ति है।' एक ही प्रश्न था—'आखिर यह है कौन? कुछ ही दिनों बाद सुनता हूँ कि मुझे कोई कुछ, कोई कुछ। इस प्रकार अनेक व्यक्ति मुझ एक को अनेक रूप में देखने लगे। मुझे यह सुनकर बड़ा मजा आता और तरस आता उन लोगों की बुद्धि पर। मैंने इसमें अपनी महानता ही मानी। हर एक युवा पुरुष इस दुनियाँ के लिये एक संदेह का सबूत है। तरुणाई अपने ही आप एक अपवाद है। जवानी अपने ही आप एक बगावत है। फिर किसी भावुक व्यक्ति की तरुणाई तो कभी कभी अकारण ही पाप भी बन जाती है। भावनावादी इस तरुणाई के वे सबूत हैं जो निर्दोष दोषी हैं। एक तो यह शकीला संसार यों ही, और फिर विशेषता यह कि रजीलों की बस्ती और उन्हीं की अपनी दृष्टि, बस फिर क्या था। सुन्दरता और तरुणाई किसी समय कितनी कठोर

हो जाती है, इसका मुझे तब अच्छा सा अनुभव मिला।

*आँखे कहे कि दिल ने हमे कर दिया खराब,*
*दिल कह रहा है आँख ने मुझको मिटा दिया।*

एक तो यह हालत अपने ही आप होती है। आँख और दिल की तकरार हुआ ही करती है और फिर युवक को इस तकरार के बीच होकर अपने चरित्र की रक्षा भी करनी पडती है और आगे बढना पडता है अपने लक्ष्य की ओर। यह अपने कृत्यों के रंग से रंगी हुई दुनियाँ उसे अपने ही रंग मे रंगा हुआ समझने लगती है।

संत, सज्जन और सदाचारी तो किसी को कारण के पहले भला-बुरा नही कहते किन्तु जिनका स्वभाव ही पथरीला है, उन्हे तो कभी भी किसी भी व्यक्ति पर अपने स्वभाव के पत्थर वर्षाने का पूर्ण अधिकार है।

एक रोज ठीक मेरे सम्मुख यह परिस्थिति हो गई थी कि—

*'जवानी आदमी की बायसे इल्ज़ाम होती है।*
*निगाहे नेक भी इस उम्र मे बदनाम होती है।*

रजीलों ने एक शुद्धाचरणा नारी को लेकर जिसे मैं पूज्य भावों से मानता था एक गरम अफवाह उडा डाली। मेरा मन कुछ क्षण तो खिन्न रहा, किन्तु जब मेरी निर्दोष आत्मा मुझे ने साहस दिया तो मुझे उन बौद्धिक शत्रुओं की बात पर बडी हँसी आई। इधर हमारा कालेज दशहरे की छुट्टियाँ कर चुका था। कुछ मित्र भ्रमण का प्रोग्राम बना चुके थे। जब मैं उनसे मिला तो मुझे भी उनकी योजना पसन्द आई और हम सब चल दिए मेवाड की प्राचीन वीर भूमि के प्राकृतिक सौन्दर्य—दर्शन के हेतु।'

ममता मेरी पेटी जमा चुकी थी। रामदीन बाहर से आ गया था। मैंने उसे बिस्तर तैयार करने को कहा। कुमार नींद निकाल

रहा था। ममता ने मेरी आँखों में अपनी अभिलाषित आँखे डालकर कहा—'फिर क्या हुआ?'

'यात्रा में जब कुछ अच्छे व्यक्ति मिल जाते हैं तो यात्रा बहुत सफल हो जाती है। हम सब एक से ही मौज-मजे और मस्ती के दीवाने थे। मेरे मन का सारा मनस्ताप उस यात्रा ने हर लिया।

मेवाड भारत का हृदय-प्रदेश है। प्रकृति ने वहाँ की सजावट में मानो अपना हृदय ही खोलकर रख दिया है। सुन्दर-सुन्दर गिरि-शिखरों से घिरे हुए विशाल सरोवर मानो सागरों से होड बाँधे हुए हों। पर्वत श्रेणियों की नुकीली सम आकार वाली चोटियों के ऊपर सुनहरे बादलों का बैठ जाना। ऊँचे-ऊँचे अभेद्य दुर्गों पक्षियों का सं था-सुबह वीर-गाथा-गान। घनी-घनी अमराइयों में झरनों का खोटल-गाना और चारणों की भाषा में अपनी जन्मभूमि की वन्दना करना। विविधि रंगीन प्रकृति-परिधानों से सुसज्जित पशु और पक्षी। मनमोहक प्रभात और सुहावनी सन्ध्या। तारों जडी रात और चाँद की जुन्हाई का कण-कण पर पसर जाना। मनुष्यों के मनहारी अनेकों प्रयोग जहाँ की प्रकृति का सहज स्वभाव है। इस पर मन का यह एकीकरण कि एक भाषा। एक भूषा, एक नीति, एक रीति एक धर्म, एक कर्म, एक आन, एक बान और यहा तक कि पाश्चात्य राज्य में भी भारतीय राज्य की अभिलाषा लिए हुए वे त्यागी, वे व्रती, वे संकल्प-परायण, दीन-हीन किंतु आज के सच्चे गाडूलये लोहार जिनका जीवन से मरण पर्यन्त तक का जीवन आज भी गाडियों में ही हो जाता है। आज भी वे तीन-चार सौ वर्ष पूर्व तक की प्राचीन प्रतिज्ञा के कारण घरवार बनाकर नहीं रहते, उनके घर तब बनेंगे जब उनका देश गुलामी की श्रृंखला से मुक्त होकर स्वतन्त्रता के सूर्य का दर्शन करेगा।

अपनी आन के प्रति वे आज भी कितने ईमानदार है। अपने सकल्प के प्रति आज भी वे कितने दृढ हैं? अपने धर्म के प्रति आज भी वे कितने अटल है। न तो उन्हें कोई समझाता न वे अपनी पवित्र-प्रतिज्ञा के खिलाफ कुछ सुनना और समझना ही चाहते।

यही हाल वहाँ के सूर्यवंशी नरेशो का है। आज भी उनकी शयन शैया के नीचे कुशत्रण होते है। आज भी उनके स्वर्ण-थाल के नीचे पत्र होते है? आज भी मीरा के भावपूर्ण भजन होते है और प्रात स्मरणीय प्रताप के गुणानुवाद होते हैं। आज भी वहाँ की केन्द्रित भूमि के निवासियों मे मानवता के दर्शन होते है। आज भी सेवा, सत्कार, सौजन्यता और वास्तविक शिष्टाचार हैं। धन्य हैं उस वीरभूमि को और वहा के निवासियो को। जी चाहता है उस भूमि के फिर-फिर दर्शन किए जायें और वहाँ की गाथाएँ बार-बार सुनी जाएँ। इधर हम लोगो मे गाना रोना, हँसना, कहना, सुनना खेलना, सब होता था। और हमारे भाग्य से हमारी समाज मे एक विधुर महाशय भी थे जिनका अधिक समय हम लोगो के साथ हाय-हाय करते ही व्यतीत होता था। कुछ लडके उन्हे छेड देते और फिरवे दिल-ही-दिल रो चलते और सुना चलते अपने अतीत के जीवन सपने। उनके जीवन की कटीली कहानियों को सुनकर हम लोग हँसते थे, किन्तु आज दिल महसूस करता है कि स्नेह की पीडा मे सचमुच ही कितना दर्द होता है।

आज यहाँ, कल वहाँ, कहीं खाना, कही रहना इसी प्रकार हम लोगों ने अपनी छुट्टी के दिन पूरे कर लिए। जब लौटे तो ऐसा लगता था कि प्रवास हम लोगो की ताजगी का सबसे बडा साधन था। दृश्य-दर्शन, वस्तु-दर्शन और व्यक्ति दर्शन ने मानव आत्मा को पुनः सजा दिया और मन नूतनता अनुभव करने लगा। आज भी उस यात्रा

के दृश्य दर्शन, चित्र कला, मूर्तिकला की स्मृति मेरे मन में आनन्द और गुदगुदी पैदा कर देती है। इसी प्रकार यह यात्रा भी मेरे जीवन का महापर्व बनकर जीवन की अमर गाथा बन जाना चाहती है। यही मैं सोच रहा था परन्तु आप क्यों मौन.. ...।'

ममता गंभीर दृष्टि से मेरी ओर देख रही थीं और रामदीन बिस्तर तैयार करके गाल को हाथ लगाए मेरी बात सुन रहा था। मैंने रामदीन से कहा—'रामदीन कुमार को जगा दो और यह बिस्तर भी ठीक कर दो।'

मालूम होता था ममता फिर भी कुछ कहना अथवा पूछना चाहती थीं शायद रामदीन की उपस्थिति के कारण वह कुछ पूछ न सकीं।

ममता के चेहरे पर भी विचार की रेखाएँ उभर आईं। या तो वे अतीत से वर्तमान की तुलना कर रही हों या वर्तमान से भविष्य का चित्र अंकित कर रही होंगी। मैं अपने में। ममता अपने में। रामदीन कभी कुमार की मनुहार में, कभी हम दोनों के मुखों पर लिखे हुए मूक भावों को पढ़ने में और कभी तैयारी करता हुआ सा दिखलाई देता था। था ही क्या जो देर लगती। ममता का बिस्तर रामदीन ने बाँध दिया और पेटी बे मन से ही ममता ने जमाली। रामदीन कुमार को गोद में बैठाकर कुली की खोज में गया। मैंने ममता के सम्मुख जाकर कहा—'ममता! यदि इस ममता की सृष्टि का विछोह न होता, ममता विलग न होती तो कैसा होता! कितना सुखमय होता जीवन। तुमने मेरी धुंधली जीवन ज्योति में आत्मप्रकाश देकर इस योग्य बना दिया कि मेरे भावी जीवन का आलोक बन गया। भले ही यह दुनिया मेरे इन क्षणों का कुछ भी अर्थ लगा ले किन्तु मैंने तु मुझ से अनेक रंग की हीरे जैसी आभा पाई है। मेरा कोई नहीं थ

तुमने मेरा मुँह अपनी ओर मोड लिया। मेरा जीवन अनुरंजित हो उठा मुझे अब अपने जीवन से मोह हो गया। क्या तुम्हारी इस कृपा के कभी भूलकर भी भूल सकूंगा। लाओ जी चाहता है तुम्हारे चरण छू लूं।'

ममता ने दोनों हाथों से मेरे हाथ पकड लिए। अपनी चोटी से बँधे हुऐ धागे के खोलकर कहा—'लीजिए! यह मेरी रक्षा है आप इसे रक्षा बंधन और आज के दिन को श्रावण का दिन मान लीजिए। फिर ममता ने अपनी अलकों को संवारते हुए कहा—'स्नेह और प्रेम का अन्वर तो पुनीत होता है स्वार्थ और वासना निकटता चाहती है। किन्तु जहां स्वार्थ और वासना होती है वहाँ स्नेह और प्रेम की निर्मलता नहीं रहती। न वह स्नेह स्थायी ही होता है। आपके और मेरे सम्बन्ध मे तो अब वह अमरता आ गई है जो मृत्यु के बाद भी जीवित रह सकती है। स्नेह की निर्मल अवस्था मे भय नहीं होता सकोच नही होता, आत्मग्लानि नही होती। मैं तो सोचती हूँ हम शरीर से दूर रह कर भी दूर नही रहेंगे। प्रणय की पुनीत सरिता की निर्मल वीचियो मे रोज ही स्नान होंगे। हम अपने आपको नही भूले है, जो भूल जाते है वे सुखी नहीं रहते। सु-वासित सुमनों की सुगध का आनन्द तो वहाँ है जहाँ वाटिका है। किसी की माला मे बिंधे हुए फूल को तोडकर एकान्त कोने मे बैठकर ली जाने वाली सुगन्ध, सुगंध भले ही हो किन्तु सौन्दर्य और सुखप्रद तो नही हो सकती।'

'मैं तुम्हे प्रसन्न करने की दृष्टि से नही कहता अपितु अपने हृदय के भावो को स्पष्ट कर रहा हूँ कि जीवन-पथ मे मैं तुम्हारे ही संकेत पर चलूँगा। आत्मा का एक सुख यह भी हो सकता है कि मनुष्य स्वयं पथ-प्रदर्शक न बनकर केवल पथिक बन जाए। अपने आपको किसी को सौंपकर निश्चिन्त हो जाए और अपना किसीको न

कहकर स्वयं किसी का कहलाने लगे।

एक रोज एक बूढ़ा फकीर जो अपने जीवन के अस्सी वर्ष पार कर चुका था, उसके कन्धे पर अनेकों पैबन्दों की गुदड़ी, हाथ में लकड़ी और दोनों कन्धों पर दो झोली लटकाए था, मानो उसने दुनिया के अनेक अनुभवों को बटोरकर अपनी झोली भर ली हो। जीवन की रंग बिरंगी घड़ियाँ मटमैली होकर जैसे उसके जीवन का भार रूप बन गई हों जिसे वह अपनी सूखी पीठ पर लादे हुए, लकड़ी शेष जीवन का सहारा और वह लकड़ी के सहारे जर्जर काया लिए अपने ही आप मार्ग के एक किनारे पर चलता हुआ कहता जा रहा था—क्या किया रहीम तूने हरएक का आशिक बनकर। इस आशिकी में क्या मजा मिला? अगर किसी का माशूक बना होता तो जिन्दगी का मजा तो आता।'

मैंने अपने साथी से कहा—'सुन लो! बूढ़ा अपनी जिन्दगी के अनुभव बिखेरता हुआ जा रहा है। पहले तो हम दोनों ही हँसे पर जब सोचा तो मालूम हुआ कि वह कुछ कीमती बात न कह रहा था।'

रामदीन उसी कुली को पकड़ लाया जो हमारा सामान उस रोज धर्मशाला से लाया था। उसने हाथ जोड़कर राम-राम की। रामदीन ने उठाकर उसके सिर पर सामान रख दिया। ममता ने सुराही उठा ली। रामदीन ने कुमार को गोद में ले लिया। मैं आगे हो लिया और वे सब मेरे पीछे-पीछे। स्टेशन तक हम सब अपने-अपने मौन नियन्त्रण में थे। सिर्फ रामदीन और कुमार में बचकानी बातें होती जाती थीं।

कुली ने सामान उतार दिया। रामदीन ने मुझे नोट से बचे हुए पैसे लौटाए। मैंने रामदीन को दो रुपये दिए। जिस इनाम को रामदीन ने बड़ी मनुहार के बाद स्वीकार किया। अपनी गीली आंखें

को बार-बार पोछकर अपने हृदय का स्नेह आँखों की लाली के रूप मे प्रकट कर दिया। मेरे पास केवल स्नेह और धैर्य के अतिरिक्त कुछ था ही क्या जिसे मैं उसे देकर उसके आसुओं का मूल्य चुकाता। समझा-बुझाकर मैंने रामदीन को लौटा दिया।

गाडी को देर थी। मैं टिकिट ले आया। हम अपने पेटी बिस्तरों पर बैठ कर कॉटे के पास बैठे हुए एक विशेष कुली का तमाशा देखने लगे। गोरा शरीर, लम्बी नाक। सिर पर अस्त व्यस्त मैला साफ। काला कोट और मैला पेंट। साफे मे कान के पास खुशी हुई वंशी और वह उन सबके मध्य मे बैठा था। आस-पास कुलियों का जमाव था। मेरी नज़र पडते ही उसने मुझे हाथ उठाकर सलाम की और फिर गाँजे की चिलम की तैयारी मे लग गया। थोडी ही देर बाद उन सब ने दम लगाई और उसके बाद वह अपनी वंशी निकालकर बजाने लगा। उसका स्वर साफ था किन्तु वह जानबूझकर चीज को बिगाड़ रहा था। कुली मौज से यार, दोस्त की भाषा मे बाते कर रहे थे।

मैंने कहा—'भाई, जब बजाना जानते हो तो ठीक क्यों नहीं बजाते; चीज बिगाडते क्यो हो ?'

वह कुछ सहम गया और बोला—नहीं बाबू साहब ! अच्छा बजाना कहाँ आता है। यो ही मन बहला लेता हूँ।

गौर से देखने पर मुझे वह सूरत अपनी परिचित मालूम हुई। लेकिन किसी ऐसे कुली मे मेरा परिचय। मै अपने ही आप मे सकुचा गया। उसने भी मुझे जरा आँखे गडाकर देखा और बोला—'अच्छा बजाना तो नहीं आता परन्तु आपको एक चीज सुना देता हूँ।'

एक सिनेमा की चीज सुनाई। [उसके बाद उसने मुझे अलग बुला कर कहा—'आपने मुझे पहचाना ?'

मैं बोला—'कुछ परिचित से तो मालूम होते हो परन्तु बराबर

याद नहीं आता।'

उसने अपने पिता का नाम लिया।

'तुम वर्माजी के लडके हो ? मैं तुम्हे इस भेष मे कैसे देख रह हूँ, आपका नाम ?'

'उसने धीरे से मुस्कुरा कर कहा—'गिरिजाशंकर सिह परन्‍ यहाँ का—छुन्नु ?'

'भाई खूब, तुम तो एक तमाशा वन रहे हो।'

'भाई साहब ! क्या किया जाय, भाग्य से नौकरी ही ऐसे डिपार्टमेंट मे मिली है।'

'और इस पेट ने किसे अपने वास्तविक रूप में रखा है, इसने किसका रूपान्तर नहीं किया है। किसका नया नाम नहीं रखा है।

'आप रमेश को तो जानते ही होंगे ?'

'हाँ, हाँ, कल तो वह यहीं था।'

'आज सुबह की गाडी से वे अपनी प्रेमिका के साथ सी० पी० ले जाए गये है।'

'तुमने तो खूब गाँजा बाँजा पीना सीख लिया है ?'

पीना पड़ता है भाई साहब, पर धुआँ गले से नीचे नहीं उतरता। मुँह मे भर कर ही छोड देता हूँ।' मुझे तो कई रूप रखने पडते है और चरसी, जुआँरी, गुण्डे सभी का सहयोगी बनना पड़ता है। उनमे घुल-मिल जाना भी पडता है, किंतु अपने को भूलना नहीं पडता।'

इतने मे ही एक कुली ने आवाज़ दी—'ओ छुन्नु ! ओ छुन्नु ! चल तेरे... .।'

'अच्छा चलूँ भाई साहब !'

'अच्छा।'

वह चला गया और मैं आकर ममता के पास बैठ गया। छन्नू ने सिर पर एक मुसाफिर का सामान लादा और जाते हुए मेरी तरफ देख कर एक मीठी सी मुस्कान से मुस्करा दिया। ममता ने मुझसे पूछा—'यह कौन है ?'

'यह एक पढ़ा लिखा आदमी है जो पेट का तमाशा कर रहा है ?'



कुली आ गया था और हमारी गाडी का समय भी हो गया था। कुली ने सामान उठाया। मैंने कुमार को उठाया और ममता ने सुराही ली। गाडी पर देखा तो छुन्नू अपना पेट दिखलाकर बाबूजी से पैसों के लिए गिड़गिड़ा रहा था। मेरे कुली ने खाली सीट पर बिस्तर रख दिया और पेटी सुराही आदि को ऊपर जमाकर रख दिया। हम लोग फिर उसी प्रकार बैठ गए और मुसाफिरो ने हमारे सम्बन्ध में फिर वही अनुमान कर लिया। सुराही फिर अपने ही स्थान पर थी कुमार अपनी मौसी के पास था परन्तु अब वह प्यासा न था। योग के पहले जो परिस्थिति थी वियोग के पहले भी वही परिस्थिति हो गई। उस समय मिलन की अभिलाषा व्याकुल किए हुए थी अब विछोह की पीडा परेशान कर रही थी। ममता उसी प्रकार आवरणमयी थी और मैं मुसाफिर की भाँति फिर मर्यादित।

मुझे पिछले तीन दिनो की बाते याद आ रही थी और ममता को शायद अपने पितृ-गृह की ममता सता रही थी। कुमार के सम्मुख स्टेशन का सारा कौतूहल था जो उसे शायद बहुत पसन्द था, पर हमें नहीं। थोड़ीसी प्रतीक्षा के पश्चात जब गाड़ी ने सीटी दी तो मेरा मन वैसा ही हलका हो गया मानो गर्मी के दिनों में ओढ़ी हुई दुलाई को हटा देने पर शरीर हो जाता है।

गाडी के चलते ही हम देखते है कि सत्य-असत्य और असत्य-सत्य दृष्टिगोचर हो रहा है। जो पेड-पौधे, नदी नाले, जीव-जन्तु, स्थिर थे वे तेजी से दौडते हुए नजर आ रहे हैं और हम जो यथार्थ मे दौड रहे थे स्थिर प्रतीत होते थे।

मैंने ममता से कहा—'देखो ममता वृक्ष कैसे दौड रहे हैं ?'

यद्यपि ममता सत्य को समझती थी, फिर भी जो देखती है वही कहना चाहिये, इस इरादे से बोली—'हाँ।'

'जब जीवन की गाडी तरुणाई के वेग को लेकर दौडती है तो दर्शक इसी प्रकार भ्रम मे पड जाता है। वह सत्य को समझता है फिर भी तुम्हारी ही तरह असत्य को सत्य के नाम पर स्वीकार करता है। दूसरी ओर मनुष्य यदि अपनी सारी शक्ति, मन का दृढ निश्चय और हृदय का सारा एकीकरण लेकर आशा के पथ पर सतत प्रयत्न करे तो सामयिक और आवश्यक प्रतिबन्धो का पूर्ण रूपेण पालन करता हुआ भी दुर्गम और अगम को सुगम-सुलभ पथ बना सकता है—' जिस पर जीवन की गाडी एक सीध मे दौड सकती है।

अपने साहस के वाहन पर पूर्ण विवेक के साथ आरूढ़ रहो। मार्ग के विघ्न-बाधाओं की तनिक भी चिन्ता न करो तो वे पुल की भाँति अपने आपको सीमित करके तुम्हें अपने ऊपर से मार्ग दे देंगे। एक दिन तुम अपने निश्चित स्थान पर अवश्य पहुँच जाओगे।

मनुष्य यदि कहीं सफल हुआ है तो वह अपने विवेक से। पिताजी के न रहने पर शेप सम्पत्ति के स्वामी उनके बडे भाई जो दूसरे गाँव के रहते थे बन बैठे। मुझे उसके लाभ से महरूम रखा। एक दिन वह भी आया जब वे अपने गाँव के भद्र व्यक्तियों के बीच बैठकर मेरे भाग्य का निर्णय मुझे दे रहे थे। जिसका तात्पर्य यह था कि यह पैत्रिक सम्पत्ति है गैर जुम्मेवार को सौंपकर हम इसकी क्षति नहीं कराना चाहते। गाँव के बूढे-बूढे सब उन्ही की हाँ मे हाँ मिला रहे थे। वे उनसे प्रभावित भी थे।

मैंने कहा—'आपको धन्य है और आपके न्याय को धन्य है कि जिसने एक ऐसे बच्चे के मुँह से रोटी का टुकडा छीना गया जो

दुध मुँहा है और ऐसे बच्चे के मुँह मे जबरन ठूंसा जा रहा है, जिसका बचपन तो क्या जवानी भी खत्म हो चुकी है और जिसके पिता अभी जिन्दा हैं, जो न्याय कर रहे है।'

बस यही एक बात थी कि लोगों के दिलो मे उतर गई और जो थोडी देर पहले उनकी बात का समर्थन कर रहे थे वे मेरी बात का समर्थन करने लगे। अन्त मे उन्हे उस बात का कायल होकर वह हिस्सा मुझे दे देना पडा। एक दो नहीं जीवन मे अनेकों घटनाएं ऐसी आई है, जिनमे केवल विवेक ही मेरा सहायक हुआ है।'

ममता ने मुस्कुराकर कहा—'आपके विवेक ने ही तो मुझे कुछ से कुछ बना दिया। मैं सोचती हूँ मुझे हो क्या गया। जिस कल्पना को मैंने कभी स्वप्न मे भी स्थान नहीं दिया, मैं उसमे इतनी गहराई तक कैसे उतर गई आश्चर्य होता है।'

मैंने कुमार को गुदगुदाते हुए कहा—'आप उतरी तो क्या हुआ कुमार बेटा तो गंगा की गहराई मे ऐसा उतर गया था मानो भगीरथ को ढूढने गया हो।' कुमार बेसमझी बात ही मे हँस दिया और हम दोनो फिर से, कुमार न मिलता तो क्या होता, मिल कर इसने हम लोगों पर कितना उपकार किया है; इसी चर्चा को बहुत देर तक करते रहे। स्टेशन कब आता था और कब निकल जाता था, हम लोगों को भान ही न हुआ।

अचानक ही एक तरफ हमारे डब्बे मे तू–तू मैं–मैं छिड गई और वह इतनी अधिक बढ गई कि सारे यात्रियो का ध्यान उस ओर हो गया। ममता मैं और कुमार भी उसी ओर देखने लगे। उन दोनों में असभ्यता का भली प्रकार आदान-प्रदान हो रहा था। दोनों ही गरम मिजाज थे। दोनो ही थे तो एक भाषा–भाषी परन्तु विशेषता यह थी कि दोनों ही भली भाँति हिकलाते थे। एक कट्टर आर्य समाजी

और दूसरे तिलकधारी सनातनी। एक शरीर से तगडे थे और दूसरे दुबले-पतले। अटक-अटक कर एक दूसरे को देते थे परन्तु देते गालियां ही। एक तो शान्त वातावरण में गाली-गलौज़ के कारण क्षोभ होता था और साथ ही उन दोनों की हिचक-हिचक कर दी जाने वाली गाली-गलौज में मजा भी आता था। एक कह रहा था—ससासा ' ' अ अ अगर मे मे मे रा घ व घ र हो हो हो होता तो तो तो क क का कान प प प पकड क क क र बाबा बाहर नि नि निकलवा दे दे दे देता।'

दूसरा कह रहा था—अ अ अगर मे मे मेरा घ व घर हो हो होता तो घूँ घूँ घूँसा मा मा मार क क कर नि नि नि निकाल ताता ..।'

मुझसे रहा नहीं गया। उनके पास पहुंच कर मामला समझने की कोशिश की तो पता लगा कि जब परिचय हो रहा था तो पहले व्यक्ति को दूसरे ने समझा कि यह बदमाश है, मेरी नकल कर रहा है। इसलिये पहला व्यक्ति उसके परिचय से और आगे घर तक चल दिया। दूसरे ने भी यही समझा और वह भी उसके घर तक पहुंच गया।

महज़ धोखा था। वास्तव में थे दोनों ही हिकले। जब यह बात सिद्ध हो गई कि कोई किसी की नकल नहीं कर रहा था। भगवान ने उन्हें बनाया ही ऐसा था, तब दोनों ने अपनी एक सी ही दलील पेश की। अन्त में मामला समझा बुझा कर शान्त कर दिया गया। थोड़ी देर मेरा और ममता का इसी बात पर मनोरंजन होता रहा।

जरा देर के बाद फिर एक घटना घटित हुई। फिर एक लड़ाई छिड़ी। मानो डब्बे में नारदजी ही पधार गये हो। एक और लालाजी

(सेठजी) थे जो पगडी, कुर्ता, कोट, और दुपट्टा और नई धोती पर फटी जूतियों से साफ सेठजी जाहिर होते थे। दूसरी ओर एक महाशय शुद्ध खद्दरधारी थे, देशभक्त किंतु नवयुवक जो सेठजी से आधी उम्र के लगते थे।

लालाजी ने पूछा—'जनाब ! आप क्या गांधीजी के चेले हैं ?'

युवक ने उन्हे कम अकल समझकर लालाजी से—'हाँ।' कह दिया।

लालाजी ने हाथ पर हाथ मल कर कहा—'गाँधीजी ने तो रोजगार ही चौपट कर दिया। साहूकारों के गले घोंट डाले, हाथ में नट्टी लेने की हालत कर दी।'

'आप समझते हैं आप किस व्यक्ति के सम्बन्ध मे कह रहे हैं, और क्या कह रहे है !'

सब समझते हैं साहब धूप मे बाल थोडे ही पकाए हैं। आपकी उम्र के तो मेरे लडके है, आप समझते क्या है ?'

'लडके आपके मेरी उम्र के अवश्य होंगे परन्तु आप एक महापुरुष के सम्बन्ध मे क्या कह रहे हैं ?'

'ठीक कहता हूँ साहब, पाँच लाख रुपया गाँधीजी का अमरीकान के बंक मे जमा है।'

'क्या आपका दिमाक तो खराब नहीं है ?'

'जब आप लोगो को सच्ची बात कहते है तो आप लोग दिमाक खराब बतलाते हो। आप लोगों ने ही तो चन्दा कर करके देश को लूट डाला—सुराज लेंगे, सुराज लेंगे, लिया सुराज ? कहाँ है, सुराज ? रास्ते मे ही पडा है जैसे सुराज लेना ?

'लालाजी ! आपने दो चार आने कभी दे दिये हों तो आप मुझसे ले लीजिए, मगर बिना सोचे समझे आपको किसी महापुरुष

सम्बन्ध की कोई गलत बात नहीं कहनी चाहिए। आप देश के सबसे बडे हितचिंतक–महापुरुष के लिए इस प्रकार कुछ भी कहते हैं यह बात अच्छी नही है !'

युवक ने बडी शालीनता से उन्हे समझाया परन्तु लालाजी की समझ मे राख-धूल कुछ भी न आया। आता भी कैसे ? बेसमझो ने समझदारो को बेसमझ समझकर कब, कहाँ, किसे बुरा नही कहा है जो लालाजी महाशय महात्माजी को न कहते ?

इसी प्रकार बातो ही बातों मे बात बढ गई। कुछ बूढे बेसमझ लालाजी का समर्थन-करने लगे और कुछ समझदार, देशभक्त महाशय का समर्थन करने लगे। जब युवक लालाजी की बढी हुई हरकतों से तंग आ गया तो उसने कहा—'बाबा, तुम्हारा दिमाक खराब हो गया है। अगर मेरी जगह कोई दूसरा आदमी होता और आप उसे इस प्रकार गाली देते तो वह खिडकी के रास्ते आपको चलती गाडी से नीचे फेक देता।'

उस युवक का कहना था कि लालाजी तो उसके गले ही पड गए। इसके बाद स्टेशन आ गया। पोलिस को युवक ने यह कहा कि—'ये लालाजी पागल है, अल्ल–बल्ल बकते हैं। इसलिए आप इन्हे किसी दूसरे डब्बे मे बैठा दीजिए वर्ना यहाँ झगडा हो जायगा।'

पोलिस मैन ने आकर ज्योंही लालाजी का हाथ पकड़ा कि लालाजी उसपर ही टूट पडे और इस बात ने उसे विश्वास दिला दिया कि युवक की शिकायत सही है। यह पागल है। ज्यो-ज्यों उसने लालाजी को उठाने का प्रयत्न किया, त्यो–त्यो लालाजी और बिगडे। अन्त मे उसे अपनी सही भाषा मे बोलना पडा—'उठता है कि पुट्ठे पर डंडे जमाना पडेंगे, तब मानेगा ?' एक हाथ मे लालाजी का हाथ और दूसरे मे लालाजी की पोटली, इस प्रकार उसे डब्बे से नीचे उतारा।

तब कुछ मनचले युवकों ने लालाजी से बड़े अदब से राम-राम किया। इसका अर्थ यह हुआ कि लालाजी ने अत्यन्त क्रोधित होकर सबको गालियाँ दीं, फलत. सिपाही का धक्का खाया। सिपाही ने उन्हें ले जाकर दूसरे डब्बे में बैठा दिया। आप भी उन्हींके पास बैठ गया।

सारे डब्बे में यही चर्चा जहाँ-तहाँ चल रही थी। भिन्न भिन्न आलोचनाएँ हो रही थीं। मैं और ममता भी उसकी आलोचना कर रहे थे। संध्या हो गई थी और ममता ने बातों ही बातों में मुझे कह दिया था कि—'अब फतहपुर ही आएगा।' मैं अपने बिस्तर वे लपेट कर एक सरसरी नजर से सारे सामान को देख चुका था। कपड़े पहन लिये थे और उतर जाने की पूरी तैयारी कर चुका था कि स्टेशन एक लम्बे प्लेटफार्म के साथ आ गई।

सब सामान उतारा और हम उतरे। जाने क्यों उस रोज न तो अधिक गाडी से उतरने वाले ही थे न सवार होने वाले ही। गाड़ी के छूटने पर गेट खुला। ज्योंही मैंने टिकिट दिए तो गेट कीपर महाशय ने पूछा—'आप लोग कहां जाएँगे ?'

उसका इस तरह पूछना मुझे अच्छा नहीं लगा। उसे टिकिट लेने का अधिकार है; न कि यह पूछने का अधिकार कि 'आप कहाँ जाएँगे।' मैंने कहा—'देहात जाएँगे, कहिए? आपके पूछने का मतलब?'

'आप नाराज न हों महाशय, मेरा मतलब यह है कि आजकल यहाँ की आसपास की देहातों में लूट-खसोट हो रही है। इस गाड़ी से उतरने वाले कितने ही मुसाफिर लुट गए है, आपके साथ जनाना है, इसलिए आपसे पूछा।'

उसने इस ढंग से कहा कि बात मेरी समझ में एकदम आ गई। मेरे सारे भाव जो रोष-पूर्ण थे, एकदम घुल गए। मैं, मन ही मन उस व्यक्ति का आभारी होकर बोला—'

'यहाँ मुसाफिरों के ठहरने के लिए कोई उचित स्थान है क्या ?'

'यहां आपकी जान-पहचान के कोई होंगे न ?'

'जी नही। कोई धर्मशाला, सराय आदि तो होगी ही ?'

'मेरे ख्याल से यहाँ कोई सराय वराय नहीं है। आप स्टेशन मास्टर साहब से मिल लीजिएगा। शायद वे वेटिंग रूम में आपको ठहरने की इजाजत दे दें।'

मैंने उसे धन्यवाद दिया। ममता से यह सब कुछ कह सुनाया। ममता ने भी समर्थन किया—'हाँ, इन दिनो मे अक्सर रास्ते मे रात के वक्त लूट-खसोट हो जाया करती है। उसने आपसे ठीक कहा है।'

'ठहरने के लिए भी यहां कोई जगह नहीं है। रात भर किसी खुले मैदान या मुसाफिरखाने मे पडा रहना तो अच्छा नही। स्टेशन मास्टर से मिलता हूँ, तुम यहीं ठहरो यदि वह वेटिंगरूम मे ठहरने देतो अच्छा ही है।'

ममता समान के पास बैठ गई। कुमार को ममता के पास छोड़ा और मैं वेटिंगरूम मिलने की इच्छा को लेकर स्टेशन मास्टर के आफिस मे गया। पहुँचकर नमस्ते की और अपनी सारी बाते उसे कह सुनाई। स्टेशन मास्टर ने गंभीरता से मेरी बातें सुनीं फिर शालीनता से मुझसे कहा—'आप लोग ठहर सकते हैं। मैं अभी पोर्टर को भेजकर बत्ती-पानी का इन्तजाम कराए देता हूँ।'

मैंने आभार प्रदर्शित करते हुए विदा ली। अपना सारा सामान वेटिंगरूम मे रखकर हम तीनो दरवाजे पर खडे सूने प्लेटफार्म को देख रहे थे और प्रतीक्षा कर रहे थे उस पोर्टर की जो हमारे अन्धेरे स्थान में आलोक का प्रबन्ध करेगा।

हाथ मे लेम्प लिए हुए पोर्टर आया राम-राम की और लेम्प रखकर बोला—'बाबूजी, टप भर देता हूँ और पीने के लिए एक मटका

रख देता हूँ।' मैं उसकी सहृदयता ही क्या पूरे स्टेशन के व्यक्तियों की भलमनसाहत की ममता से सराहना कर रहा था। 'कितने भले मनुष्य हैं ये लोग—यदि बाबू नहीं कहता तो हम, मुमकिन है, लुट जाते। स्टेशन मास्टर वेटिंगरूम न देता तो रात भर ठहरने के लिए परेशान हो जाते। और यह बेचारा पोर्टर भी कितना भला आदमी मालूम होता है जो बिना कहे ही आवश्यकताओं को समझता है।'

गोल टेबिल पर लेम्प था। बेत के पलंग पर मैंने अपना होलडाल खोला। आराम कुर्सियो पर हम लोग बैठ गए। पोर्टर ने तीन चार बालटी पानी से टप भरा। एक भरी हुई बालटी रखी, और एक मटका रखकर बोला—'बाबूजी, और कोई काम हो तो मुझे आवाज दे लेना मेरा नाम-भरोसे है। रात की ड्यूटी है, रात भर यहीं पर रहूँगा।'

मैंने कहा—'हम लोग कुछ खाना-पीना चाहते हैं। यदि किसी अच्छीसी दूकानसे कुछ खाने को ला दो तो तुम्हारी मेहरबानी ही होगी।'

अत्यन्त निनम्र होकर बोला—'ला दूंगा बाबूजी! काम करने से थोड़े ही आदमी छुनता है।'

जब मैंने उसे रुपया दिया तो वह हाथ में रुपया लेकर बोला—'क्या-क्या ला दूं बाबूजी ?' बाबूजी बेचारे खुद ही न जानते थे कि यहां आखिर क्या-क्या मिलता है।

इसलिये यही कहना पडा—'आध सेर पूड़ी, कुछ नमकीन और मीठा।' वह उधर गया। ममता अपनी कुर्सी पर मौन बैठी थी, किंतु उसका मुख मण्डल फुल्ल इन्दीवर सा प्रतीत हो रहा था। जाने क्यों ?

मैंने कहा—'ममता! इस समय तुम इतनी अच्छी लग रही हो मानो अभी काश्मीर के शालीमार बाग ने अपनी सारी सुन्दरता तुम्हें ही दे रखी हो। बतलाओ! ऐसी क्या खुशी है?'

मुस्कुरा कर ममता ने कहा—'भगवान जाने मैं सुन्दर हू या ापकी आँखें जो सुन्दरता का मूल्य आँकना जानती है।' ममता ारे पास की कुर्सी पर आकर बैठती हुई बोली—'आपने उससे जाति ी नहीं पूछी और पूड़ियाँ मँगवा ली।'

मुझे ममता की भोली बात पर एकदम हँसी आ गई, जिसका ाट्टहास सारे वेटिंग रूम मे गूंज उठा।

'ममता! तुम बड़ी धर्म-भीरु हो। हम लोग जिस व्यक्ति के ाथ का पानी पी सकते हैं, उसके हाथ की पुड़ियाँ खाने मे क्या ोष? आखिर वह बेचारा अपने हाथ ही में रखकर तो लाएगा। कुछ ़डियो के अन्दर तो बैठ नहीं जायगा। फिर हम मुसाफिरी मे हैं, यहाँ । सब बातें नहीं देखी जातीं।'

बीच ही में ममता ने कहा—'अम्मा तो इतनी सतर्क रहती ़ इस मामले में, किजब हम लोग परदेश से आते हैं तो सबसे पहले ंगाजल देती है तब कही हम लोगों को चौके मे घुसने देती हैं।'

'उन बूढे मनुष्यो की बात छोड़ो। उन्हे तो आज भी सोलहवीं ाताब्दी के सपने याद आते है। घर-घर के बूढे व्यक्तियो के ये ही ाल है। उन लोगों के जीवन से हमे अपने आचार-विचारों मे बडी ावधानी मिलती है।'

एक रोज की एक बडी अच्छी बातहै। मैं एक हेडमास्टरके लडके ो पढाने जाया करता था। लडका व्याकरण और गणित के मामले ें बहुत ही गधे मिजाज का था। जब मैं उसे पढाता तब मास्टर ाहब की बूढी अम्मा लकडी के टेके से चलकर आ जाती और आकर ाच पर बैठ जातीं। मानो वह इसलिये रोज बैठती हो कि कहीं मास्टर लडके को बिना पढाए ही तो रुपये नही ले जाता है। परन्तु इतनी अच्छी बात थी कि जब तक गोविन्द मेरे पास पढ़ता था, वे बोलती न

थी; चुपचाप अपनी माला के मनिए फेरा करती थीं।

एक रोज मैंने गोविंद से पूछा—'गोविन्द ! संज्ञा किसे कह हैं ?' गोविन्द ने गलत बतलाता। 'गोविन्द ! क्रिया किसे कहते हैं गोविन्द चुप, परन्तु बुढिया अम्मा बोलीं—'भैया ! यह क्या बतला किरिया। किरिया करम तो इसका बाप जीतमल भी नहीं जानता बाहर से आयगा, हाथ धोएगा न पाँव; घर मे घुस जायगा। कप पहने ही रोटी खाने बैठ जायगा। जिसका बाप ही किरिया भ्रिष्ट उसका बेटा किरिया क्या जाने।'

'ममता ! सच कहता हूँ, मैं उस समय इतना हँसा कि लोट-पो हो गया। मैंने लडके से क्या पूछा और अम्मा क्या समझीं !' मे इस बात से ममता को भी हँसी आ गई। मैंने कहा—'संसार क स्वभाव है, गलतफहमी।'

गम्भीर होकर ममता ने कहा—शहरों के लोगों का कु ठिकाना नहीं।'

'यह तो तुम सच कहती हो।—शहर मे अधिक लोग इस प्रकार के भी होते हैं जिनके माता-पिता का भी ठीक-ठीक पता नहीं माता कोई जाति; पिता कोई जाति, सन्तान कोई जात। एक बार मैं योंही प्रवास मे था। भूख लगी, एक दूकान पर जा बैठा और पूडिय लेकर खाने लगा। अन्दर एक औरत बैठी हुई थी जो पूडियाँ बट रह थी। पूड़ियाँ खत्म हो गईं और वह उठकर चल दी। जब पूडियाँ ख चुका तो जनेऊधारी लाला को पैसे चुकाए और चल दिया। थोड़ी दूरी पर पान की दूकान थी जिस पर वह देवीजी बैठी हुई थीं। मैंने उनसे पान लिया। वह अपने चचल नयनो से बार-बार मुझे ऊपर से नीचे तक देखकर बोली—

'आप तो अभी हमारी दूकान पर पूड़ियाँ खा रहे थे न ?'

मैंने कहा—'जी हाँ !'

'कहाँ रहते है आप ?'

'मैंने यों ही कह दिया—जबलपुर ।'

पान लेते हुए मैंने पूछा—'आप लोग कौन महाजन है ?'

वह जरा शर्मिन्दा-सी होकर बोली—'बाबूजी ! महाजन तो वे मैं तो जाति की नायन हूँ । आपसे झूठ क्यो बोलूं । अपनी जाति छिपाना ?'

मैंने समर्थन करते हुए कहा—'नहीं ! जाति नही छिपाना ग्ये, भगवान बुरा मानते हैं ।'

देवीजी बोली—'ऐसे ही प्रेम हो गया बाबूजी, तो घर से चल । यहाँ आए तो कुछ रोजगार तो चाहिए ? दो दूकाने है । भगवान ाथ पकड़ लिया तो चार पैसे भी है । दो तीन बाल बच्चे भी हैं । हाँ बैठते हैं, मैं इस दूकान पर बैठती हूँ ।'

मैंने प्रश्न किया—'लालाजी की विवाहिता पत्नी है क्या ?'

नही बाबूजी उनका ब्याह ही नहीं हुआ था । ब्याह तो मेरा . ।'

मैंने कहा—'अच्छा, अच्छा, कोई बात नही, मजे-मौज से ाओ खाओ !'

है है हैं है करके बोली,...'और क्या सिगरेट दूँ बाबूजी ?'

'नहीं मैं सिगरेट नही पीता ।' मैं अपने आपसे ही कहता ा—'अनंत ! पानी पीकर तूने जाति पूछी ही क्यों ? इससे तो कुछ ा ही न होता तो अच्छा था । तब से अब अपने राम इन शहराती ानदारों से कम से कम जाति नहीं पूछते । जो खाना पीना होता खा-पी लेते हैं ।'

ममता ने मेरी बात का समर्थन किया । मैंने कहा—'मान लो.

जो कहीं रमेश श्रीमती कलिया देवी के साथ रह जाए तो उसे यही पान-वान की दूकान रखना पडे जो थोडे पैसों में तैयार हो जाय और उसके बाद लोग यही समझें कि ये आपस मे पति-पत्नी ही होंगे। शहर में कौन किसको पूछता है? मध्यम वर्ग के लोग किसी विशेष घटना के बाद अक्सर यही करते है।'

हमारी बातें चल रही थीं कि पोर्टर सामान लेकर आ गया। कुछ बचे हुए पैसे भी सामान के साथ टेबिल पर रख दिये।

मैंने कहा—'इन पैसो को तो तुम ही अपने पास रखो। कुछ दूध वगैरह पी लेना।'

उसने जरा नू नकर की, परन्तु फिर कहने से रख लिये। पोर्टर को उन पैसों ने बहुत ही प्रभावित किया। जो काम मनुष्य से असम्भव हो जाता है पैसो में उसे सम्भव कर दिखलाने की ताकत है। युग का तकाजा, मानवता की माँग करना नहीं है, पैसे की चाह करना है।

'वह अपने ही आप बोला—'पान भूल आया बाबूजी! अभी लाये देता हूं।'

'देखो भाई, पान के लिए अलग से पैसे ले जाओ!'

'हैं न मेरे पास बाबूजी!'

'नही अब उन पैसों को हमारे काम में मत लाओ!'

वह पान लेने गया और हम कुछ छोटी-छोटी बातो के साथ भोजन करने लगे। जब तक हम लोग भोजन करते रहे वह अंदर नहीं आया बाद मे आया और पान देकर पूछने लगा—'आप कहाँ जाएंगे बाबूजी। कुछ दिनों से लूट मार होने लगी है। इस जिले की पुलिस का इन्तजाम ठीक नहीं है। सबेरे दिन में कोई डर भी डर नहीं रहता और तांगा भी खातरीका कर दूंगा। आपतो बड़े अच्छे आदमी है।'…फिर अपने

किसी काम की याद आजाने से वह जाने लगा और जाते-जाते बोला—'बाबूजी ? कोई जरूरत पडे तो मुझे बुला लेना, मैं जाता हूँ। दरवाजों को अन्दर से बंद कर लेना। कोई डर नहीं है। निर्भय होकर सोइएगा। थोडी देर तक हम लोग इस जमाने के पैसों की परिभाषा बनाते रहे।

'चाहे एक दिन की जिन्दगी हो या सारे जीवन की, बिना पैसे रहना जिन्दगी को बेकार बनाना है। जब मैं घर जाता हूँ तब रुपये की रेजगी उस देहात मे आठ रोज तक भी नहीं चुकती। वहाँ के अनेक कार्य प्रायः बिना पैसे ही निकल जाते हैं। किन्तु शहर में तो बिना पैसे साँस लेना भी मुश्किल है। शहराती जिन्दगी उन्हीं की है जिनके पास शहर के अनुकूल पैसा है। निर्धनो का शहराती जीवन तो पाप है, शाप है और संताप है, ममता ! एक हस्तरेखा-विशेषज्ञ ने एक रोज मुझे कुछ बातें बतलाईं। वह कहता था कि— छब्बीस वर्ष के बाद आपका भाग्योदय होगा। पच्चासी वर्ष की आयु होगी। और भी बहुतसी बातें बतलाईं। यद्यपि मेरा इन बातो में गहरा विश्वास नहीं है, फिर भी कुछ अतीत कालीन बातों ने यकीन कराया। मुझे अपनी लम्बी आयु सुनकर खुशी नहीं हुई। यद्यपि इस बात से सभी खुशी होते हैं, किन्तु उस अवस्था में शरीर कितना जर्जर, कितना शिथिल और कितना मोहताज हो जाता है, इसकी कल्पना तब नहीं होती। जब किसी लम्बी उम्र के मनुष्य को रोग ग्रसित और पराधीन देखने का अवसर मिलता है तब रोंगटे खडे हो जाते हैं।

पहली बात थी भाग्योदय की, सो तो शायद पूरी हो गई। भगवान अचानक ही यदि किसी व्यक्ति को किसी दैवी स्वभाव के व्यक्ति से परिचित कराडे और भाग्य से यदि उसकी छिपी हुई आत्मा का प्यार भी नसीब हो जाय और वह रूपवती भी इतनी हो कि जिसकी सुन्दरता पर देवांगनाएँ भी लज्जित होती हो तो फिर उसे

भाग्योदय ही मानना चाहिए।

ममता मुस्कुराई, नीची निगाह की और बोली—'तो आपका भाग्योदय हो गया। क्या मेरा स्वभाव देवियों का सा है, नारियों का सा नही ?'

'इसका पता तो मुझे लगता है, तुम्हे नही लग सकता।'

'क्या मैं आपको अपनी आत्मा का छिपा हुआ प्यार भी करती हूँ ?'

'हाँ ममता, मेरा मत्त तुम्हारे मन की दाद दे रहा है। बैर और प्रेम दोनों ही ऐसे धन है जिन्हे मनुष्य छिपा नही सकता।'

'क्या मेरा रूप देवांगनाओ का सा है ?'

'यह तो बहुत ही निर्विवाद सिद्ध है। एक दो नही, हजारहा लाखों व्यक्ति एक स्वर से कह सकते हैं।'

'तब यह बतलाओ कि मेरे भाग्य इतने गये-बीते क्यों है ?'

'ममता पहले यह बतला दो कि यदि मैं इसका उत्तर दूं तो बुरा तो नहीं मान जाओगी ?'

'पूछे हुए प्रश्न के उत्तर माँगने मे बुरा मानने की कौनसी बात है ?'

'मुझे तो ऐसा लगता है कि वह व्यक्ति, व्यक्ति नही, जिससे तुम्हारा पाणी-ग्रहण हुआ है। मैंने कही पढा है:—

स्त्री मुद्रा कुसुमायुधस्य जननी सर्वार्थ सम्पत्करी।
ये मूढाः प्रविहाय यान्ति कुधियो मिथ्या फलान्वेषिण·।
ते ते नैवनिहत्य निर्दयतरं नग्नीकृता मुण्डिता·।
केचित्पंचशिखी कृताश्य जटिलाः कापालिकाश्चापरे।'

मेरे श्लोक कहते ही ममता की आंखो मे आंसू आ गए। मेरे यह कहते ही कि 'यह क्या है ममता' वे आंसू कपोलो पर राह बनाकर

नीचे ढुलकने लगे। मैंने कहा—'ममता ! यह जो कुछ हो रहा है वह तो नहीं होना चाहिए।' मैं ममता के पास गया और उसे कुर्सी से हाथ पकड़ कर अपने पास ले आया। ज्यो-ज्यों मैं मनाने लगा ममता का हृदय जादे उफनने लगा। मैंने बच्चे की नांई ममता को अपनी गोद मे बैठा लिया और उसके आंसुओ की बंधी हुई धार को पोछने लगा। दूसरा हाथ था उसकी गर्दन पर। जब ममता के आंसू न रुक सके तो मुझसे भी न रहा गया। मेरी आंखो ने भी ममता के साथ ही साथ अपनी आँखो का खारा पानी छलका दिया। हमे पता नही, हम दोनों की यह अवस्था कितनी देर तक रही। कुमार आराम कुर्सी पर ही लेटा-लेटा सो गया। मैंने ममता को वात्सल्य भावों से अपनेहाथों से सहलाया और सहजही उसके खारे आंसूसे धुलेहुए कपोलो को छू लिया। ममता शिथिल होकर मेरी गोद में पडी हुई थी। उसकी आंख बंद थी मैंने उसकी लंबी-लंबी सांसो को भुलाने की चेष्टा करते हुए कहा—'ममता ! मैं तुम्हारी स्थिति को भली भाँति समझता हूँ। तुम जिन विशेष परिस्थितियो मे होकर गुजर रही हो, मेरे जीवन मे भी ऐसी ही जटिल परिस्थितियां हैं। फिर भी मैं तुम्हे विश्वास दिलाता हूं कि जीवन की किसी परिस्थिति मे गुजरता हुआ मैं तुम्हारा रहूँगा। यदि मैं फकीर ही रहूँ तो तुम्हे मेरी झोली से दो मुट्ठी खाने का अधिकार है। यदि भाग्य से मैं सम्पन्न बन सका तो तुम्हारा वही अधिकार रहेगा जो किसी निकटतम आत्मा का होता है।

तुम्हे अपने जीवन निर्वाह के लिये कातर होने की आवश्यकता नही। मैं धर्म के नाते, ईमान के नाते और मनुष्यता के नाते तुम्हारी हर तरह मदद करूंगा। मेरे परिवार मे कोई भी नहीं है। अब तुम्हारा परिवार ही मेरा परिवार होगा। बोलो ! और क्या चाहती हो ?'

ममता के रुदन का मेरे पास कोई स्पष्ट कारण न था फिर

भी मैं अपने ही आप उसे अपनी आत्मा प्रकट कर रहा था।

ममता कुछ शान्त होकर बोली—'अभी तो माता-पिता हैं, इसलिये जीवन की कोई चिन्ता नहीं। वे बेचारे जैसे भी होगा निर्वाह करेंगे। परन्तु वे—पक्के प्राणी हैं कितने दिन के! ईश्वर सुखी मनुष्य को जल्दी उठा लेता है किन्तु दुखिया के लिये उसके यहाँ भी कोई जगह नहीं रहती, जाने कितनी उम्र देता है। वह रोज मृत्यु की याचना करता है और बदले में उसकी आयु—वृद्धि होती है।

'मुझे इस संसार से अब कुछ नहीं चाहिये, जो मेरे भाग्य में लिखा था वह हो गया। अब तो शेष जीवन की ही चिन्ता है कि प्रभू एक वस्त्र और दो रोटी देता रहे। जीवन लांछन--हीन और पवित्रता से प्रभू के सहारे व्यतीत हो जाए।'

'ममता! पुरुष जीवन के उत्थान का श्रेय सदैव स्त्रियों को ही मिलता है। अभी तक मैंने दुनियाँ से अपनी शक्ति का, अपनी योग्यता का, अपने अधिकारों का, अपने व्यक्तित्व का, मूल्य नहीं माँगा। किंतु अब मैं अवश्य चाहूँगा। अवश्य चाहूँगा और इस दुनियाँ को आज नहीं तो कल अवश्य ही चुकाना पड़ेगा। और वह श्रेय तुम्हें ही मिलेगा। मेरे हृदय -मंडल में ध्रुव की भाँति तुम्हारा अटल स्थान रहेगा। मुझे अपने आप पर यकीन है। तुम्हारे ममता पूर्ण स्नेह के सहयोग से मैं अपने निश्चय पर सु-दृढ़ ही रहूँगा। कैसी भी किसी भी अवस्था में अपने संकल्प को अविच्छिन्न न होने दूँगा। तुम्हें अपने जीवन की जरा भी चिन्ता न करनी चाहिये। मैं सांसारिक व्यवहार कुशल व्यक्तियों की भाषा नहीं बोल रहा हूँ। जो भी कह रहा हूँ अपने आपको और अपने कर्तव्य को पहचान कर कह रहा हूँ।'

ममता पूर्ण सजग-सी हो गई। मेरे कहने से उसने अपना

मुँह धोया और मुझे भी पानी दिया। मुझे लगता था मानो मेरी आत्मा का पौरुष सजग हो रहा है। कह रहा था—अभी तक मेरा कोई नहीं था। अब मैं एक परिवार का मुख्य व्यक्ति हूँ। मेरे माता पिता है। मेरे स्नेही है। अब मुझे अपने जीवन के प्रति उदासीन और लापरवाह नहीं रहना चाहिये। मुझे दृढता से अपने पैरों पर खडा हो जाना चाहिये। और लगता था मानो मेरे नष्ट हुए परिवार के प्राणी मुझे मिल गये हों।

ममता फिर उसी कुर्सी पर बैठ गई थी और नीचा सिर करके एक हाथ से सिर सहला रही थी। जब मेरी विचार-धारा भंग हुई तब मैंने सोचा—शायद ममता कुछ सोच रही है। लेकिन अधिक समय तक उसी तरह बैठे देखकर मैंने पूछा—'तुम्हारे सिर में दर्द है क्या ममता !'

धीमे स्वर में ममता ने कहा—'हाँ दर्द हो गया है।'

'यहाँ आ जाओ !'

ममता न आई। न उत्तर दिया। जाने क्या सोच रही थी। फिर मुझे उठना ही पडा। ममता का हाथ पकड कर अपने पास ले आया और अपनी गोद में उसका मस्तक रखकर धीरे-धीरे दबाने लगा।

'आप तो आराम कीजिए। मैं ही थोडी देर मसल लूँगी तो ठीक हो जायगा।'

'आराम ही है ममता मैंने कुछ काम तो किया ही नहीं है जो थक गया हूँ। अपना सिर अपने हाथ से ठीक नहीं मसला जाता।'

'नहीं नहीं, मैं तो व्यर्थ ही आपको तकलीफ नहीं दूँगी !'

'इसमें तकलीफ की क्या बात है। उस रोज मेरे सिर में दर्द था तब तुमने मसला था। मैंने तो तुम्हारी तकलीफ का ध्यान ही नहीं

रखा था।'

'मेरा फर्ज है आपकी सेवा करना।'

मैंने हँस कर कहा—'तब मेरा भी फर्ज है तुम्हारी सेवा करना। यह तो पारस्परिक धर्म है। ममता! जब हम दोनो ही हो और किसी एक को तकलीफ हो जाय तो दूसरे का फर्ज है उसे मिटाना।'

मै धीरे-धीरे ममता का सिर मसलता रहा। उसकी बंद पलकें कभी-कभी खुल जातीं और वह मेरी पलकों से टकरा जातीं। मन मे एक अव्यक्त अनुराग उमड़ आता। शरीर मे एक अद्भुत स्फूर्ति का संचार हो जाता। कभी-कभी दर्द से चेहरे पर एक अजीबसी सिकुड़न बन जाती जो मेरे हृदय मे दर्द पैदा कर देती और मैं भी एक दुख का अनुभव सा करने लगता। मेरा मन भी उतर सा गया था, और मैं ममता के सिर दर्द से ही इतना दुखी हो गया था, मानो मुझे समस्त जग की कठोर पीडाओ ने एक ही साथ आ घेरा हो। मेरा अनुमान है शायद उसने मेरी सूरत देख कर ही बाते करना आरम्भ किया।

अब आप इलाहाबाद मे ही रहा करेंगे ?'

'मै जिस नौकरी के लिए जा रहा हूँ यदि वह लग गई तो इलाहाबाद ही मे रहना होगा। तुम आओगी न इलाहाबाद ?

'क्या कहूँ आ सकूंगी या नही। हम स्त्रियों की जिन्दगी तो काँटों के कोट से घिरी हुई है। हमे अपनी अनेको शुभेच्छाओ की समाज के हवन कुण्ड मे आहुती कर देनी पड़ती है। दुनियाँ की इस मन चली हाट मे रूप और तरुणाई के जीवन-भार को लेकर गुजरना बड़ा ही मुश्किल है। जाने क्यो दुनियाँ पाप का अनुमान लगाने मे इतनी प्रवीण और पटु हो चुकी है कि उसके सम्मुख पुण्य के सब सबूत बेकार हो जाते है, और उस मनुष्य को अपने जीवन की बड़ी सी कुर्बानी

के साथ अपना प्रमाण देना पड़ता है।

हम लोग चार दिनों से जिस अवस्था मे रह रहे हैं, उसे हम ही जानते हैं, किन्तु यदि परिचित समाज हमारी इस अवस्था को देख सुन पाए तो वह बिना विचारे काजल पोतने मे न चूके।'

'ममता ! काजल सस्ता होता है। घर-घर की जलने वाली चिमनी अपना यही प्रसाद छोड जाती है। हरएक व्यक्ति उसे आसानी से पा जाता है। परन्तु यह कार्य वही व्यक्ति करेगा जो खुद कालिख की कोठरी मे रहने का अभ्यासी होगा। अच्छे व्यक्ति तो जब सोचते है,तब बुरी बात को भी अच्छी ही करके सोचते हैं। हरएक अच्छी चीज मे एक बुराई और हरएक बुराई मे एक अच्छाई भी होती है। मनुष्यता और मर्यादा की शर्त पर जीवित रहने वाले प्राणी के सम्मुख भौतिक जगत एक बार अपना स्वभाव दिखलाता है और फिर उसको देखने लगता है। जो जगत जिस वाणी से बुरा कहता है वही जगत उसी वाणी से अच्छा कहने लगता है। मनुष्य को इस दुरंगी दुनिया की पर्वाह न करके अपनी आत्मा के सत्य संकल्प और उन्नत ध्येयों की पूर्ति करते रहना चाहिए। हॉ, यदि हमारा ही ध्येय हीन है तो दुनियां के सहयोग के बाद भी हम सफल नहीं हो सकते, मेरा और आपका जीवन-ध्येय पवित्र और श्रेष्ठ है। हमें यह संसार विचलित नहीं कर सकता। हमें उसे पूरा करना ही चाहिए। मैं तुमको अपनी आत्मा में जब स्थान दे चुका हूँ, तब वह कौनसी ताकत है जो आपका स्थान छीन ले?'

ममता की आँखें फिर कटोरे की तरह भरकर कानो की ओर उमड़ चलीं। मन की कोमलता आँखो का पानी बन कर वह चली थी।

'ममता ! जीवन-संग्राम में लड़ने वाले व्यक्ति को इतना कातर तो नहीं होना चाहिये। माना कि आंसू ही नारी-जीवन के श्रृंगार हैं।

किंतु ये जितने भीतर रहते है उतने ही अधिक कीमती होते है। इस प्रकार अनेको बाते कह कर मैंने ममता को समझाया।

मैं कुछ कहता ही रहा और ममता निद्रावस्था मे अचेत हो गई। उसकी स्वांस की गति तीव्र हो गई। और मैं अपनी बात को बद करके उस सुख मे उतर गया जो प्रेमी की गोद मे सिर रखने पर प्रेमी को होता है। एक दिन वह था जब मेरा सिर ममता की गोद मे था। आज ममता का सिर मेरी गोद मे है। मैं संसार की इस परिवर्तनशील गीत की लम्बी-सी व्याख्या कर रहा था। घडी साढ़े ग्यारह बजा चुकी थी। खिले हुए सरोज पर ओस-कण की तरह जो बिन्दु झलक रहे थे, मैं उन्हे आहिस्ता-आहिस्ता अपने रूमाल से पोंछ रहा था। कहीं ममता जाग न जाए। सिर दर्द है। आज इस पगली ने बहुत आंसू बहाए हैं। कहीं अधूरी नींद मे जाग जाएगी तो फिर दर्द हो जायगा, यही भय था।

जब मेरे पैर अकड गए तब सोचा ममता का मस्तक तकिए पर रख दूं और मैं इन्हे ठीक कर लूं। जरा बाहर निकलकर चमकने वाले सितारो को देखूं, समीर की संगीत लहरी को सुनूं और रजनी की नीरवता मे जो शान्ति संचार है, उससे अपने हृदय को शीतल करूं।

मैंने तकिया उठाया और फूल की तरह कोमल हाथो से ममता का शीश उठाकर उसपर रखा। ममता ने करवट बदली और फिर वह अपनी गहरी निद्रा में तल्लीन हो गई। मैं उठा और बाहर जाते समय दरवाजे की तनिक भी आवाज न होने दी, चोर की तरह। तारो को देखा, मानो वे कल के होने वाले वियोग की कल्पना करके आभा हीन हो गये हो। अलसाए हुए से। समीर के झोके मद-मंद थे, मानो वह मसोसे हुए दिल से निश्वासें छोड रहा हो। कहीं दूरी पर कोई दीन दीपक अपने टिमटिमाते हुए प्रकाश से मन की स्थिर गति का संकेत

कर रहा था। स्टेशन के प्रकाश-स्तम्भ प्रकाश-हीन हो चुके थे। किनारे के पौधों की क्यारियां शान्त होकर ममता की तरह सो रही थी।

मुझे याद आई यदि मेरे साथ ममता होती और मैं कदाचित जो एक पत्ती तोड़ लेता तो अभी उसका शास्त्रीय ज्ञान बेचैन हो जाता। भाग्य से उस क्यारी के पास भी बेंच थी। किन्तु वह धर्मार्थ की धर्मशाला की तरह जीर्ण-शीर्ण न थी। मैं एक ओर के फ्लेटफार्म का अन्त करके लौटा। वेटिंगरूम की तरफ चौकीदार की तरह एक दृष्टि डाली। स्टेशन आफिस की टिकटिक करती हुई घड़ी से अपनी घड़ी को देखा। सारी स्टेशन शान्त और नीरवता से ढकी हुई थी। यदि चैतन्य थी तो केवल एक बेचारी घड़ी, मैं और आगे बढ़कर उस तरफ के दृश्य देखता रहा। शहर चाँदनी मे ढका हुआ था। दूर क्षितिज की ओर भागता हुआ सा अन्धकार दिखाई देता था, मानो चन्द्र के प्रकाश से प्राण लेकर भाग रहा हो।

मैं थोड़ी देर इसी तरह सूनी दुनियाँ का सन्तरी बनकर गश्त लगाता रहा। ममता की स्मृतिया मेरे मस्तिष्क मे बदली बनकर छाई हुई थी। मैं उन्ही स्मृतियो के मधुर जाल मे उलझा हुआ थककर बेंच पर बैठ गया। भगवान सुधांशु अपने गगन--पथ की यात्रा मे थे। और मैं अतीत की स्मृतियों से मुक्त होकर, वर्तमान की छोटी-सी गाथा को दोहराता हुआ भविष्य की विरहमयी काली कल्पनाओं के साम्राज्य मे जा पहुंचा।

सारी वसुधा चन्द्र के आलोक से आलोकित थी और मैं पिछले चन्द्र से आज के घटे हुए चन्द्र का अनुभव कर रहा था और आज से कल के आने वाले का। जिस वियोग की सम्भावना मात्र ही वेदना मयी होती है, उसका निश्चय तो और भी वेदना मे चार चाँद लगा देता है। मैं अकेला ही अपनी विचार धारा से हृदय धो रहा था और

सब जगत अपने नित्य नियम के विश्राम का उपयोगी बना हुआ था। सम्भव है, इतने बड़े विश्व में कोई मुझसा दुखिया भी हो। चन्द्र मध्यान्ह से ढल चले और मैं अपने वियोग से आगे बढ़ कर भविष्य का नकशा तैयार कर चुका जिसके अनुसार कि मुझे अपने जीवन का प्रासाद निर्माण करना था।

मैं बेंच से उठा और अन्दर आया। भीतर से दरवाजा बन्द किया। बेचारा कुमार कुर्सी पर अस्त-व्यस्त होकर पड़ा था। यही अच्छा था कि वह गिरा नहीं। मैंने ममता का बिस्तर खोला। उसे भली भाँति बिछाया। कुमार को उठाकर उसपर सुलाया और फिर ममता के पास दबे पैरों से जाकर देखा। उसके चेहरे पर और सिन्दूर चर्चित माँग पर मोती बिखरे हुए थे, और वह गहरी निद्रा में थी। मैं आकर चुपके से कुमार के पास लेट गया। मेरा थका हुआ मस्तिष्क अधिक साथ न दे सका, मुझे थोड़ी ही देर में नींद आ गई।



## मंगल प्रभात

एक ठंडा कोमल हाथ मेरे बिखरे हुए बालों को सहलाता और कपोलों पर फिरता हुआ मालूम पड़ा। मेरी नींद खुल गई किन्तु आँखें न खुली थीं। न मालूम कब से ऐसा हो रहा था। मैंने सोचा 'यदि आँखें खुल जाएँगी तो यह सुख जो अभी मिल रहा है, तुरन्त नष्ट हो जायगा। हाथ अपना कार्य करता ही रहा। मन की इच्छा होते हुए भी आँखें हाथ के स्वरूप को देखने के लिये अधीर हो उठीं। आखिर खुल ही गईं।

ममता का चैतन्य आनन अधरों में मंद-मंद मुस्कान लिये हुए था। मुझे लगा मानो आँख खुलते ही भाग्य-लक्ष्मी प्रसन्नानना होकर कल्याणमस्तु कह रही है। ममता ने अपना हाथ खींच लिया, यही तो मैं सोच ही रहा था।

'ममता जो हाथ खींच लिया गया वह बहुत अच्छा कार्य कर रहा था।'

'कुछ तो नहीं।'

'वह जो कुछ कर रहा था मुझे सुख मिल रहा था।'

ममता निरुत्तर हो गई और लज्जित-सी हो गई।

'क्या दिन निकल आया?'

'हाँ, अब थोड़ी ही देर है।'

'तुम कैसे जाग गईं?'

'मेरी नींद इस समय अपने ही आप खुल जाती है।'

'आदत हो गई है क्या?'

'हाँ।'

'कब से ?'

'वर्षों से।'

'भगवान करे हमारी भी ऐसी आदत पड़ जाय।'

'आपकी जब शादी हो जायगी और श्रीमती जी आ जाएँगी तब अपने ही आप आदत पड़ जायगी, चिन्ता न कीजिये।'

'श्रीमती आएंगी या मेरी आदत आएगी।'

हँसकर ममता ने कहा—'दोनों साथ ही साथ।'

'मुझे दोनों ही नहीं चाहिए, मुझे तो सुख की नींद सोना है।'

'दिल की कहो ?'

'कह तो दिल की ही रहा हूँ। झूठ बोले भी कौन ? यदि भाग्य में शादी ही बदी होती तो अभी तक हो ही न जाती। लोग तो प्रयत्न कर करके ही थक गये मगर ।'

अनुशासन के शब्दों में ममता ने कहा—'अभी तक नहीं की अच्छा किया, किन्तु अब करना ही होगा।'

'क्यों ?

'क्योंकि आप ममता को वरदान दे चुके हैं कि. ।'

'इस बात से आपका तात्पर्य क्या है मैं नहीं समझा।'

'मुझे समझाना भी नहीं है, समय अपने ही आप सब कुछ समझा देगा।'

'तुमने भी प्रातःकाल की मंगल वेला में कहाँ की चर्चा छेड़ दी।'

'मंगल वेला में मंगलीक बातें ही करनी चाहिये।'

मैं बिस्तर से उठकर बैठ गया। मेरी आँखें अधूरी नींद के कारण अलसाई हुई थीं। ममता ने पानी का गिलास भरकर मेरे पास रखा और कहा—'आपने मुझे जगा क्यों नहीं दिया। नीचे आपको

अच्छी तरह नींद भी न आई होगी ?'

'समय की ही कमी रही पर नींद तो गहरी आई।'

'आप जाड़े रात तक जागते रहे क्या ?'

'हाँ।'

'क्यो ?'

'यो ही।'

'किस समय सोए आप ?'

'लगभग तीन चार बजे।'

अफसोस करते हुए ममता ने कहा—'मुझे क्या मालूम था नहीं तो अभी नहीं जगाती।'

'अफसोस करने की बात नहीं है ममता! इस जीवन के तो क्षण-क्षण कीमती है। इतनी अच्छी घड़ियाँ जीवन में सदैव नहीं आती। निद्रा तो बेचारी चिरसंगनी है और तुम तो मुझसे आज ही... .. ...।'

ममता ने कोई उत्तर नहीं दिया।

'अच्छा यह बतलाओ ताँगे किस वक्त मिलते है और वे गांव पर किस समय पहुँचते है ?'

'सवेरे ही मिलेगे और नौ-दस बजे तक गांव मे पहुँच जाएँगे।'

मेरा खयाल है यदि अच्छे ताँगे मे बैठा दिया जाय तो दिन मे तो कोई डर नहीं है, फिर मैं न चलूँ।'

यह बात मैंने अपनी हार्दिक इच्छा के विरुद्ध कही थी और इसलिये कि ममता क्या कहती है, यही जानने के लिए।'

ममता ने हँस कर कहा—'अच्छे आदमी भात छोड़ देते है साथ नहीं छोड़ते।'

मैं यह सुनकर हँस दिया तब ममता ने कहा—'मैं समझती हूँ कि आप ऐसा क्यों कह रहे हैं ?'

'अच्छा बतलाओ मैं क्यों कह रहा हूँ ?'

'यह जानने के लिये कि मैं क्या कहती हूँ।'

मैंने स्वीकार करते हुए कहा—'ठीक कहती हो ममता, यही बात है।'

जब कोई हमारे मन के भावों को अपने शब्दो मे व्यक्त करता है तब एक अनुपम खुशी होती है और कुछ व्यक्तियों के तो हाथ तक भी आगे बढ जाते हैं—मिलाने को।

'मेरा अनुमान है, अब हम लोगों को हाथ मुँह धोकर हो सके तो स्नान भी कर लेना चाहिए और थोडा नाश्ता करके फिर ताँगा करना चाहिए।'

ममता ने मेरी बात का समर्थन करते हुए कहा—'यही ठीक है।'

हम लोग भरे हुए टप के जल से स्नान आदि करके निश्चिंत हुए। कपडे बदले। तब ममता ने कुमार को जगाया। उसे भी स्नान कराया। पोर्टर भी आ गया। अब तक सूर्य की ठण्डी धूप फैल गई थी।

'क्यों भाई ! यहाँ की कोई विशेषता है क्या जो घूम-फिर कर देखा जाय ?'

'ऐसा कुछ नहीं है बाबूजी। यहाँ कोई देखने लायक जगह नहीं है।'

'तब एक काम करो। कुछ खाने पीने को ले आओ और आते समय किसी अच्छे ताँगे वाले से भी कहते आना, जो थोड़ी देर बाद हमें ले जाए। हम समझते हैं, इन लोगों को छोड़कर हमें अभी लौट आना पडेगा। तुम राय दो तो हम अपना सामान यहीं रख जाएँ।'

'आप कहाँ जाएँगे ?'

'इलाहाबाद ।'

'गाडी तो आपको वही मिलेगी जो आपने छोडी है। आप
दल तो आएंगे ही नहीं ताँगे से लौटेंगे। आप तो सामान ले जाइए,
आपके साथ ही आ जाएगा। यहाँ कहाँ रखने-रखाने की झंझट करेंगे।'

'क्यों ममता ?'

'हाँ, ले चलिए न।'

मैंने रुपया दिया और पोर्टर नाश्ता लेने चला गया।

'ममता ! जीवन मे यात्राएँ तो बहुत हुई किन्तु इस यात्रा
में जितना सुखी रहा और जितना बडा सौदा कर सका, ऐसी
उल्लेखनीय कोई यात्रा न तो हुई न होगी।'

'ममता ने खुद रोकर आपको रुलाया यही न सुख मिला
आपको ? क्या इसीका नाम सुख है ?'

'रोने में जितना बडा सुख है वह हँसने मे नही। जब मनुष्य
दुःख का अनुभव करता है तब वह उस दुःख से मुक्त होने को एक
ही उपाय करता है और वह उपाय है रोना, जिसके बाद वह अपना
दुःख-बोझ हलका अनुभव करता है। हँसने वाले तो बहुत मिलते हैं,
ममता, किंतु स्वयं रोकर रुलाने वाले बहुत ही कम होते है। हँसने
हँसाने वाले भूले और भुलाए भी जा सकते है, किंतु रोने और रुलाने
वाले तो रो-रोकर याद आते है और याद आ-आकर रुलाते हैं।'

'ये सब प्रेम के स्वरूप की भुजाएँ है। जहाँ प्रेम अपने
स्वरूप के सत्य को लेकर उपस्थित रहता है, वहाँ हँसना, बोलना, सुख,
दुःख, शहर, वन सब जगह और सब अवस्थाएँ प्रिय होती है। प्रेम की
निस्सारता मे घर स्मशान और अपने व्यक्ति ही प्रेत की तरह प्रतीत
होते है। मुझे उस अवस्था का भलीभाँति अनुभव है।'

'ममता ! प्रेम का स्वर, प्रेम की ध्वनि और प्रेम के निनाद यह खूबी हो कि वह दोनो आत्माओ मे समीपवर्ती शृंग शिखाओ बीच ध्वनित हुए शब्दो की भाँति गुंजित हो उठे। प्रतिध्वनियाँ तो दूरी अनुसार मंद हो जाती हैं और कुछ समय बाद गगन के विश अन्तराल में क्षीण होकर सदैव के लिए विलीन हो जाती हैं। कि प्रेमी हृदयों की प्रतिध्वनियाँ तो समय और दूरी के अनुपात में शब् की ध्वनि की तरह घटने की अपेक्षा अधिकाधिक बढती ही जाती है विलीन न होकर, सुदृढ हो जाती हैं और एक दिन, व ध्वनि; वही निनाद, प्रेमी के जीवन का जीवन-संगीत बनकर गुंजायमा हो उठता है।

हमारी बातें चल रही थीं कि पोर्टर नाश्ता लेकर आ गया हमने नाश्ता किया और उसे भी कुछ दिया। 'वह आ गया ताँग पोर्टर ने हमारा ध्यान उधर आकर्षित करते हुए बताया। कुमार चवल से खडा हो गया। ममता अवगुंठन मे ढक गई और मैं अपना सामा बटोरकर बाधने लगा। ममता ने गीले कपडो की तह करके उन्हे टावे से बाध लिये।

बूढा तागे वाला ताँगा छोड़कर पास आया। राम-राम की पोर्टर एक-एक सामान उसे देता गया और वह उठा--उठा कर ताँगे में अपने ढंग से जमाता गया। मैं स्टेशन मास्टर से मिलकर उन्हे धन्यवाद देना चाहता था। किन्तु पोर्टर ने कहा—'जब आप लौटकर आएं त मिल लीजिये, अभी वे ड्यूटी से जाकर घर सो रहे होगे।' मैंने उसे रुपया दिया किन्तु उसने नहीं लिया और लौटकर आने पर टाल दिया। सामान सब रखा ही चुका था। कुमार को ताँगे वाले ने अपने पास बैठा लिया और हम लोगो को पीछे बैठने के लिए सीट खाली छोड दी। ममता बैठ गई। पोर्टर ने ताँगे वाले से कहा—'जल्दी ले जाना

और पैसों में झगड़ा नहीं करना, मालिक अपने ही आप सोच-समझकर दे देंगे।' मुझसे कहा—'बाबूजी! गरीब आदमी है। घोड़ा अच्छा है। जल्दी पहुंचा देगा। आप ही सोच-समझकर दे देना, आल बच्चेदार आदमी है। मैंने कहा— अच्छा।' तांगेवाला हाथ जोड़े खड़ा था। मैं भी तांगे में जा बैठा। तांगा चल पड़ा।



# ममता का गांव

शहर की सीमा समाप्त करके ताँगा जंगल की लाल पगडण्डी नुमा सड़क पर अपनी खड़खड़ाहट करता हुआ आगे बढ़ रहा था।

मैंने ममता से कहा—'ताँगा ठीक घर की तरफ चल रहा है न ?'

ममता ने गर्दन हिलाकर कहा—हाँ। मैं समझा, ममता मर्यादित रहना चाहती है।

मैं उससे अधिक बातें न करके राह के आसपास के सुहावने दृश्यों को देखने लगा।

मैं जब स्टेशन पर उतर कर अपने गांव को ताँगे में बैठ कर जाता हूँ तब वे मेरे पूर्व-परिचित वृक्ष, ऊँची-नीची श्रेणियाँ, घनी-घनी झुरमुटें और हरे-हरे खेत सभी मेरे स्वागत को एक-के-बाद-एक दौड़े चले आते हैं। वैसी ही वन-शोभा मुझे ममता के गांव की राह की लग रही थी। हरे-हरे वृक्षों के बीच बैठकर कोई पलास फूला न समा रहा था। कहीं ऊँचा सेमर का वृक्ष सब वृक्षों का सरदार बना हुआ अपने लाल फूलों का रंगीन साफा बाँधे अपनी सुन्दरता पर आप ही मुस्कराता-सा खड़ा था। कुछ दूरी पर वैसी ही करील की झुरमुट राधाकृष्ण के विहार की स्मृति में सन्यासिनी-सी हो गई थी। बीच-बीच में समतल के चौक थे जिन्हें मानो प्रकृति ने अपने खिलवाड़ के लिये वहाँ वृक्षों को निवास-स्थान न दिया हो। यह प्राकृतिक सुरम्य छटा प्रातःकालीन वायु की तरह मेरे मन को प्रफुल्लित करती जा रही थी।

'ममता ! तुम्हारे गांव का रास्ता भी वैसा ही है जैसा स्टेशन से मेरे गांव का रास्ता।'

ममता ने धीरे से कहा—'मालूम होता है, आप तब से यही निरीक्षण कर रहे हैं।'

'क्या करता, तुम तो ताँगे मे बैठते ही मर्यादित हो गई हो।'

'यह सब आप ही की कृपा है। आपने ही मेरे दिल को ऐसा बेकार कर दिया कि और कहीं कुछ अच्छा ही नही लगता। सोचा था मन की इस चोरी को कभी प्रकट न करूँगी फिर भी जाने कैसे मुँह से निकल ही गई।'

'जो कुछ होता है अच्छा ही होता है ममता। जो तुम नहीं चाहती थीं वह तुम्हारे मुँह से निकल गया जो मैं न चाहता था वह मेरे मुँह से निकल गया। इसीलिये मनुष्य प्रेम को असीम कहते हैं।'

कुमार का ध्यान घोडे पर। घोडे का सडक पर। कोचवान का घोडे को चलाने मे और हम दोनो का अपने अपने रागो मे था।'

'अब यहाँ से गाव कितनी दूर है, ममता ?'

ममता ने पीछे मुडकर बतलाया—'ये जो घने वृक्ष दीखते है, उसी गांव के है।'

इसके मानी यह है कि गाव आ गया।'

'जी हाँ।'

'वहाँ कौन-कौन होगे और उनके साथ मुझे किस तरह पेश आना चाहिये कि वे मुझे असभ्य न समझें।'

'हमारे गाव के आदमी सीधे-साधे मिजाज के हैं। उनके पास सभ्यता-असभ्यता का लेखा-जोखा नही है। मुस्कुरा कर कहा—'जरा देखना तो कैसे-कैसे भोले प्राणी मिलेगे। कैसी भोली-भोली बाते करेगे। बडा आनन्द आएगा। आप भी कहेगे कि मैं कहाँ आगया।'

'देहातो का स्वभाव, देहातो का व्यवहार, और देहातो का जीवन तो मेरी आँखो मे है। फिर भी तुम्हारे गांव की बाते तुम्ही से

मालूम कर लेनी चाहिये।'

'इसके मानी यह हैं कि आपको देहात बहुत प्यारी है!'

'इसमें तो शक ही क्या है? जिन देहातो ने हमें जन्म दिया है, यदि उनसे हमारी ममता न हो तो हम उनके अत्यन्त ऋणी होकर भी कुपुत्र हैं।'

'तब आप अपनी शादी भी देहात में ही कीजिएगा?'

'कह नहीं सकता, पर यदि कभी कुछ हुआ तो वैसा ही होगा जैसा तुम चाहोगी।'

'ममता ने मुस्कुरा कर कहा—'मैं स्वयं देहातिन हूं इसलिये मैं तो देहातिन को ही पसन्द करूंगी।'

'खैर। जब जैसी परिस्थिति होगी, देखा जायगा। अभी तो यह बात ऐसी लगती है—मानो—'सूत न कपास जुलाहो से लठालठी।'

हम दोनो ही इस बात पर हँस दिये। उन दोनों का ध्यान भी भंग हो गया और वे हमारी ओर देखने लगे। थोडी दूर तांगा चला कि वृक्षों की संधियों से लाल-लाल खपरैल के छोटे-छोटे घर झाँकने लगे। बॉई ओर को तालाब था जो पानी के अभाव में अपने हृदय को हजार हो जगह से चीरे हुए था। कुछ निम्न जाति के मनुष्यों की छोटी-छोटी घास फूस की टपरियायें आई। ये काली-काली काया को फटे-पुराने चिथडो से ढके हुए व्यक्ति, हम लोगों की ओर आश्चर्य की दृष्टि से देखने लगे मानो परिचय खोज निकालने क लिये उत्सुक हों।

थोडे और आगे बढे कि एक चूने से पुता हुआ छोटासा मका आया, जिसे मैं चौकी समझे हुए था। ममता ने उसका परिचय दिया पुराने जमाने में वह डाक घर था। दुर्भाग्य से मवेशियो का विश्रामगृ बन गया था। उसके आगे का नीम का वृक्ष दूर तक अपनी छाय

फैलाए हुए था। एक लम्बे से मकान के सामने जाकर ममता ने ताँगा रुकवा दिया।

धीरे से ममता ने कहा—'पिताजी यहीं होंगे।'

मैं ताँगे से नीचे उतर पड़ा। ताँगा रुकते ही एक, दो, तीन, चार, पाँच जाने कितने लड़के अन्दर से निकले। मैं सहज ही समझ गया—मकान नहीं है, स्कूल है। लड़कों ने आकर ताँगा घेर लिया और लगे कहने— अवनी जीजी आ गई। अवनी दीदी आ गई। और दौड़े स्कूल की ओर। ममता और कुमार अभी ताँगे में ही बैठे हुए थे।

जरा देर के बाद ही एक पतले से, ऊँचे से, सफेद कुर्ता एकलंगी धोती, देशी जूता और करीब साठ पैंसठ साल की अवस्था के व्यक्ति हाथ में लकड़ी लिये हुए सीढ़ियों से नीचे उतरे। मैं समझ गया कि ममता के पिताजी यही होंगे। वे धीरे-धीरे ताँगे के पास आए। मैंने जरा आगे बढ़ कर प्रणाम किया और उन्होंने प्रसन्न मुद्रा से मुझे आशीर्वाद दिया। ममता ताँगे से उतरकर उनके गले लग गई। वे बार-बार ममता के सिर पर हाथ फेर रहे थे। मैंने कुमार को उतार दिया। उन्होंने अपने सूखे-सूखे हाथों की उभरी हुई नसों वाली उंगलियों को कुमार के गालों पर फेरकर प्यार किया। फिर कहा—'भाई ताँगे वाले! जरा ताँगे को और बढ़ा ले उस नीम के झाड़ के पास।'

वे आगे हो गए। मैं कुमार को गोद में लेकर उनके पीछे और मेरे पीछे ममता हो ली। ममता के साथ लड़कों का झुण्ड था, जो ममता से अनेकों प्रश्न करते हुए चल रहे थे। उनके पीछे तांगेवाला था। इस लम्बे चौड़े समारोह को देखकर घर-घर से स्त्रियाँ और बच्चे निकल पड़े।

'अवनी है हो?'

'हाँ।'

'नाहीं समेत।'

वे अपने विश्वास की आजमाइश करने के लिए नजदीक आने लगी।

'देखो न! हम तो पहले ही कहत रही कि अवनी बिटिया है। है न?'

एक हार गई। एक जीत गई। इस प्रकार घर पहुँचने के पहले कितनी हो हार जीत हो गई। मैं सोच रहा था—'और तो सब ठीक है, किन्तु अवनी क्या बात है। नाम है, उपाधि है या लाड का नाम है। जिसे देखो अवनी ही कहता है। कुछ लडके पहले से ही घर दौड पडे। पण्डितजी के पैर जरा तेज उठने लगे। ऊँची सी दीवार से घिरे हुए परकोटे के द्वार पर श्वेत वस्त्रों मे एक वृद्धा अर्ध अवगुण्ठन किए हुए खडी थी।

पण्डितजी ने कहा—'पण्डिताइन! अवनी बिटिया आ गई!'

वे ज्योंही द्वार से ममता की ओर बढीं कि बीच ही मे मैंने उन्हे प्रणाम किया। वे ऊँचा हाथ उठाकर धीरे से मुझे कुछ कहती हुई ममता के पास पहुँची। ममता उनके गले से लग गई। और आसपास के घरों की स्त्रियाँ आ गई। कुछ पहले से ही साथ आ रही थीं। मै पण्डितजी के पीछे-पीछे घर मे चला गया। एक कुर्सी की ओर पण्डितजी मुझे संकेत करते हुए आप खडी हुई खटिया को आड़ी करके उस पर अपने हाथ की लकडी रखकर ताँगेवाले से यह कहने बाहर निकले कि—ताँगे से सामान ले आओ?'

कुमार को मैंने अपनी गोद मे बैठा लिया। थोडी देर के मिलन के बाद ममता भी एक बडे समूह के साथ घर मे आई। अब ममता आवरणमयी नहीं थी। उसकी चादर किसीने उतार ली थी और वह अवगुण्ठन से ढकी हुई भी नहीं थी। ममता एक नजर मेरी

ओर देखकर मकान के अन्दर चली गई। कुमार भी मेरी गोद से फिसलकर बच्चों और स्त्रियों के समुदाय में चला गया।

पण्डितजी ने एक लडके से पूछा—'सब सामान आ गया?'

लडके ने गर्दन हिला दी—'जी हाँ, आ गया।'

पण्डितजी ने उसे पास बुलाकर कहा—'तुम सब स्कूल जाओ। ऊधम नहीं होने देना। बराबर सब अपना-अपना काम करना। ग्यारह बजे छुट्टी करके स्कूल की चाभी हमको दे जाना।'

लड़का चला गया। मैं उठकर बाहर जाने लगा तो पण्डितजी ने मुझसे पूछा—'क्यों बेटा कहाँ जाते हो?'

'मैं अभी आया।'

बाहर निकलकर ताँगे वाले से पूछा—'क्यों भाई कितने पैसे?'

दीन मुँह से उसने कहा—'जो भी मालिक की मरजी होय।'

'ऐसा नहीं। जो तुम्हारा चार्ज होता हो वह बतला दो।'

'सरकार बारह आने होते हैं फिर जो मालिक दे दें।'

मैंने एक रुपया दिया। वह बहुत ही प्रसन्न होकर बोला—'मालिक आपको बनाये रखें।'

'तुम अब लौट जाओगे क्या?'

सरकार, घोडे को घास-दाना खिलाऊँगा। दो-तीन बजे जाऊँगा।'

'हमें लेते चलना; हम चलेंगे।'

'बहुत अच्छा मालिक!'

ज्योंही मैं बाहर से आकर कुर्सी पर बैठा कि अम्मा एक बडे से गिलास को दूध से ऊपर तक भर कर ले आईं। 'लो बेटा! पहले इसे पीलो यह अभी कुनकुना है, फिर ठण्डा हो जायगा।'

मैंने पूरे तीन पाव के भरे हुए गिलास को देखकर कहा—

'अम्मा ! इतना दूध तो मुझसे नही पिया जायगा, सबेरे ही हम लो कुछ खा-पीकर चले है।'

पण्डितजी भीतर से निकलते हुए बोले—'बेटा ! क्या तुम भी जवान आदमी होकर इतने से दूध से डरते हो। हम तो तुम्हारी उम्र मे थे तब दो तीन सेर दूध को भी कुछ नहीं समझते थे।'

मैं अब विरोध न कर सका। गिलास को धीरे-धीरे रिक्त करने लगा। अम्मा चली गईं।

पण्डितजी खटिया पर बैठ गये और बोले—'बेटा क्या नाम है तुम्हारा ?'

'मुझे अनंत कहते है।'

अनत नाम सुनते ही उनके मस्तिष्क की रेखाएँ गहरी हो गईं, मानो वे अपनी अतीत स्मृतियो को खोज रहे हो।'

सहसा दूसरा प्रश्न किया —'आपके पिताजी का क्या नाम है ?

मैंने सरलता से कहा—'उनका नाम जगदीशनाथ जी था।'

अनुपम प्रसन्नता और हृदय के उल्लास के साथ बोले—'ओ हो, हो, बेटा ! तुम जगदीशनाथ जी के पुत्र हो ! अनंत ! हमने तुम्हे बहुत छोटे मे देखा है। भाई खूब मिले, बडी खुशी, बडी खुशी, कहकर उनकी झुर्रियो से घिरी हुई आँखे आर्द्र हो गईं। मैने गिलास रखकर पिताजी के परिचित व्यक्तिके नाते उन्हे पुन. प्रणाम किया। और उन्होने मेरे सिर पर हाथ फेरकर मुझे अपनी छाती से लगा लिया। प्रेमाश्रु अधीर होकर ढुलक पडे।

'बेटा बेटा, बेटा।'

'पण्डिताइन ! ओ पण्डिताइन ! इधर आओ। वहाँ क्या कर रही हो। सुनोगी तो फूली न समाओगी।'

अम्मा मुँह पोछती-पोछती घर से निकलीं—'क्या है पण्डित

जी ? जल्दी कहो, चूल्हा जला रही हूँ बच्चे-बच्ची भूखे हैं।'

'चूल्हा जला लेना फिर; इधर तो आ, देख ! कितनी अच्छी बात बतला रहा हूँ।'

अम्मा प्रसन्नता की सरल मुद्रा से पास आकर खम्भे के सहारे खड़ी हो गईं।

बोलीं—'कहो ! क्या कहना है ?'

'बतलाओ, बड़ी खुशी की बात बतलाऊँ तो क्या खिलाओगी ?'

'बस ब्राह्मणों को खाने की ही खुशी।'

'पगली ! कितनी ही बार तो कहा कि खाने में ही सब कुछ खोकर बैठे है बेचारे ब्राह्मण।'

'बतलाओ जल्दी, मुझे तो देर हो रही है जो कहोगे सो बना दूँगी।'

'अवनिका बेटी क्या कर रही है ?'

'अपनी सखी सहेलियों से बातें कर रही है।'

'उसे भी तो बुला ले।'

'मैं तो नहीं बुलाती। तुम तो जो कहना हो कहो, इतने दिन में आई है तो क्या अपनी बराबरी वाली लड़कियों से बातें भी न करे।'

'अच्छा बतलाओ ! ये बेटा कौन है ?'

भोले भावों से अम्मा ने कहा—'मैं तो नहीं पहचानी पण्डित जी। क्या मालूम कोई लाज मर्जाद के हों तो मैं तो मुँह खोले ही सामने आ गई।'

'अरी पगली ये लाज मर्जाद के नहीं है। ये तो जगदीशनाथ जी के लड़के हैं अनंत।'

तपाक से अम्मा ने कहा—'मेरी सौंह ?'

'नहीं तो क्या मैं झूठ बोलता हूं ?'

'ओ दैया ! मैंने तो तीन साल का यह हो गया था जब तक अपनी गोद मे खिलाया था पर मैं तो तनिक भी नहीं पहचानी !'

मैंने कुर्सी से उठकर फिर अम्मा के चरण छुए। मेरी आत्मा में एक अजीब सा स्पन्दन हो रहा था। यह सब मैं क्या सुन रहा हूं। मुझे सृष्टि की इस बनावट का तो कभी अनुमान ही न था। वे दोनों मेरी सूरत की ओर देख रहे थे और मैं उनकी।

पण्डितजी ने कहा—'तुम क्या पहचानती खुद मैंने भी तो नहीं पहचाना। अच्छा हुआ जो मैंने नाम पूछ लिया, नही तो क्या पता चलता। अपन कितनी बार बात करते थे कि आज कल उनका कोई पता नही। जाने कहां है, क्या करते है।'

'हॉ, पता ही होता तो क्या व्याह की चिट्ठी न देते। राधा जीजीको क्या मैं बुलाती नही मेरी ओर देखकर बोली—'बेटा ! अब तो वे बहुत बूढी हो गई होंगी, मुझसे दो साल बडी हैं।'

मैंने कहा—'अम्मा ! वे, पिताजी और मुझसे छोटी एक बहन थी सब ही . ..।' दोनो ने एक साथ कहा—'क्या हुआ बेटा ?'

मैंने कहना आरम्भ किया—'मैं वहॉ चौथी पास कर चुका था। आगे पढने के लिए कस्बा बस्ती के बडे स्कूल मे आ गया था। पिताजी ने वहीं मेरा सब प्रबन्ध कर दिया था। मेरे साथी गांव के और भी दो चार लडके वहॉ आ गये थे।

ईश्वर की इच्छा ! वर्षा के दिन थे। एक दिन मे चौबीस इन्च मूसलधार वर्षा हुई। गॉव के किनारे एक नदी थी। रात के दो बजे उस नदी का पूर चढा और उसने सारे गॉव को जरासी देर में ढक लिया। चारो तरफ जलमयी धरती थी। कोई निकलकर भाग भी न सका। गॉव के सारे मनुष्य, पशु, घर-बार सभी नष्ट हो गये। दूसरे दिन जब

पूर कम हुआ तवहम लोगों को पता चला हम सब गाव मे गये। आस-पास के गाँवो के हजारहो मनुष्य इकट्ठा हुए। किसी-किसी मकान की ईंटो की दीवारें दीखती थीं। किसी मकान के लकड़ी के खम्बे दिखते थे। और सब वृक्ष ही वृक्ष थे। बाँकी कुछ न था। किसी का कुछ भी वस न चला। किसी का कोई भी पता न चला। तीन चार मील आगे किसी-किसी वृक्ष से किसी-किसी की लाश मिली। कुछ बच्चे, कुछ स्त्रियां और पुरुष भाग्यसे जीवित किसी वृक्ष पर, कही-कहीं मिले। बाकी सारे गाँव ने जैसे जल-समाधि ले ली हो।

'उसके बाद मेरा जीवन बडा कठोर बन गया। और धीरे-धीरे समय के साथ-साथ दु:ख भी कम हो गया। ज्यो-त्यो करके मैने बी ए भी पास कर लिया।'

उन लोगो का विवर्ण चेहरा पुन अपनी आकृति मे आ गया।

पण्डिजी बोले—'प्रभु की लीला बडी विचित्र है। तभी तो हमे आजतक उनका कभी कोई सन्देश नही मिला। वे मेरे इतने प्रेमी थे कि जब तक हम एक दो घण्टे वैद्यजी से बातें न कर लेते थे तब तक हम लोगो को रोटियाँ अच्छी नही लगती थी, क्यो अवनी की अम्मा ?'

अम्मा ने अपनी आँखें पोंछते हुए पण्डितजी की बातो का समर्थन किया और कहा—'अरे भैया! दिन-रात इन लोगो की बातें ही नहीं खुटती थी। हम लोग चौका ले ले कर दो-दो, तीन-तीन घण्टे इन लोगो की तपस्या किया करती थीं। तुम्हारी माँ इतने अच्छे स्वभाव की थी कि हँस देतीं तो फूल से झड जाते थे। औरत नहीं थीं लक्ष्मी का ही अवतार थी। खैर बेटा, भगवान तुम्हारी ही हजारी उम्र करे। हमे तो तुम्हे देखकर इतनी खुशी हुई कि कहते नहीं बनता। न जमींदार से झगडा होता न ये यहाँ आते न वे अपनी जगह जमीन पर जाते और

न हम जनम–जनम को बिछुड़ते। भाग्य की रेखा को कौन जानता है। क्या क्या लिखा रहता है।'

मेरे कपोलों पर अपने माता–पिता की स्मृति को लेकर जो आँसू उतरे उन्हें अम्मा ने अपने छोर से पोंछकर कहा—'बेटा भूल जाओ उन बातों को। यह तो संसार ऐसा ही है।' पण्डितजी जब मुझे समझाने लगे तब अम्मा अपनी आँखों को पोंछती हुई घर में चली गईं। पण्डितजी किसी नदी की विकरालता का एक पुराना किस्सा मुझे सुनाते रहे। अपने अतीत की कठिन घटनाओं को सुनाते रहे।

'बेटा ! पूरे चालीस वर्ष हो गए मुझे यह मास्टरी करते हुए। दो-दो,-तीन-तीन पीढ़ी को पढ़ा चुका; परन्तु अब मेरा शरीर साथ नहीं देता। अब तो घटती के ही दिन पूरे करने पड़ते हैं। भगवान की इच्छा। यदि वह एक लड़का ही दे देता तो यह दिन तो भगवान के भजन करने के ही थे, परन्तु क्या किया जाय।'

हम दोनों ही ईश्वर के सृष्टि-अन्तर पर क्षोभ और विवशता का सन्तोष पकड़ रहे थे। विधि–विधान की न्यूनता किसे नहीं खलती।

मैंने कहा—'पिताजी ! मैं आपका पुत्र नहीं तो क्या हुआ आपके मित्र का हूँ। इसलिए आप समझ लीजिए, मैं आपका ही हूँ। आपको एक लड़का चाहिये और मुझे अनेक वर्षों से बिछुड़े हुए माता-पिता और परिवार। सौभाग्य से आज सब मिल गए।

पिताजी ने, मुझसे और इन लोगों से कहाँ परिचय हुआ यह प्रश्न किया और मैंने झाँसी के प्लेटफार्म से यहाँ तक की मुख्य–मुख्य बातें उन्हें कह सुनाईं।

वे बहुत प्रसन्न हुए और बोले—'बेटा ! सु–रात्र में सबका सीर होता है। मिलन बदा था इसलिए उसका निमित्त बन गया।

कु-पात्र अपनी सन्तान भी किस काम की।'

'जो विधाता वहाँ बात बिगाड चुका था, उसीने यहाँ इस प्रकार बना दी।'

इतने मे ही एक लडका हाँफता हुआ आया।

'गुरुजी ! गुरुजी !! रामअधार ने रामदीन का सिर फोड दिया। उसके माथे से खून निकल रहा है।'

'अच्छा चलो तुम, हम आते है।'

'देखा बेटा ! यह जीवन है मेरा। जरा बैठ गया तो कम्बख्तो ने खुन-खच्चर कर डाला। तुम कपडे अपडे खोलो। आराम से बैठो।

'अवनिका ! ओ अवनिका !!'

'क्या पिताजी ?'

'इधर तो आ ।'

'आई पिताजी !'

'देख इस खटिया पर दरी वगैरह डाल दे। मैं स्कूल जाता हूँ। तुम लोग बैठो। बाते करो। मैं अभी छुट्टी देकर आया।'

वे खाँसते हुए लकडी लेकर बाहर गए। ममता के चेहरे पर एक अजीब तेज था। अनुपम आकर्षण था अद्‌भुत चैतन्य था। दरी लेकर आई और खटिया पर उसे बिछाती हुई बोली—'आप इस पर बैठिए मेहमान साहब !'

मैंने सतर्क होकर कहा—'अब मैं इस घर का मेहमान नहीं रहा ममता ! तुमने सुना कि नहीं, आपके पिताजी मेरे पिताजी के पुराने मित्र है। इस नाते अब मैं आपका मेहमान कैसे रहा ?'

'जाओ नहीं, यहीं रह जाओ। तब जाने कि आप मेहमान नहीं है, घर के है। पिताजी पिताजी के मित्र थे। अम्मा, अम्मा की सहेली थी और आप हमारे ।'

'कहो, कहो सखा है ।'

'मतलब वहाँ से यहाँ तक सब ठीक है !'

'आपको क्या मालूम कि अम्मा, अम्मा की सहेली थीं ?'

'वे कह रही थीं ।'

'मैंने हमारे तुम्हारे परिचय को पिताजी के पूछने पर झाँसी से अभी तक सुना दिया ।'

'और मैंने अम्मा को सुना दिया । सब रिपोर्ट बराबर सुना दी गई ।'

'अच्छा यह बतलाओ यदि यह परिचय न निकलता तो तुम क्या कहती ?'

'क्या पता, क्या कहती । पर हाँ आपका किसी भी हालत में अपमान न होने देती ।'

'ममता ! हमें तुमने कहा ही नहीं कि मेरा नाम अवनिका है ।'

'आपने मुझसे पूछा था क्या ? आपने पूछा नहीं मैंने कहा नहीं । आपने भी तो इस बेचारी अवनिका के अनेक नामकरण कर डाले । आप, सरकार, ममता ।'

'बहुत अच्छा नाम है तुम्हारा । मैं अब ममता न कहा करूँगा, अवनिका ही कहा करूँगा ।'

'एक शर्त है ।'

'सो क्या ?'

'फिर बदला बदली न करनी होगी । नहीं तो एक रोज आप । दूसरे रोज सरकार । तीसरे रोज ममता । चौथे रोज अवनिका और पाँचवे दिन और कोई पाँचवाँ .. ।'

'बेशक ! हुआ तो ऐसा ही है ममता । पर मुझे बन्धन में न बाँधो । मुझे तो आराधक की तरह अनेक नामों से ही पुकारने दो ।

प्रत्येक नाम की एक छोटी सी कहानी है। छोटी सी स्तुति है। छोटा सा इतिहास है।'

'आप चाहे जो कहे। मैं तो आपको जीवन' कहूँगी।'

'क्या यही वह नाम है जो मुझे आपसे मिलने वाला था।'

'जी ई···· ई · 'हाँ·· आ।'

'ममता ! मैंने ताँगे वाले को रोक दिया है, वह दो बजे तक रहेगा। मैं उसी ताँगे से लौट जाऊँगा।'

'मैं क्या जानूँ। अम्मा जाने। पिताजी जाने। जब वे जाने देंगे तभी जाओगे। रोकने वाली और भेजने वाली मैं कौन ? अभी मैं अपनी मधुकामिनी से पूछूँगी। देखें वह क्या कहती है। चम्पे से छूँगी देखें वह क्या कहता है। इस मामले में तो मोगरे, गुलाब सभी की सलाह लेनी पड़ेगी, तब काम चलेगा। मेरी सखियाँ कहती हैं— ाव के उस तरफ शंकर के मन्दिर में तमाशे वाले आये हैं। इनको त जाने देना। अपन सब शाम को चलेंगे। झूले आये हैं, झूला झूलेंगे। कहो ! इतने सबको नाराज करके कैसे चले जाओगे ? आखिर जाओगे, यह तो सभी जानते हैं। मगर आज नहीं। समझ गये न आप।'

ममता की भृकुटी, आँखें, मुँह और ऊँगली सबने एक साथ आज्ञा दी—'समझ गये न आप।'

'ममता ! कल मुझे इलाहाबाद के डायरेक्टर से मिलना चाहिये।'

'ममता ने अनुशासन की भाषा में कहा—'कल न सही परसों सही, नरसों सही।'

'समय का काम समय पर ही होता है। वे समय नहीं होता।'

हँस कर ममता ने कहा—'यदि यही बात है तो आज मुझे

यहाँ आये चौथा दिन होना चाहिये।'

'अच्छा यह बात बतलाओ कि पिताजी यदि तुमसे पूछ बैठे कि मैं तुम्हें कैसे मिला तो तुम उन्हें क्या कहोगी। मैंने कुछ कहा, तुम कुछ कहोगी तो उन्हें व्यर्थ ही सन्देह हो जायगा।'

'जिस प्रकार हुआ है सच ही कहूँगी। झूठ बात के कहने में और उसे याद रखने में फर्क पड ही जाता है। परन्तु सच बात के कहने में कभी फर्क नहीं पडता न याद रखने की ही दिक्कत होती है।'

'वे पूछेंगे तीन रोज तक तुम कानपुर में क्यों रहीं ?'

'कह दूँगी वहाँ इन्हें काम था। इन्हें इस तरफ आना ही था मुझे इन्होंने अकेली न आने दिया, मैं क्या करूँ।'

'मैंने कहा—ठीक ही है साँच को आँच क्या ?'

कुमार चम्पे की पींड को अपने भुज-पाश में कसने की चेष्टा कर ही रहा था। ममता ने मेरा ध्यान उधर आकर्षित कराया। मैं कुमार को अपने पास बुलाने के सकेत कर रहा था, किंतु उसका मन उसके खिले हुए फूलों से खेल रहा था। वह चाहता था कि चढ़ कर तोड़ लूँ। कुछ नीचे गिरे हुए फूल बीन कर मुट्ठी में भरे हुए था।

'ममता ! तुम लोगों ने तो आँगन में ही बगीचा लगा लिया, कितने अच्छे लगते हैं ये फूलते हुए वृक्ष।'

'ममता कह रही थी—'वह मौरशली का झाड बड़ी जीजी ने लगाया था। पीछे एक आम का झाड है जो बड़े—बड़े आम देता है। ये दोनों उन्हीं की यादगार हैं। मधुकामिनी का झाड कुमार की अम्मा का लगाया हुआ है। और यह चम्पे का आपकी ममता का लगाया हुआ है। वे सब तो चली गईं अब मुझे ही इनकी परवरिश करनी पड़ती है। दो तीन महीने से इन बेचारों को बराबर पानी नहीं मिला होगा, इसीसे ऐसी हालत हो रही है।'

'यदि तुम भी ससुराल रहतीं तो इन बेचारों को फिर कौन पानी पिलाता, कौन इनकी सेवा करता?'

'इन्हीं बेचारों के भाग्य से तो मुझे ससुराल में छुट्टी मिल गई है।'

ममता यह कह ही रही थी कि पण्डित जी आ गये।

हँस कर बोले—'बेटी, मैं सोच ही रहा था कि अनन्त बेटा अकेले होंगे, तो बुरा लगता होगा।'

हँस कर ममता ने कहा—'पिताजी मैं इन वृक्षों का इतिहास सुना रही थी।'

पिताजी हँस दिये। पिताजी ने कहा—'बेटी! यह बतलाओ यदि तुम्हारा इनका साथ न होता तो?'

ममता ने वृत्त कहना आरम्भ किया। पिताजी सुनते जाते थे और कहते जाते थे 'बेटे! तुमने अच्छा किया।' और नाखुश होते जाते थे कुमार के पिता से, जिसने ऐसी भूल की। जब ममता ने कुमार के इस तरह गंगा में डूबने का हाल सुनाया तो पिताजी की वृद्ध आत्मा काँप उठी और वे बोले—'बेटी! आयन्दा किसी पराये बच्चे को अपने साथ में नहीं लेना चाहिये। मान लो, अनंत बेटा तैरना न जानते होते तो, बच्चा तो डूब ही गया था। तुम्हारा और हमारा सब का मुँह काला हो जाता न। खिलाई-पिलाई को कोई नहीं देखता। किंतु कुछ होनी-अनहोनी हो जाती तो सारा जमाना भला-बुरा कहने को आमादा हो जाता।'

अम्मा ने आवाज दी—'अवनी! ओ अवनी बिटिया!!'

अवनिका ने कहा—'पिताजी! मैं जाती हूँ। अम्मा अकेली बना रही है, उनकी मदद कर दूँ।'

'हाँ, जाओ बेटी, बेचारी अकेली है और जानेक्या-क्या खटपट

कर रही होगी।'

ममता गई। थोड़ी ही देर मे हँसती आई और बोली—'अम्मा पूछती है, आप गंगाजल लेंगे या नही ?'

मैंने हँस कर कहा—'अवश्य लूँगा, वर्ना अम्मा चौके मे नहीं बैठने देंगी न।'

पिताजी ने कहा—ऐसा ही है बेटा! तुम्हारी अम्मा पुराने ख्याल की औरत है। उसके पास धरम-करम, सेवा-पूजा, तीरथ-बरत, इत्यादि का बडा दंद-फंद रहता है।'

'ले आ बेटी थोडा सा गंगाजल। उसका भी मन मान जायगा।'

'अम्मा का जल तो बहुत खर्च होता होगा ?'

'यह प्रयाग राज जाने वालो से और कुछ नही मंगातीं, गंगा-जल ही मंगाती है।'

'मैं भी तो प्रयाग ही जा रहा हूँ।'

'तुम क्यों जा रहे हो बेटे प्रयाग ?'

''पिताजी! वहाँ मेरी नौकरी लगना चाहती है। कल मुझे एजूकेशन डाय्रेक्टर के सामने पहुंचना चाहिये।'

'तब तो तुम वहीं रहा करोगे ?'

'जी हाँ पिताजी, आप पधारेंगे न ?'

'क्यो नहीं बेटा! हमारा बस चले तो हम दोनो ही स्त्री-पुरुष प्रयाग नहाया करें और भगवत् भजन किया करें। अवनिका की शादी करके निश्चिन्त हो गये थे, परन्तु भाग्य से वे लोग ऐसे निकम्मे निकले कि लडकी का जन्म ही बिगड गया। बेटा! इस भाग्य में जाने क्या-क्या लिखा रहता है। इसे न तो कभी किसी ने जाना न कोई जान पाएगा।'

ममता गंगाजल ले आई। मैंने कृष्णाय, गोविन्दाय, माधवाय

नम', कहकर तीन आचमन कर लिए। ममता चली गई और पिताजी ने कहना आरम्भ किया—'बेटा ! मैंने स्वयँ ही सब बच्चियों को पढ़ाया, योग्य बनाया। किंतु धन के अभाव के कारण मैं इन्हें अच्छे घरों मे नहीं दे सका। अवनिका पढने मे वहुत होशियार है और इसीलिए इसके पढाने मे मेरा मन लगा रहा और मैंने इसे प्रयाग की विशारद परीक्षा मे बैठाया। यह उस परीक्षा मे प्रथम श्रेणी मे उत्तीर्ण हुई। उसी वर्ष इसकी शादी थी, इसलिए रह गई नही तो अब तक यह रत्न की परीक्षा पास कर लेती।'

'हाँ पिताजी, अवनिका की योग्यता बहुत अच्छी मालूम होती है।'

'मेरा तो सिद्धान्त है बेटा, लडकियो को अंग्रेजी की तालीम न देकर हिन्दी और सस्कृत जितनी पढ सकें पढा देना चाहिए। अवनिका को सस्कृत का भी ज्ञान है।'

खेलता-खेलता कुमार आ गया। पिताजी ने कहा—'कहो बेटा ! अगर अनन्त भैया नही होते तो कैसी गुजरती। बच्चा है तो सीधा पर जाने कैसे बह गया।'

मैंने उस विषय को स-विस्तार सुनाया। अम्मा आ गईं और बोलीं—'चलो उठो भी ! बेटा भूखा होगा न। बारह एक बज गई।'

हम लोग चौके मे पहुँचे। अम्मा ने निश्छल प्रेम से जिस भोजन को बनाया हो, ममता के कोमल करो से जो परोसा गया हो, उस भोजन के स्वाद का वर्णन नहीं किया जा सकता, केवल अनुमान ही लगाया जा सकता है। पास मे बैठे हुए पिताजी कहते जाते हैं—'हां, बेटा एक कटोरा तस्मई अनन्त को मेरी तरफ से। अम्मा कहतीं—एक पुआ मेरी तरफ से और। ममता कहती और मेरा हिस्सा क्या पकौड़ी मे ही पूरा हो जायगा? मैं इस प्रकार नित्य के

आहार से भी अधिक भोजन कर गया। कैसे टालता उन लोगों की मनुहार। मैं उच्छृङ्खल होकर भी तो नहीं हो सका।

ज्योंही भोजन करके बैठक में आया कि तांगेवाला आया और बोला—'चलिए बाबूजी !'

पिताजी ने मुझसे बिना ही पूछे और मेरे कहने से पहले ही उससे कह दिया—'तुम जाओ भाई, भैया आज नहीं जाएंगे। मैंने अपनी मजबूरी बतलाई परन्तु उन्होंने एक भी न सुनी। 'नहीं बेटा अभी भोजन किया है। गर्मी का समय है। आराम करो। कल हम गाड़ी जुतवा देंगे या कोई तांगा ही आ जाएगा। कल ठण्डी वक्त में चले जाना। आते तो देर न हुई। न बोले, न बैठे, न बात की। यह भी कोई आना हुआ। तुम समझना एक दिन और कानपुर में ही अधिक लग गया। अवनिका ! ओ अवनिका !!'

अवनिका आकर बोली—'क्या पिताजी !'

'बेटी ! ये जाने का इरादा कर रहे हैं ?'

अवनिका ने हंसकर कहा—'हमने कह दिया न कि आज तमाशा दिखलाना, झूला झूलेंगे, इसी भय से भाग रहे होंगे, नहीं तो कोई ऐसी गर्मी में जाता भी होगा।'

मेरा पेट मुझे अस्वस्थ-सा किए हुए था। फिर ममता का कटाक्ष और भी करारा था। आखिर मुझे तांगे वाले से कह ही देना पड़ा—'अब नहीं जाऊंगा। और ममता से कहा—'अच्छा नहीं जाता। आप लोगों का तमाशा ही दिखलाऊंगा, अब तो खुश हो न !'

ममता कूदती-फाँदती अन्दर चली गई। मालूम होता है उसने अपनी विजय की सूचना सुना दी थी। अम्मा आई और आज्ञा के स्वर में बोली—'बेटा, तुम आज तो किसी भी हालत में नहीं जा सकते।'

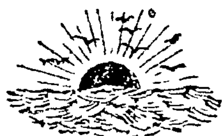
दरवाजे पर खड़े हुए ताँगेवाले को देखकर अम्मा को दया आई। बोली—'क्यों भाई तुम हमारे हाथ की पक्की खालोगे न, हम कुछ खाने को दें ?'

'माँ आपके हाथ की तो हम कच्ची भी खा सकते हैं, आप तो ब्राह्मण हैं भगवान के भी पूज्य हैं।'

इधर इस झाड की छाया मे बैठ जाओ। मैं अभी खाने को लाती हूँ। मगर आज हमारे बेटे को मत ले जाना, इतनी बात तो तुम्हे माननी पडेगी।'

ताँगे वाला हँस दिया। पण्डितजी ! आप दूसरा पलग बिछाले और मुझसे कहा—बेटा तुम इसी पर लेट जाओ, आराम कर लो।'

अवनिका दो-दो बीडे पान ले आई। मैंने उन्हे मुंह में रखकर थोडा चबाया था कि मेरी पलकें बन्द सी होने लगी। मुंह का पान फेका और सो गया।



# वह दिन

लगभग पाँच बजे तब जागा जब यवनिका ने आकर मुझे समूचे को हिला डुला दिया। आँखों को सजग करते हुए मैंने पूछा—'क्या बज गया ममता?'

हाथ की समूची उँगलियों को फैलाते हुए उसने उत्तर दिया—'पाँच।'

अवनिका ने नीचे से उठकर पानी का लोटा मुझे दिया। मैंने हाथ मुँह धोकर पूछा—'पिताजी कहाँ गये हैं?'

'अभी थोड़ी देर पहले तो अम्मा से आपकी तारीफ कर रहे थे। अभी-अभी कहीं बस्ती में चले गए होंगे। आजकल वे महात्मा जी के यहाँ जाकर सत्संग किया करते हैं।'

'तुमने मना नहीं कर दिया जब वे तारीफ कर रहे थे तब।'

मुँह बनाकर ममता ने कहा—'मेरी क्या गरज पड़ी, मैं थोड़ी ही पूछ रही थी अम्मा पूछ रही थीं और वे कह रहे थे . . .'

'तुम सुनती ही क्यों रहीं कान बन्द क्यों नहीं कर लिए।'

'वही तो किया। दोनों कानों में उंगली लगाकर बोली—'इस तरह बन्द कर लिए थे।'

'अब क्या विचार है? ताँगेवाला तो गया ही होगा?'

'वह तो अभी [illegible] पुराना हो गया।' मेरा हाथ पकड़कर [illegible] कहा—'चलो अम्मा बुला रही हैं।'

मैं उठा, आगे यवनिका थी और पीछे मैं। मकान के अन्दर [illegible] लड़कियों ने घर घेर रखा था। अम्मा ने देखकर कहा—'बेटा, [illegible] थोड़ा सा कुछ खा लो और फिर इन लड़कियों को जरा मेला दिखा [illegible]

लाओ। तुम भी गाँव देख आओ। हमारी जिन्दगी तो बेटा गाँव ही में बीत गई। हमें तो शहर में कभी रहने का ही मौका न मिला। तुम सो रहे थे तब कितनी ही गाँव की स्त्रियाँ तुम्हें देखने आई। मारे गाँव में खबर फैल गई कि गुरुजी के लडके शहर से आए हैं, बड़े अच्छे है।' 'छोटे गाँव में ऐसा ही होता है। अम्मा इस समय तो मेरी कुछ भी खाने की इच्छा नहीं है।'

अम्मा के स्वभाव के सीधेपन पर मुझे उस समय हँसी आई जब उन्होंने यह कहा कि शहर मे रहने से तुम्हारी खुराक बराबर नहीं है। आठ रोज यहाँ रहो तो दूना खाने लगो। देखो लडकियो! बेटा को तंग मत करना। फिजूल पैसे खर्च मत कराना।

रिद्धि-सिद्धियो मे से कुछ तो चुप रहीं। कुछ काना-फूँसी करती रहीं। कुछ आँखो ही आँखो मे होंठ हिलाकर बातें करने लगी और एक-दो तो कह ही बैठी—'अम्मा, आज तो हम इनके खूब पसे खर्च कराएँगी। खूब झूलेंगी। खूब मीठा खरीद-खरीदकर लाएँगी, ये भैया भी क्या याद करेंगे। क्यों अवनी दीदी ?'

अवनिका चुप थी।

मैं बोला—'मैं नहीं घबराता तुम सब जब झूलते-झूलते थक जाओगी और मीठा खाते-खाते जब पेट फूटने लगेगा तब तो मानोगी!'

'दैया रे! पेट कौन '' ' कहकर सब कहकहा मारकर हँस दी।'

जहाँ स्नेह जगत का यह सिद्धान्त है कि प्रेम न केवल प्रेमी ही से किया जाता है अपितु प्रेमी के समस्त प्रेम-परिवार से और उसकी समस्त वस्तुओं से भी किया जाना चाहिए। किन्तु कुछ व्यक्ति ऐसे भी होते हैं जो प्रेम का अधिकार अपने तक ही सीमित मानते हैं। उस समय मैं अवनिका को समझने और अपने आपके लिए समुचित व्यवहार करने के लिए सोचने का यत्न कर रहा था। इसलिए उन

लोगों के प्रश्नों का उत्तर पागल की तरह हँस-हँसकर ही देते जाना पड़ता था ।

अम्मा कह रही थी—'हमारा बेटा सीधा-साधा है और अवनिका कह रही थी—'बड़े सीधे, एकदम भोले, अत्यन्त गरीब, क्या कहना है आपके बेटे सा · · ····।'

मैंने बात को टालते हुए पूछा—'अवनिका ! वह जगह कितनी दूर है, किस वक्त तक हम लोग लौटकर आएँगे। कपड़े भी बदलने पड़ेंगे क्या ?'

अम्मा ने कहा—'दूर नहीं है बेटा। गाँव के उस किनारे है। जाओ देर मत करना, कपड़े चाहो तो बदल लो। यहाँ के लिए तो तुम्हारे ये कपड़े ही राजा बाबू सरीखे हैं। अवनिका से कहा—'बिटिया ! देर मत करना नहीं तो तुम्हारे पिताजी नाराज होंगे।'

मैंने कहा—'ये रिद्धि-सिद्धियाँ तो तैयार ही मालूम होती हैं।'

उत्तर मिला—'हां,कुमार को अपनी उँगली पकड़ाई। जूते पहन और आगे हो लिया। अवनिका अपनी सब सखियों के साथ मेरे पीछे पीछे थी। मैं अपरिचित जब कभी राह में डाँवाडोल हो जाता तब उन लोगों में एक कहकहा मच जाता। मैं खड़ा हो जाता और पूछता—'क्या ?'

वे सब हँसतीं और कहतीं—'उधर नहीं इधर।'

उन लोगों में शायद बड़े मजे-मजे की बातें हो रही थीं और मैं कुमार से ही कुछ तोतली बातों का आनन्द ले रहा था। ग्रामवासी कोई मुझे देखकर ही रह गया। किसी-किसी ने पूछा भी और कोई-कोई लड़की अवनिका के,साथ ही हो ली। वे छोटे-छोटे मकान किन्तु लिपे-पुते और साफ-सुथरे। घर-घर तुलसी क्यारे। किसी-किसी घर में आम, जाम या नीबू के वृक्ष। सबकी आँखों में ममता; मोह; स्नेह

और अवनिका के लिए सत्कार अवनी दीदी कब आई ? सब अच्छे तो हैं ? ऐसे ही अनेक प्रश्नो का उत्तर अवनिका को देते हुए आगे बढना पडता था ।

जहाँ बस्ती समाप्त होती है वने आम, अमरूद आदि के वृक्षो की अमराई थी और उससे लगा हुआ गहरा पक्का बंधा हुआ तालाब, तालाब और मन्दिर के बीच एक लम्बा चौडा मैदान था जिसमे प्रतिवर्ष यात्रा लगती थी, उसी मे यात्रा लगी हुई थी । हम लोगो ने पहले मन्दिर दर्शन करने का तय किया और उसके बाद फिर मेला देखना, इसीलिए एक किनारे से निकल कर पहले मन्दिर मे पहुँचे ।

पूर्व की ओर मदिर का मुँह था जिसके सामने लंबी-चौडी फूलोंसे लदी हुई सुन्दर वाटिका और वाटिका के एक कोने पर पक्का कुँआ था । मन्दिर मे भगवान शंकर विराजमान थे । मुगल शासन काल मे जब कोई बादशाह इसे तोडने आया तो वह अन्धा हो गया था । इसलिये यह मन्दिर बच गया और तभी से प्रतिवर्ष दो दिन यात्रा भराती थी । बादशाह से उसी समय से मन्दिर की सेवा पूजा के लिये कुछ मिलता था किन्तु अब वह बस्ती की ही ओर से सेवा होती है । यह किंवदन्ती अवनिका और उसकी सखियो ने मुझे सुनाई ।

मन्दिर के अधिकारी एक सन्यासी हैं जो बहुत वृद्ध है । पिता जी उन्हो के पास सत्संग कर रहे थे । मैंने भगवान को प्रणाम किया फिर सन्यासी जी की और पिताजी को आज्ञा लेकर मैं चला । अवनिका और उसकी सहेलियाँ वाटिका मे घुस गई थी, मैं जब वाटिका मे पहुंचा, तब वे जहाँ तहाँ से कुछ खिले हुए फूल और कलियाँ चुन रही थी ।

मैंने कहा—'अवनिका मेला देखने आई हो या फूल चुनने ?'

अवनिका ने मुस्कुरा कर कहा—'एक पंथ दो काज ।'

संध्या से सूर्य दूर नहीं थे। मन्दिर की छाया आधी वाटिका तक फैल चुकी थी। बीच मे कदम का बडा वृक्ष था। मैं और कुमार उसी के नीचे बैठ गये और रिद्धि-सिद्धियों के साथ अवनिका की होने वाली अठखेलियाँ देखते रहे। कुमार उस चांचल्य के मोह को छोडकर अधिक देर मेरे पास न रह सका वह भी उन सबमे ही जा मिला।

थोड़ी देर मैं थके हुए पथिक की भाँति अकेला ही बैठा रहा। जी चाहता था इनका सहयोग दूं किंतु मर्यादा ने मेरे साहस को पनपने नहीं दिया।

वह दृश्य, वह शोभा निश्चित अद्‌भुत थी। उन ग्राम्याओं में शहराती चापल्य न था अपितु ग्रामीण शील था। संकोच भी था और भोला बचपन भी। सब शरीर से स्वस्थ थी। सब प्रसन्न-वदना थीं किन्तु अवनिका उन सबमे सम्राज्ञी सी मालूम हो रही थी और चल भी तो सब उसी के संकेत पर रही थीं।

जब मैं उठकर इधर-उधर टहलने लगा तब वे सब बैठ गईं। कभी उनकी आँखें हँस जातीं। कभी होठ हँस जाते और किसी-किसी बात पर वे सब हँस जातीं।

मैंने कहा—'मेला चाहे उजड जाय, परन्तु आप लोगो की वेणी तो फूलों से सज जायगी।'

'घबराइए नहीं, आपका गला भी बिना सजे न रहेगा। आपने नहीं चुने तो क्या हुआ। हम लोगो ने आपके हिस्से के फूल चुन लिये हैं। अम्बा, करुणा, शीला, भारती, उठो! अब चलना चाहिये। अगर पिताजी या स्वामीजी देख लेंगे तो बिना कुछ सुनाए न रहेंगे। चलो, इस कुएं वाली खिडकी से ही निकल चलो।'

सब बसन्त सेना की तरह उठ खड़ी हुईं। एक-एक करके वे

सब निकलीं और जब मैं निकला तो खिडकी ने मेरी धोती का पल्ला पकड लिया जो उन सबके विनोद का कारण बन गया। पल्ला छुडा कर मैं आगे बढा।

'अवनिका ! पहले झूला जाय झूला, तब खरीदी जाय मिठाई। फिर कुछ और और चीजे। और तब खेल--तमाशे देखते हुए घर चले।'

सबने समर्थन किया। वे तीन-तीन,एक-एक पालकी मे बैठ गईं। मेरी पालकी मे मैं और कुमार था, किन्तु वजन पूरा न हुआ तो एक और लडके को बैठा कर वजन पूरा किया। और फिर चूँऊ चररर करके झूला चलने लगा। दो–दो, तीन–तीन, पैसे का ही झूल पाए होगे कि बस-बस की आवाजें आने लगी।

उसके बाद चलता फिरता आजायबघर देखा गया। वे कॉच मे मुंह लगाकर देखने लगीं। कहीं युद्ध, कहीं सात मन की धोबिन, कहीं चित्तौड का किला, कहीं झाँसी की रानी, और कही पेटूमल सेठ। इस प्रकार के प्रत्येक ने सोलह चित्र देखे और मैं उन सबके भाव चित्र का चित्रण करता रहा। बहुत देर तक उन चित्रो की चर्चा और हास्य विनोद उन लोगो मे होता रहा।

दूसरे प्रकार का चकरीदार झूला था,जिसमें हाथी,घोड़ा, पालकी, ऊट आदि की सवारी थी। जिसके दिल मे जो आया उस वाहन पर बैठ गईं। अपने राम भी एक घोडे को बुड्ढा घोडा कहकर उस पर बैठ गए। मेरे बैठते ही उसने मुंह फेर लिया और उन लोगो का उस बेचारे घोडे ने भी पर्याप्त विनोद कर दिया।

इधर-उधर घूमकर सारा मेला देखा। छोटी छोटी दूकानें थी और साधारण साधारण चीजें; किंतु उन लोगों के लिए तो वे चीजें ही कुछ कम न थी। कुछ खेल खिलौने कुमार के लिए खरीदे गए। कुछ फल और मिठाई खरीदी गई। अवनिका ने इन चीजों की खरीदी

के समय भी कानपुर का सा विरोध किया। किंतु मैंने उस विरोध को इसलिए नहीं माना कि 'हम लोग इन लोगो के लिए कानपुर या फतहपुर से कुछ भी खाने पीने को नहीं लाए। मुझे क्या मालूम था कि ममता का इतना बडा प्रेमी परिवार वहा मिलेगा। इसके साथ ही साथ यह बात थी कि मुझे इस व्यवहारिकता का भलो भाँति ज्ञान भी न था कि मैं जब वहां जा रहा हूँ तो कुछ लेकर चलना चाहिए।

सूर्यदेव छिप गये थे। संध्या हो चुकी थी। दीपक लग रहे थे। आकाश में कहीं कोई एक तारा अपना झिलमिला प्रकाश देने लगा था, तब हम लोग लौटे। किसी की झोली मे फूल थे, किसी की ओढनी मे फल। किसी की ओली मे खिलौने और किसी की ओली में मीठा। मेरी गोद मे थका हुआ बेचारा कुमार इस प्रकार हम सब लदे-लदाये धीरे-धीरे कुछ बातें और कुछ मेले की चर्चा करते हुए घर लौटे। पिताजी नही आये थे। अम्मा दीपक जलाकर किसी पडोसिन को पास बैठा कर उससे कुछ बाते करती हुई, हम लोगों की प्रतीक्षा ही कर रही थीं हरएक की गोद मे कुछ न कुछ था। यह देखकर अम्मा अवनिका पर नाराज हुई। 'अवनी! मैंने तुम सबसे कहा था कि बेटा को अधिक खर्च में मत पटकना यह तुम सब क्या-क्या ले आई हो।'

मुँह बिगाड कर अवनिका ने कहा—'अम्मा! पूछना इन सब से, मैंने तो कितना मना किया मगर जब कोई मेरी बात माने तब न। मैं हाथ पकडने से तो रही, न मुँह ही पकड सकती थी।'

और सब अपराधिन की तरह चुप थी।'

मैंने कहा—'अम्मा! शहर में जितना खर्च होता है यहाँ उसका आधा तो क्या चौथाई भी नहीं हुआ। यहाँ था हो क्या जो खर्च करते। पैसे-पैसे दो-दो पैसे के तो झूले-झूले और, खिलौ—गो सबने

लगी। फूल इन लोगो ने बगीचे से तोड लिये। खिलौने इन लोगों के है ही नहीं, ये तो सब कुमार के हैं। रहा मीठा और फल सो इन रिद्धि-सिद्धियो ने इतना श्रम किया है, इन्हें भी तो कुछ खाने-पीने को मिलना चाहिये। मैंने सोचा वहाँ से नहीं लाया तो यहाँ से ही सही, बस यही लाए है और कुछ तो खरीदा ही नही जो खर्च होता।'

'बेटा! ये लडकियाँ तो पागल हैं। परन्तु इतना सब क्यो ले आये, तुम्हारे पिताजी सुनेगे तो नाराज होगे न।'

'पिताजी से मत कहना अम्मा। मैं भी नहीं कहूँगा। तुम भी मत कहना अवनिका ?'

मेरी बात को सुनकर अम्मा हँस दीं। 'देखा रामदेवी की अम्मा कितना भोला है बेटा। मैं कहती थी वही बात है न! जरा भी फर्क पडा मेरी बात मे ! बेटा! इतना खर्चीला स्वभाव नहीं रखना चाहिये। आदमी को चाहिये दो पैसे बचा कर रखे। आजकल जमाना आदमियत का नही बेटा, पैसे का है।'

उस समय मुझे भान हुआ कि मातृ-हृदय भी क्या है। आज यदि मेरी माता होती तो शायद मुझे वे भी यही बात कहती और ऐसा ही स्नेहपूर्ण व्यवहार करती।

'बेटा! हम लोगो के लिए तो इतना भोजन रखा है कि कल तक भी खाए न खुटेगा। तुम तुम्हारी जो इच्छा हो कह दो वही बना दूं, और पंडितजी तो शायद ही आज भोजन करें। जिस रोज गरिष्ठ भोजन करते है वे शाम को फिर भोजन नहीं करते।'

'आप तो कुछ भी बनाने का कष्ट न करे माताजी! जो भी भोजन रखा होगा वही कर लूंगा।'

'नहीं बेटा, भोजन बनाने मे मुझे आलस्य थोडे ही आता है, अभी बना देती हूँ तुम शर्म मत करो।'

'अम्मा शर्म बिलकुल नहीं करता, आप दोपहर के भोजन को ठण्डा समझती है, मैं तो दो–दो, तीन-तीन दिन का भोजन भी कर लेता हूँ। न तो मुझे नमक मिर्च का ज्ञान है न ठण्डे–बासे का। मुझे तो भूख लगे उस समय कुछ भी खाने को मिल जाना चाहिए। आप जानती ही हैं जो खुद बनाना न जानता हो घर मे माँ न हो, न कोई रोटी बनाकर खिलाने वाला हो, उसे ठंडे बासे का ज्ञान रहता है क्या? जो भी भगवान अपनी इच्छा से थाली मे भेज देते है, अनन्त तो उसी मे सन्तुष्ट हो जाता है।'

हम लोग इस प्रकार बातें कर ही रहे थे कि पिताजी आ गए। मुख पर मुस्कुराहट थी, आँखों मे स्नेह था और वाणी मे प्रेम प्रवाह। 'बेटा! देख आए मेला? यहां और तो कुछ नहीं केवल वर्ष मे एक बार दो रोज का यही मेला होता है। तुम्हे देहाती जीवन अच्छा तो नहीं लगता होगा। यहाँ मनोरजन के और कोई साधन नहीं हैं। किन्तु दूसरी बाते है जो शहरो मे नही होतीं।'

मैंने कहा—'पिताजी! मैं अभी भी जमीन आदि के कारण जब देहात मे जाता हूँ तो वहां मुझे कुछ दिनों तक अच्छा लगता है।'

बीच ही मे अवनिका ने कहा—'पिताजी! ये लगते शहराती सरीखे है किन्तु है पूरे देहाती। ठंडी रोटी खाना पसन्द करते हैं और शादी भी किसी देहातिन से ही करेंगे शायद।' यह कह कर मुँह आँचल के छोर से दबा अवनी मेरी ओर देख मुस्करा दी। मैं लज्जित हो गया। मेरी गर्दन नीची हो गई। पिताजी अवनिका की बात को सुनकर हँस दिये और बोले—'फिर क्या देखना है, देख लो किसी गरीब ब्राह्मण की लड़की और देहात में शादी हो तो किसी देहाती से ही होना चाहिये।'

अम्मा ने हँस कर कहा—'और दूलह का बाप भी आपके

जैसे किसी देहाती को ही बनाना चाहिये।'

पिताजी ने समर्थन किया और मन मोदक वाली बात पर हँसते रहे। अम्मा के पूछने पर भोजन करने से इन्कार कर दिया और वे अपनी कुर्सी पर माला लेकर बैठ गये। हम लोग चस्पे के नीचे चौका लगवा कर हँसते और खाते पीते रहे। फिर रिद्धि-सिद्धियों को अम्मा ने फल और मिठाई बाँट दी और वे धीरे-धीरे एक-एक कर खिसकने लगी। अवनिका ने आँगन मे हम लोगों के पलग बिछा दिए। पान खाए। अम्माजी माँ की जो बाते सुना रही थी उन्हे मैं बड़े ध्यान और प्रेम से सुन रहा था। ममता उन्हे कभी-कभी छेड़ देती थी और ये झूठी नाराजी से ममता को झिडकियाँ सुना देती थी।

पिताजी की घण्टे-डेढ घण्टे मे माला समाप्त होगई। वे अपनी खटिया पर लेट कर हम लोगो की बातो मे सहयोग देने लगे। फिर वे अपनी अतीत कालीन परेशानियाँ सुनाते रहे। बेटा! जीवन मे एक बार तो राजा रंक सभी को दुःखो का मुकाबिला करना पड़ता है। चाहे वह बचपन मे हो, जवानी मे हो, या बुढापे मे हो। किंतु कुछ लोग ऐसे भी है जिन बेचारो को सारी जिन्दगी ही दुःखो मे डूबा रहना पड़ता है। परन्तु कर्मयोगी दुःख को भी सुख मान लेते है और बुरे दिनो को भी आसानी से निकाल देते है।'

दुःख और सुख इस दुनिया के ये दो ही अर्थ है। ससार का स्वभाव है बुराइयो को जन्म देना। सन्तो का स्वभाव होता है भलाई का निर्माण करना। लोग सुख के वास्तविक अर्थ को भूल कर इस युग मे उसका अर्थ पैसे की सम्पन्नता से लगाते है। पैसे की सम्पन्नता मनुष्य मे बुराइयो को पनपाती है। इसीलिए जो गरीब और निर्धन है वे बुराइयो से मुक्त और भलाइयों के जन्मदाता है। मनुष्य सारे जीवन भर मनुष्य को ही समझता है और वह अपना ज्ञान मनुष्य के

लिए ही एकत्रित करता है और एकदिन वह मनुष्य जातिको समझमें ही लय हो जाता है। जो मनुष्य बाहरी आँखों से मनुष्य को नहीं समझ पाता, वह हृदय की आंखो से उसके निर्माता को कैसे समझ पायगा बेटा ? मनुष्य की श्रेणी से ही मनुष्य का विभाजन होता है। कुछ लोग मनुष्य में पैदा होते है और देवत्व मे जाकर मृत्यु पाते है। कुछ मनुष्य जनमते है और दानव होकर मौत के मुँह मे समाते है। और कुछ मनुष्य ही पैदा होते हैं और मनुष्य ही कहलाकर शरीर छोड़ देते हैं।

'हम लोगो का जन्म ब्राह्मण वंश मे हुआ है, भले ही हम निर्धन रहें और गरीब कहलाएँ किन्तु सरस्वती का पल्ला छोड़कर लक्ष्मी का नहीं पकडेंगे, न उसके वाहन ही कहलाएंगे।'

अम्मा ने जरा नाराज होकर कहा—'आप ब्रह्मज्ञानी बने सो बने, बेटे को तो अभी दुनिया देखनी है। इसे आज से ही ब्रह्मज्ञान का पाठ पढाने क्यो बैठ गए।'

'पगली ! मैंने अपने जीवन भर और किया ही क्या है पाठ ही तो पढाया है। वही मेरी आदत है। वही मेरा स्वभाव है। वही मेरा संस्कार है। तू जो इतनी देर से अपना पाठ पढा रही थी तब मैंने तो नही कहा कि तू व्यर्थ का गया गुजरा पाठ क्यों पढ़ा रही है? जब मै दो बातें कहने लगा तो तुझे ऐसा क्यों बुरा लगा ? क्या बेटा तेरा ही है, मेरा नहीं ? तुम्हारा काम है लड़कियों को पढाना और मेरा काम है लड़को को पढाना।

मैंने बीच ही मे कहा—'यह अच्छा हुआ। पिताजी ने ठीक-ठीक हिस्से कर दिए।' हम सब के सब हँस दिए।

'हम आज बेटे को जाने क्या–क्या समझाते मगर तुमने बीच ही मे हमारी बात काट दी।' अच्छा नहीं हुआ।

'अब तो अपने–अपने हिस्से हो गए। अब आप अपने लड़के को समझाया बुझाया करना हम नही बोलेंगी। चलो अवनी, चांदनी निकलने को है। अब सोए बेटी। इन लोगों के पीने को पानी रख दिया ?'

अवनिका टोकनी मे गीला कपड़ा रखकर उसमे फूल रख रही थी।

'यह क्या कर रही है ?'

'फूल रख रही हूं। यों रखने से सुबह तक मुरझा जाएंगे।'

'क्या करेगी इन फूलों का ? कहाँ से ले आई है, इतने फूल ?'

'मन्दिर की बगिया से ले आई हूं, क्या करूंगी यह अभी नहीं बतलाती।'

'मालूम होता है हमारे भगवान के लिए लाई है ?'

'आपके भगवान के लिए भी और . ।'

अम्मा और अवनिका दालान मे लगे हुए पर्दे में अदृश्य हो गईं। पिताजी भी लेट गए। और बातोंही बातोंमे विषय फिर गंभीर हो गया। वे वर्तमान युग मे हमारे और हमारी समाज के खोखले, दिखाऊ, और हृदय हीन व्यवहार की आलोचना करते रहे। अवनिका और अम्मा मे भी कुछ चर्चा चल रही थी। कभी कभी वह मन्द वाणी भी कर्ण-पुटो मे आकर क्षण भर को हृदय आकंपित कर लेती थी।



# विदा

मुझे कब निद्रा आई। पिताजी क्या कहते रहे कब, तक कहते रहे, कुछ पता नहीं। मैं जब सबेरे उठा उस समय पिताजी पूजन में बैठे थे। अम्मा गृह कार्य कर रही थी और अवनिका अधगीली धोती को ऊपर खोसे हुए दोनों हाथों में दो बाल्टी पानी को ला रही थी। एक-एक बाल्टी दोनों वृक्षों में डालकर अलकों को जो आनन पर उतर आई थी अपनी धोती में छिपाकर ज्योंही मुझपर दृष्टि पडी तो उसके अनुराग रंजित अधरों में मुस्कुराहट दौड उठी। 'जाग गए आप? उठने का समय हुआ या नहीं?'

मैंने अँगडाई लेते हुए कहा—'धन्यवाद दीजिए निद्रा को जो बेचारी भाग गई। आपने तो मालूम होता है बहुत काम कर लिया?'

'हाँ, बिस्तर उठ गए। झाड़ू लग गया। फूल चुने। पानी भरा और अब इनको पानी पिला रही हूँ। ये बेचारे इतने गरीब कि कभी कुछ कहते ही नहीं। पानी दो या इन्हें काट डालो। कैसे उदार और सन्तोषी हैं। पशु पक्षी तो रम्हाते, चहकते, पर ये बेचारे तो सूख भले ही जाएँ पर उफ तक नहीं करते। कितने बडे त्यागी हैं, इसलिए इनके मन की बात पहले सुननी पडती है।'

'बोलते तो सब प्राणी और पदार्थ हैं, किन्तु हम उनकी बोली समझ नहीं पाते। अभी बाल्टी को ही पटक दीजिए यहभी चिल्लाएगी।'

ममता हँसकर बोली—'बहुत ठीक। आप शौच जाइए जब तक मैं इनमें एक—एक, दो—दो, बाल्टी पानी और डाल दूँ फिर आपकी दातौन आदि कुए पर रख दूँगी और कुए के ताजा जल से नहाना चाहें तो दस-पाँच बाल्टी से आपको भी स्नान करा दूँगी।'

मैंने हँसकर कहा—'क्या मैं अपंग हूँ जो तुम स्नान कराओगी। मुझे खुद को कुए से पानी खींचने मे आनन्द आता है।'

मै उठकर अपने बिस्तर को लपेटने लगा तो अवनिका ने कहा—'आप रहने दीजिए बिस्तर मैं रखूँगी।'

मैं पिताजी को प्रणाम करता हुआ अन्दर गया तो अम्मा थाली मे रखे हुए कुछ बीन रही थी। मेरे प्रणाम करने पर आशीर्वाद देकर बोली—'बेटा तुम इस समय दूध पियोगे या चाय ?'

मैंने कहा—'अम्मा कुछ भी।'

वे बोली—'बेटा ! मुझे तो चाय अच्छी तरह बनाते नहीं आती। कभी ऐसा काम नही पडा। कोई न कोई चीज ज्यादे कम हो जाती है मेरे हाथ से। चाय पीओ तो अवनिका से बनवाऊ। वह अभी नहाई नही है। भूतनी-सी बनकर अपने झाड़ों को सींच रही है और दूध तो गरम हो ही रहा है।'

मैंने कहा—'दूध ही पिऊँगा अम्मा और पीछे कुएँ की तरफ चला तो अवनिका भी बालटी लेकर दौड़ी हुई आई। मैं दैनिक कार्यों से निवट कर निश्चित हुआ कि कुमार का हाथ पकड़ कर अवनिका उसे ले आई और बरजोरी उससे हाथ जुड़वाए। उसे वही छोड़ा और मेरी धोती, टावेल, तेल, साबुन निकाल लाई। मैं बाल्टी खीचकर नहाना चाहता था और अवनिका चाहती थी मैं नहलाऊं। हम दोनो इसी बात पर झगड़ रहे थे। शायद पिताजी पूजन से उठ गये थे, अम्मा उन्हे बुला लाई और बोली—'देखो तो, कैसे छोटे छोटे बच्चो की तरह झगड़ रहे है।' पिताजी हँस दिये और बोले—'बच्चे तो है ही, कौन स्याने हैं। पढ-लिख लिए तो क्या बचपन थोड़े ही चला गया।'

मैंने शिकायत की—'पिताजी ! अवनिका नहीं मानती, मुझे

रस्सी नहीं दे रही है, कहती है मैं पानी खींच कर स्नान कराऊँगी।

'पिताजी! मैं इसमें इन्हें क्या गाली देती हूँ, आप ही बतलाइए।'

अम्मा ने फैसला कर दिया—'बेटा! तुम सयाने हो यह तो पगली है। इसी को खींचने दो तुम दस-बीस बाल्टी से नहाना तो यह आप ही थक कर भाग जायगी।'

मैंने कहा—'अच्छा अवनिका, निकालो! मेरा भी नाम बदल देना जो थका कर तुम्हें भगा नहीं दिया है तो।

अवनिका ने अपने स्वाभिमान को सम्हालते हुए कहा—'आप क्या भगाएँगे, एक रोज जीजाजी के छक्के छुड़वा दिये, आखिर वे ही हार मान कर कुएँ से भाग खड़े हुए थे।'

अवनिका ने कुएँ से पानी खींचना आरम्भ किया और मैंने शरीर पर से ढोलना। जब दस-बारह बाल्टी खींच चुकी तो मुझे ही दया आ गई और मैंने कहा—'बस करो।

'देखो! मैं नहीं हारी हूँ नहीं तो पीछे कहोगे।'

'मैं हारा तुम नहीं, अब तो खुश हो। तुम मेरा नाम बदल देना, बस।'

मुझ से यह सुनकर अवनिका शायद अम्मा को अपना विजय सन्देश सुनाने अन्दर चली गई। मैंने कपड़े बदले। जब अन्दर आया तो पता लगा कि पिताजी पाठशाला चले गये हैं। इतने में ही अवनिका काच-कंघा ले आई। मैंने कहा—'अवनिका यदि मैं कहीं का राजा होता तो तुम्हारी इस चतुराई से खुश होकर तुम्हें आधा राज्य दे देता।'

हँस कर अवनिका ने कहा—'अच्छा हुआ जो राजा नहीं हुए। राजा होते तो राज्य दे देते। तब मैं मिले हुए राज्य की व्यवस्था करती

क्या आपकी सेवा . . .।'

मैं बोला—'अवनिका! अब मेरा मन एकदम निर्मल हो गया। पहले रोज के मन के भावों में और आज के भावों में जमीन आसमान का अन्तर हो गया। मनुष्य की वृत्तियाँ समय और परिस्थितियों के बनाव के साथ-साथ इस प्रकार शुद्ध हो जाती हैं।

हँस कर अवनिका ने कहा—'क्या पता? आप कहते थे न कि मुझे ढोलक पर होनेवाले गीत अच्छे लगते हैं, मगर वे हों यू पी की ही जन्मी हुई स्त्रियों के मुँह से। हमारी फौज की जन्म-भूमि सभी की यू पी है। यदि आज ठहरो तो गीत सुनवा दें।

'ऐसा न करो ममता! तुम तो जानती ही हो कि समय पर न पहुँचने से मेरी कल्पना का सारा किला ढह जायगा। बड़ी मुश्किल से तो यह अवसर मिला है। यदि सुनवा सको तो मेरे जाने के पहले सुनवा दो, जब जानूँगा कि तुमने कुछ प्रयत्न किया और कृपा की।'

'अवनिका ने अपने ही हाथ पर हाथ मार कर कहा—'अच्छा आपको आज ही दोपहरी में सुनवाऊँगी। अभी चलते-फिरते तार से सूचना करती हूँ।'

मैंने धीरे से कहा—'धन्यवाद।' क्योंकि अम्मा किसी काम के लिये बाहर आ रही थीं।

अवनिका ने उनका हाथ पकड़ कर कहा—'अम्मा भूख लगी है कुछ खाने को दो?'

अम्मा ने झूठी नाराजी दिखलाते हुए कहा—चल हट यहाँ से बड़ी भूख वाली आई! नहाई न धोई और इतने सबेरे से भूख सी लग आई? अवनिका! ज्यों ज्यों तू बड़ी होती जा रही है त्यों-त्यों तेरी आदतें बिगड़ती जा रही हैं।'

'हाथ जोड़कर अवनिका ने कहा—'अच्छा अम्मा! यदि दाट-

दौड़कर काम करने के मानों आदतें बिगड़ना है तो मूर्ति बनकर बैठने वाली का नाम क्या होगा ?'

'चल हट काम करने दे। ऐसी बातों के लिए तेरे पिताजी ही बहुत हैं। तुम सब क्या मुझे पागल समझते हो।'

'पागल नहीं बल्कि यदि मारे नहीं तो कह दूँ।'

'क्या कहती है ?'

'याने, याने, याने पागल नहीं बल्कि पागल की अम्मा।'

'हट मरी। पागल की अम्मा क्या कम पागल हुई।'

हम सब को एक साथ हँसी आ गई। ममता ने कहा—'चलें झट नहाएं, बिना नहाए खैर नहीं हैं। ब्राह्मण के घर मे जन्म लेने का दण्ड तो भोगना ही पड़ेगा··· ·।' अच्छा अम्मा मैं तेरे कहने से नहा लेती हूँ तू मेरी एक बात मानेगी ? बतलाऊँ,बहुत ही अच्छी बात है।'

'क्या बात है जल्दी बतला। मुझे बहुत से काम करने है।'

'बात यह है कि आपके बेटे जी गीतों के बड़े शौकीन हैं। आज बेटे के आने की खुशी मे तू गीत गवा दे तो क्या हर्ज है। इस बहाने लड़कियों को कुछ न कुछ मीठा मुँह करने को मिल ही जायगा बेचारियों को।'

'ले मरी! गीत भी कोई बड़ी बात है, आज ही शामको गा लेना कितने गाती हो।'

'भौहे टेढ़ी मेढ़ी करके ममता ने मुँह फुलाकर कहा—'शामको तो आप गाड़ो से नजर आना चाहते हैं इसलिए दोपहर को ही ·।'

'अच्छा है, बहुत दिनों से लड़कियों ने अपने यहां गाया बजाया भी नहीं है, पर तेरे पिताजी जो कहीं नाराज हुए तो उन्हें कौन समझाएगा ?'

'उन्हें तू ही समझा देना, तेरे से नहीं समझेंगे तो मैं समझा

दूंगी; बस।'

अम्मा के कहने से ममता मेरे पीने को दूध का गिलास ले आई। उसके बाद पान बनाकर लाई और फिर यह कह कर कि 'अब मैं नहाऊंगी'—चली गई। मैं सुखद वर्तमान के वातावरण और दुखद भविष्य की वियोग व्यथा की विचार धारा मे अपने आपको भुलाए हुए था। बड़ा मानसिक स्पन्दन चल रहा था। उसके बाद अपने स्वभाव के अनुसार भविष्य के काल्पनिक प्रासाद का निर्माण करने लगा। मन थोडी राहत महसूस कर रहा था। उस प्रासाद मे मैं था, मेरी होनहार पत्नी थी, अवनिका थी, अम्मा थी और पिताजी थे, नौकर चाकर सभी कुछ थे। कभी हम सब प्रयाग की त्रिवेणी के पथ में थे। कभी किसी यात्रा मे कह कहे लगा रहे थे। कभी सिनेमा जाने की सजावट कर रहे थे। ऐसा ही कुछ चल रहा था कि देखकर लजाने वाली अवनिका की दो सखियो ने द्वार के भीतर प्रवेश किया। उधर से कुमार नहाकर आ गया और बोला 'मोती ने कहा है मुझे कपले पहला दो।' मेरी विचार धार भंग हो गई। मैं उठा और खूंटियो से ढूंढ ढूंढ कर कुमार के कपडे उसे पहनाने लगा। और उसीसे मनोरंजन करने लगा।

'तुमको किसने नहलाया कुमार ?'

'मौती ने।'

'हमको भी तुम्हारी मौती ने नहलाया। क्या कर रही है तुम्हारी मौती ?'

'वात कल लही है।'

'तुम हमारे साथ चलोगे न कुमार ?'

'मैं तो मोती के साथ चलूंगा।'

'मौती नहीं गई तो ?'

'तो मैं भी नहीं जाऊँगा ।'

'हा तुम बेटे बड़े सयाने । कहकर मैंने उठाकर उसे चूम लिया ।'

इतने ही मे अम्मा ने आकर कहा—'बेटा तुम्हारे पिताजी कह गए है कि यदि बेटा देखना चाहे तो हमारे पास स्कूल मे भेज देना । जाना चाहो तो मैं भृगुलता को भेज देती हूँ- वह तुम्हे वहाँ छोड़ आएगी ।'

मैंने तुरन्त ही स्कूल जाना स्वीकार कर लिया । अम्मा ने भृगुलता को आवाज दी । मैंने पूछा—'अम्मा यहाँ की लडकियो के इतने अच्छे नाम किसने रखे है ?'

वे हँसकर बोलीं—'बेटा ! ये सब नाम तुम्हारे पिताजी के रखे हुए है । वे ही जाने कहाँ-कहाँ से ढूँढकर ऐसे नाम रखा करते हैं । वे कहते है नाम का जीवन पर बहुत बडा प्रभाव पडता है ।'

'बात सच है, अम्माजी मुझे भी इस बात का कई जगह अनुभव हुआ है । देश का दुर्भाग्य है कि लोग अशिक्षित है । मन में आता है वही नाम रख लेते है । कहीं-कहो तो पण्डित भी धुरंधर मूर्ख होते है जो केवल नामकरण का सवा रुपया ही लेना जानते है, नाम रखना नही जानते । कितने ही व्यक्तियो के नाम ऐसे होते है जिनके लेने मे ही नफरत सी होती है । घूरन, छीतर, मंगतू, घसीटन, सिद्धा, पिद्दा भला यह भी कोई नाम है ।

अम्मा ने मेरी बात का समर्थन करते हुए कहा—'कुछ न पूछो बेटा ! दिन के नाम से बच्चो के नाम । तिथियो के नाम से नाम । फल फूलो के नाम से नाम और प्यार मे रखे जाने वाले नाम तो और भी विचित्र होते है और वे फिर जिन्दगी भर चला करते है ।'

भृगुलता आकर खडी हुई थी । अम्मा ने उससे कहा—'जा,

भैया को स्कूल छोड़ आ।'

मैंने कहा—'अम्मा! स्कूल तो मेरा देखा हुआ है। कल मैं आया था तब पिताजी स्कूल से ही निकलकर आए थे। मैं चला जाऊँगा। तुम जाओ बच्ची खेलो।'

भृगुलता कूदती-फाँदती चली गई। मैंने कोट पहना और चला। स्कूल मे प्रवेश करते ही लडकों ने खडे होकर मुझे प्रणाम किया। लडके बैठ गए। मैं पिताजी को प्रणाम करके पास की खाली कुर्सी पर बैठ गया। पिताजी प्रसन्नचित्त थे। स्कूल सुन्दर वाक्यो एव महापुरुषो के शब्द-रत्नों से सुन्दर चित्र कला के साथ सुसज्जित था। राष्ट्रीय नेता और महापुरुषो के अनेको मोहक-चित्र दीवारो मे टँगे हुए थे। लडके शांत थे और वे अपना-अपना कार्य कर रहे थे।

पिताजी ने पूछा—'क्या बेटा, आज तुम्हारा इलाहाबाद जाना निश्चित ही है?'

'जी हाँ पिताजी, आज तो जाना ही चाहिए। यद्यपि मेरा हृदय आप सबकी ममता को छोड़कर नही जाना चाहता, किन्तु बे-बसी का और कोई इलाज भी तो नही है।'

'कोई हर्ज नहीं बेटा, जो अपने हैं वे हर हालतमे अपने है चाहे जहाँ भी रहे और जो पराए है वे घर मे भी रहे तब भी पराए ही है। भगवान तुम्हारी उत्तरोत्तर उन्नति करे। मैं तुमसे बहुतही प्रभावित हुआ हूँ। अनन्त! हम लोगोंका बुढापा है। जीवन का कोई निश्चय नही। आगे पीछे भी इन दो लडकियों के सिवा कोई नहीं है। एक तो सुखी है परंतु इस बेचारी के भाग्यही कुछ ऐसे है। ईश्वर सब कुछ करे किंतु दहेज प्रथा को माननेवाली जाति मे किसी को जन्म न दे, और दे तो फिर समझना भी दे। अन्यथा जीवन भार-स्वरूप प्रतीत होने लगता है। भगवान मालिक है इस बेचारी का भी। इसको ससुराल वाले एक-दो

नहीं घर भर ही पशु निकले। जो मनुष्य निर्दोष स्त्रियों को दु:खी करते हैं वे किसी भी अवस्था मे सुखी नहीं रहते। भगवान की अदालत मे देर भले ही होजाय पर अन्धेर नहीं होता। मुझे पूरा भरोसा है। तुम सब तरह योग्य और सु–पात्र हो। तुमसे तो यही कहना पर्याप्त है कि हम गरीब वृद्धों को भूल मत जाना बेटा। अब हम तुम्हारे है और तुम हमारे। उनकी आँखे कुछ गीली हो गईं। मैं भी उनकी दशा देख सुनकर दुखी हो गया। वे थोडी देर तक कुछ ऐसी ही बातें करते रहे। फिर एक लडके को बुलाकर कहा—'तुम्हारे पिताजी से कहना पण्डितजी ने कहा है, उनके भैया शाम को स्टेशन जाएँगे, तुम्हे गाडी बैल से उन्हें पहुँचाना होगा।

लडका चला गया और मैं उनकी टेबिल पर रखे हुए हाजिरी रजिस्टर को देखने लगा। लडको के नाम बढे सुन्दर-सुन्दर थे जिन्हे पढकर मुझे अम्मा की बात याद आ गई।

पिताजी ने अपने सहायक अध्यापक को बुलाकर कहा—'आप स्टोर खोलकर बच्चों की बनाई हुई चीजे भैया को दिखला दे। पीछे का कुआ, बगीचा, साग–भाजी वगैरह सब दिखला दीजिए।'

अध्यापक ने बडी खुशी और प्रसन्नता से मुझे एक–एक चीजें दिखलाईं। लडको के द्वारा खुदा हुआ कुआ, कुए से सींचा हुआ बगीचा और उसमे लडको की लगाई हुई साग-भाजी। किसी प्रायमरी पाठशाला के विद्यार्थियों की ऐसी अच्छी योग्यता मुझे उसके पूर्व कहीं भी देखने को नही मिली थी। सहायक अध्यापक प्रशंसा करते हुए नहीं अघाते थे। इस पर विशेषता यह कि स्कूल सरकारी नहीं था। वहीं की ग्राम पंचायत का था। उस रोज एक घण्टे के पहले ही लडकों की छुट्टी करके पिताजी हम लोगों के पास बगीचे मे आ गए। शिक्षा के उद्देश्य के विषय मे उन्होंने थोडे से समय मे ही मुझे बहुत कुछ

बतला दिया। वे अपने वात्सल्य भावों में समझे कि मुझे भूख लगी होगी इसलिए घर चलना चाहिये।

जब हम लोग घर आये तो मेरे भूखे होने के सम्बन्ध में जो पिताजी का अनुमान था वही अम्मा का अनुमान निकला। मेरे माता-पिता के बाद मेरे भूखे होने के सम्बन्ध मे शायद ही कभी किसी ने इतनी पर्वाह की हो। हम लोग भीतर भोजन करने गए तो मानों घर मे रिद्धि-सिद्धियाँ बिखरी पडी हों। पिताजी उन्हे देखकर बोले—'आज यह जमायत क्यो एकत्रित है अवनिका ?'

अवनिका ने हँसकर कहा—'पिताजी ! यदि आप नाराज न हों तो यह जमायत आप से एक निवेदन करना चाहती है।'

'नहीं बेटी ! हम नाराज नहीं होगे। तुम शायद इस जमायत की प्रधान की हैसियत से बोल रही होओगी, बोलो।'

'पिताजी ! यह जमायत आप लोगों को मीरा, सहजो आदि के नए-नए भजन सुनाना चाहती है।'

'हम जमायत के निवेदन से सहमत हैं।'

अम्मा से रहा नहीं गया। वे बोली—'बाप बेटी मिलकर सभा करने लगे क्या ? चल अवनी थाली परोस।'

'लो बेटी ! लोकल गवर्नमेंट का आर्डिनेंस लागू हो गया। अब हम लोकल गवर्नमेंट से कैफियत लेते हैं। 'आपने बच्चेके नाश्ते का भी कुछ प्रबन्ध किया था नाराज होना ही जानती हो ?'

'मैं आपकी तरह बेभूल नहीं हूँ, मुझे पहले फिकर है। आप लोग भोजन से निपट जाए तो मैं नाश्ता बनाऊं। देर क्या लगती है बनाने में ?'

मैं पिताजी की जिन्दादिली, खुश। मिजाजी और प्रेम पूर्ण गृहस्थ जीवन के व्यवहार को देखकर मन ही मन प्रसन्न हो रहा था।

कहा तो यह व्यवस्था और कहा इतनी जिन्दादिली विरले ही व्यक्तियों मे देखने को मिलती है इसी प्रकार की चर्चाओ मे भोजन का कार्य समाप्त हुआ।

हम लोग जब दालान मे आकर बैठे तो पिताजी ने अपने ही आप यह चर्चा आरम्भ की 'बेटा पुरुष समाज की सबसे बडी कमजोरी; सबसे बडा आकर्षण और सबसे बडी तृप्ति स्त्रिया है। वह जन्म से ही स्त्री समाज का सहयोगी रहता है। माता का, बहन का, पत्नी का और परिचित जगत का, वह जो तृप्ति, पुरुष की वाणी से नही; वह स्त्री की वाणी से अनुभव करता है। जो सुख पुरुष, पुरुष समाज से प्राप्त करता है यदि वही सुख उसे स्त्री समाज से प्राप्त हो तो वह अत्यधिक सुखी हो जाता है। क्या बच्चे; क्या तरुण और क्या वृद्ध सभी स्त्री जाति से संतुष्ट रहते है। इससे यह सिद्ध हुआ कि पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों का पुरुषों के हृदय मे अधिक सम्मान रहता है। स्त्रियाँ सचमुच ही यदि भली हों तो पुरुषो की अपेक्षा अधिक सुखदायिका होती भी है।

नारी समाज से पुरुष सुख, स्नेह, ममता, मोह और सम्मान पा सकता है परन्तु वह एक ही शर्त पर कि उसके सम्मुख कभी भी पुरुष अपने आपको पतित न होने दे। स्त्रियों की आँखे बडी पेनी होतों हैं। वह गिरते हुए पुरुष को तुरन्त ताड जाती है। यदि वह उसकी दृष्टि मे गिर गया तो वह पुरुष फिर उस स्त्री से सुख न पा सकेगा। बल्कि शोक, सन्ताप, दुःख और अनेक प्रकार के भय, क्लेश पाएगा। इसलिए पुरुष स्त्रियो के परिचय में इस बात का अवश्य ध्यान रखे।

यो भी किसी पुरुष को यह अधिकार कब है कि वह किसी हरी भरी वाटिका को नष्ट कर दे और उसके बाद जीवन भर के लिए उस आत्मा के अनुराग से वंचित हो जाय। बेटा ! ससार है इसे देखो और अपनी बुद्धि से समझो और वह आदर्श खोज निकालो जो तुम्हारे

लिए भी हित कर हो और अन्य के लिए भी। मैं अपना जीवन खपा चुका, मुझे इस दुनियां से जो कुछ भी मिला है मैं अपने आशीर्वाद के रूप में तुम्हें दूँ यही मेरा कर्त्तव्य है, और तुम उसे स्वीकार कर ग्रहण करो, यही तुम लोगों का कर्त्तव्य होना चाहिए।'

मैंने उनके इस कथन का हृदय से समर्थन किया। मैं सोच रहा था जो व्यक्ति जन साधारण के निर्माण का इतना शुभचिंतक है वही तो अवनिका का निर्माण इस सुचारु ढंग से कर सका है और अवनिका भी ऐसे पिता की पुत्री ही कहलाने की अधिकारिणी है। अवनिका जो कहती थी, ठीक ही कहती थी।

अवनिका आई। पान दिए और बाहर जाने लगी।

'कहाँ जा रही हो बेटी ?' धूप कितनी तेज है ?'

'सुनीता के यहाँ जा रही हूँ पिताजी ढोलक लेने।'

'अच्छा तो ढोलक पर भजन होंगे !'

'अम्मा कहती हैं कि बिना ढोलक के अच्छे नहीं लगते।'

'वह ठीक कहती है बेटी, हम भी यही चाहते है, जाओ ले आओ !'

इसके बाद ही अम्मा निकली और उन्होंने पिताजी को भीतर बुला लिया। थोड़ी ही देर मे अवनिका ढोलक ले आई। भजन आरंभ हो गए। पिताजी बाहर आकर थोड़ी देर तक बैठे रहे और फिर छाता उठाकर बोले—'बेटा ! तुम भजन सुनो। तुम्हारी अम्मा की इच्छा है इस स्वामी जी को थोड़ा भोजन दे आएं। संभव है हमें थोड़ी देर लग जाय। समय पर तुम्हारी गाड़ी आ जायगी और मैं उसके पहले ही आ जाऊंगा।'

उन्होंने कुछ सामान अम्मा से लिया और वे चल दिए। वर स्वतंत्रता ने थोड़े और पैर पसार लिए। मैं लेट गया और मधुर

कंठों की स्वर लहरी मेरे कर्ण कुहरों में गूंजने लगी। हर एक कंठ अपना जौहर दिखला रहा था मानो उनमें होड बंध रही हो।

भजन, गीत, गजल जो जिसके दिल मे आया वही गाया गया। ढोलक पर यू पी. की लडकियाँ जब खडी बोली की गजलें गाती हैं तो उन चीजों मे एक अजीब आकर्षण और अजीब जान पैदा हो जाती है। लगभग दो तीन घंटे तक यही होता रहा। मुझे लग रहा था मानो मैं स्वर्ग की सुखद भूमि पर हूं जहाँ सुकर्म भोगी देवगण रहते हैं।

मुस्कुराती हुई अवनिका आई और बोली—'सुनलिए अब तो आपने ढोलक के गाने।' मैंने कहा—'हाँ आपकी अनुकंपा से यह आनंद भी प्राप्त हुआ। भगवान जाने ऐसा सुअवसर फिर कब मिलेगा। सचमुच ही अवनिका मैं तुम्हारा अत्यन्त ऋणी हूँ ?' तुम्हारी कृपा के कर्ज से मैं कभी भी ऋणमुक्त नहीं हो सकता। अब तो मेरा अनुमान है मेरा समय हो गया होगा। घडी भी तीन बजा चुकी, तैयारी करना चाहिए।'

ललचाई हुई दृष्टि से ममता ने कहा—'आज और नहीं रह सकते ?'

'कैसे रहूँ ममता जाना है न' तुम तो जानती ही हो! अभी तो हम लोगों को बहुत से काम करने है। हृदय नही कह रहा है केवल बेबसी घसीटे लिए जा रही है। तुम ही कहो ऐसा स्वर्गीय सुख छोड़कर किसका मन जाने को कहता होगा। तुमको! तुम्हारे प्रेम को, तुम्हारे आग्रह को टालकर जाना मेरे मन से सर्वथा विरुद्ध है किन्तु·····।'

एक लम्बी साँस के साथ मेरी आँखें भर आईं और मुझे देखकर ममता की आँखों ने भी झड़ी लगा दी। बडे दर्दीले कंठ से

कहा—'आप पराये से अपने बने और अपने बनकर फिर पराये बने जाते हो।'

मुझे याद आ गया खानखाना साहब का वह दोहा—

*जेहि रहीम तन-मन दियो, कियो हृदय विच भौन*
*तासौं सुख-दुख कहन की रही बात अब कौन ?*

दुखी न बनो ममता! अपना पराया नही हो सकता और पराया अपना नहीं हो सकता। अब मैं पराया कहाँ रहा! अब तो मैं तुम्हारा हूँ न! भगवान करे हमारी मैत्री युग-युग तक जीवन के आदर्शों को लेकर निभती जाय। यदि तुम इस प्रकार आँसू बहाओगी तो मेरा क्या हाल होगा? जाने कितने दिनो तक फिर वही अपना पुराना एकाकी जीवन व्यतीत करना पडेगा सोचो तो सही। जिस हवा ने इन दो तिनको को मिलाया था वही आज फिर हमे अलग-अलग कर रही है। इसका नाम योग-वियोग है ममता! इसीका नाम संसार है।'

ममता की आँखो के आँसू बन्द न हुए और वह आँखे पोछती-पोंछती अन्दर चली गई तो मेरा उपदेशक ज्ञान नष्ट होगया और मुझे प्रत्येक की ममता रह-रहकर रुलाने लगी। भगवान सारे दुखों का सृजन करके भी यदि मानव को मानव के प्रति मोही न बनाता तब भी वह मनुष्य को सुखी बनाने मे अधिक सफल होता। किंतु भूल किससे नही हुई है।

ममता जो अपनी आँखो मे गीलापन लेकर अन्दर पहुँची तो उसने वहाँ कितनी ही अच्छी भली आँखों को तर कर दिया। वे सबकी सब निकलकर बाहर आ गईं। मैंने अपने पास बुला लिया। उन्हे यथासाध्य समझाया, प्रबोधा। पर भोले हृदय मे बनावटी स्वाँग कहाँ होता है? वह तो महान सत्यमय स्नेह था जो अमानत की तरह

आँखों की राह बह निकला था। जब अम्मा आईं तो उनके भी यही हाल थे। मुझे अपने कपड़े पेटी आदि का सम्हालना ही मुश्किल हो गया। पिताजी आदि के कपड़े निकाले। अम्मा और भी बिलख गई। जो पिताजी हमें गाते-बजाते छोड़ गए थे। आकर देखते हैं तो हम सबने सावन-भादों की झड़ी लगा रखी थी। वे भी हम सब की दशा देखकर अपने धैर्य को कायम न रख सके।

ज्यों-त्योंकर मैंने कपड़े जमाए। बिस्तर ठीक किया। पिताजी हम सबके बीच बैठकर उपदेश दे रहे थे। समझा बुझा रहे एक बड़ी सी टोकनी में नाश्ता बाँध लाईं। मैंने कहा—'अ[illegible] तो दस मनुष्यों का नाश्ता हो सकता है और अब मैं जा ही दूर रहा हूं जो नाश्ता करूंगा। ओह! माँ का हृदय कितन[illegible] कितना उदार और कितनी ममता का भरा है। मेरी मा[illegible] इनमें स्नेह के नाते क्या अन्तर है? उसे कम करने को बहुत कुछ कहा सुना, परन्तु उन्होंने मेरी एक भी न सुनी।

हम लोग विरह सागर में डूब रहे थे [illegible] पिताजी अपने अनुभव ज्ञान द्वारा हमें तैराने का यत्न कर रहे थे कि [illegible] आकर कहा—गुरुजी, गाड़ी तैयार है। वे केवल इतना ही [illegible] से कह सके—'अच्छा भैया।'

गाड़ी वाले ने पेटी और बिस्तर उठाकर रख लिए। मैंने पिताजी को प्रणाम किया और हाथ जोड़कर आज्ञा चाही। उन्होंने मुझे अपनी छाती से लगा लिया और गदगद कण्ठ से [illegible]—जो कुछ कहना था कह ही चुका। अब तो यही कहना है कि बेटा! [illegible] गरीबों को भूल न जाना।

अम्मा को प्रणाम किया। वे आशीर्वाद देती हुई बोलीं—"बेटा! यह तुम्हारा ही घर है यही समझना। अवनिका को [illegible]